श्रीनारायणदैवज्ञविरचितः

मुहूर्त्तमार्त्तण्डः



केदारदत्त जोशी

Puneet Joshi

श्रीनारायणदैवज्ञविरचितः

मुहूर्त्तमार्त्तण्डः

ग्रन्थकृद्विरचितया 'मार्तण्डवल्लभा' संस्कृतव्याख्यया,

हिन्दी व्याख्यया च संवलितः

हिन्दी व्याख्याकारः

केदारदत्त जोशी

मो ती ला ल ब ना र सी दा स

दिल्ली : वाराणसी : पटना : बंगलोर : मद्रास

मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
शाखाएँ : चौक, वाराणसी २२१ ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
१२०, रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४
१६, सेन्ट-मार्क्स रोड, बंगलौर ५६० ००१

प्रथम संस्करण : वाराणसी, १९९३

मूल्य : रु० ६५ अजिल्द, : रु० ११० सजिल्द

नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, चौक,
वाराणसी द्वारा प्रकाशित तथा चेतना प्रिंटर्स,
पाण्डेयपुर, वाराणसी–२ द्वारा मुद्रित।

भूमिका

सिद्धान्त, होरा और संहिता ज्योतिष के ये तीन स्कन्ध हैं।

ज्योतिष शास्त्र के तीन स्कन्धों में सिद्धान्त स्कन्ध (खगोल ग्रह गणित स्कन्ध) को सर्वोपरि बताया गया है। इसे सर्वोपरि मानते हुए कहा गया है कि वह ब्रह्म रूप स्वयं साक्षात् प्रमाण अर्थात् सही और गलत के लिए गणित स्कन्ध स्वयं ही प्रमाण है। विशेषतः शास्त्र निर्णय के लिए तर्कशास्त्र (न्याय) का उपयोग बाहुल्येन किया जाता है। किन्तु शास्त्रज्ञों की दृष्टि या बुद्धि में तर्कशास्त्र में भी आगम की उपेक्षा देखी गयी है इसीलिए "तार्किको ह्यनागमज्ञः" तक आचार्यों के मुख से निकल ही जाता है।

"गणितस्कन्धे उपपत्तिमान एव आगमः प्रमाणम्" कहते हुए उदाहरण से ५ × ३= १५ यही उत्तर सही होगा। क्योंकि १५ ÷ ५ = ३ परिपूर्ण साम्य हो रहा है यदि ५ × ३= १५ और १५ ÷ ५ = २ या ४ हो तो कर्ता गणितज्ञ अपनी गणित की इस अशुद्धि को स्वयं महसूस करता है। इस स्थल पर वह वेद-पुराण, स्मृति इतिहासादि ग्रन्थ प्रमाण गवेषण में अपने समय का दुरुपयोग नहीं करता।

इस सन्दर्भ में मुझे विश्ववन्द्य भास्करावतार श्रीमद्भास्कराचार्य रचित बीज गणित ग्रन्थ का आदिम पद्य स्मृति पथ में आ जाता है कि—

उत्पादकं यत्प्रवदन्ति बुद्धेरधिष्ठितं सत्पुरुषेण सांख्याः।
व्यक्तस्य कृत्स्नस्य तदेकबीजमव्यक्तमीशं गणितञ्च वन्दे ॥

सांख्य शास्त्र का शुद्ध अर्थ है संख्या = अङ्कशास्त्र। अथवा सांख्य शास्त्र का अर्थ— गणित शास्त्र से व्यक्त और अव्यक्त (बीज) गणित से तात्पर्य है। गणितेतर सांख्य शास्त्र का तात्पर्य श्री कपिल मुनि-प्रणीत सांख्य दर्शन नामक दर्शन शास्त्र से है। इसी अभिप्राय को महात्मा लगध मुनि ने ज्योतिष के उपलक्ष्य में अपने वेदाङ्ग ज्योतिष में कहा है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि संस्थितम् ॥

कहने का अभिप्राय यह है कि ज्योतिष का गणित स्कन्ध जैसे स्वयं स्वतः प्रमाण है वैसे अन्य स्कन्ध (संहिता-होरा) संशय रहित नहीं प्रतीत होते हुए भी संहिता और होरा स्कन्ध का एक सूक्ष्म समय विभाग का नाम "मुहूर्त्तं घटिका द्वयम्" से है। (घटी का अर्थ आधुनिक २४ × २ = ४८ मिनट से है।)

यदि गणित स्कन्ध की ग्रह गणित प्रक्रिया से विरचित या अन्य शुद्ध पञ्चाङ्गों में गणित शुद्ध हैं, जैसे आजकल भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'राष्ट्रीय पञ्चाङ्ग' प्रमाणीभूत उपलब्ध है, तो मानव मात्र के लिए उसी आधार पर मुहूर्तों के शुभ समय का विधान त्रिस्कन्धज्ञ दैवज्ञ द्वारा किया जाना चाहिए। इत्यादि के अतिरिक्त—

दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियं यदृषिभिर्ब्राह्मं वसिष्ठादिभिः
पारम्पर्यवशाद्रहस्यमवनौं नीतं प्रकाश्यं ततः ।
नैतद्द्वेषिकृतघ्नदुर्जनदुराचाराचिरावासिनां
स्यादायुःसुकृतक्षयो मुनिकृतां सीमामिमामुज्झतः ॥

दीर्घकाल से गुरुसेवा संलग्न योग्य श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानरत कुलीन गुरुभक्त शिष्य के लिए इस प्रकार की सद्विद्या का सदुपयोग किया जाना चाहिए इति ।

प्रकृति में प्राचीन ज्यौतिष ग्रन्थों में उपलब्ध ज्यौतिष शास्त्र का आद्य आचार्य का वेदाङ्ग ज्यौतिष नाम के प्रसिद्ध ग्रन्थ में भी कहा गया है—

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः ।
यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि संस्थितम् ॥

ग्रह गणित की प्राधान्यता त्रिस्कन्ध ज्यौतिष में कही गई है। परन्तु आज उसकी प्रधानता नहीं दी जा रही है। वर्तमान में भारतीय ज्यौतिष के एक ही केन्द्र से प्रकाशित होनेवाले बहुसंख्यक व्यवसायिक पंचांगों में तिथि, नक्षत्र, योग और करण के घटिकादि या घण्टा मिनट आदि के भागों में एकवाक्यता न होना गणित गोल ज्ञान का अभाव ही एक मात्र कारण है। फलित ज्यौतिष के मूलाधार ग्रह गणित ज्यौतिष का दुरुपयोग एवं उसकी निरन्तर अधोगति एवं उपेक्षा को प्राप्त होना भी भारतीय ज्यौतिष की दुर्दशा का एक महत्त्वपूर्ण कारण बन गया है। आज विश्व के मानक समय का ज्ञान सभी लोग ग्रीनविच अर्थात् ० डिग्री से करते हैं। परन्तु हमारे प्राचीन खगोलज्ञों ने ज्ञात किया था कि वर्ष में उत्तरी गोलार्द्ध में उज्जैन के खमध्य में ही प्रायः केवल एक दिन सूर्य की परमाक्रान्ति होती है। तब सभी गणना का केन्द्र उज्जैन होता था। इसके कारण उज्जैन याम्योत्तर एवं परम क्रांति वृत्त का केन्द्र था। तभी सम्पूर्ण भारतवर्ष में काल की उपासनार्थ महाकालबोधक महाकालेश्वर का मन्दिर मात्र उज्जैन में ही विद्यमान है। इसी महाकालेश्वर मन्दिर में त्रिस्कन्धज्ञ वराहमिहिर ने काल उपासना की थी। आचार्य वराहमिहिर ने ही प्रचलित विक्रम संवत् के स्थान पर काल गणना में शक संवत् का प्रचलन किया जो आज भी गणित में अखण्ड है।

हमारे प्राचीन गणितज्ञ वेध तुल्यता पर गणित तुल्य न होने पर वे गणित का भी परिष्कार करते थे। परन्तु खगोल ज्ञान शून्य आज के अनभिज्ञ पंचांगकार सारणियों पर अशुद्ध पंचांग निकालकर अपने अज्ञानता के अहं को तुष्ट करने पर लगे हैं। यथा मकर राशि पर सूर्य २१ दिसम्बर को ही वेध से आता स्पष्ट प्रतीत होने पर भी १४, १५ जनवरी को ही मकर संक्रान्ति पंचांगों में करना कहाँ तक समीचीन है ? इतने दिन का यह अन्तर क्या फलित ज्यौतिष को प्रभावित नहीं करेगा ?

जब तक पंचांग शुद्ध ग्रह गणित से नहीं निकलेंगे तब तक फलित शास्त्र अपनी सत्यता के बाद भी विश्वसनीय नहीं हो पायेगा। आज प्रायः सभी भारतीय पंचांग ग्रह

गणित से अशुद्ध हैं। परम्परा वादी सुधार करना भी नहीं चाहते। यदि अन्य सुधी जन इसका प्रयास करते भी हैं तो उन्हें इनके संगठित विरोध का सामना करना पड़ता है। और उनका स्वर इनके स्वर में दब जाता है। इस दिशा में भी विचार करना आवश्यक है।

वर्तमान में विज्ञान के द्वारा युग्म योनि सम्बन्ध के बिना ही जीवों की उत्पत्ति होती देखी जा रही है। सारा संसार आगे को विकाशमान है। परन्तु भारतीय ज्यौतिषी तो अपनी प्राचीन परम्परा को भी भूल गया है। राकेटों द्वारा चन्द्र पृष्ठ पर मानव का पदार्पण हो गया है और आगे के भी ग्रह बिम्बों तक मानव विचार की पहुँच सम्भव हो गई है और अन्य ग्रह बिम्बों के साथ के सम्बन्ध के प्रयास चल रहे हैं।

फलित ज्यौतिष का सदुपयोग केवल ग्रह बिम्बों की स्थिति से नहीं अपि च भविष्य ज्ञान के लिए अनेक विधियां शास्त्रों में बताई गयी हैं। तिस पर भी सही भविष्य ज्ञान मानव मात्र की बुद्धि से परे है। जन्मान्तर वाद एक तथ्यशास्त्र है जिसका ज्ञान मानव बुद्धि से परे है। फिर भी जन्मान्तर ज्ञान करना भी एक तथ्य विचार है। ज्ञान विज्ञान से समृद्ध प्राचीन ग्रन्थागारों में प्राचीन आचार्यों ने **'क्षणादूर्ध्वं न जानामि विधाता किं विधास्यति"** तथा "गुरु वशिष्ठ से मुनिज्ञानी सोधि के लगन धरी दशरथमरण हरण सिय को वन में बिपति परी"—से भविष्य ज्ञान कथन कठिन हो जाता है। तिस पर भी शास्त्रज्ञों के मस्तिष्क में होने वाले इष्ट या अनिष्ट भविष्य की ध्वनि की कुछ लहरें तरंगें दैवात् कान में आती तथा जाती भी रहती हैं। जैसे—टेलीपैथी, टेलीविजन, टेलीग्राम, टेलीफोन, अनुभूति, दूरानुभूति, स्वप्न में, दिवास्वप्न दर्शन में, अकस्मात कान में वायुतरंगों से कुछ विचित्र संदेश आते रहते हैं। खुजलाहट, मस्तिष्क की रेखायें, हस्तरेखायें, सामुद्रिकशास्त्र, मृत जीवों की हड्डियाँ, मृतप्राणी के ललाट दर्शन से, अंगस्फुरण, अंग-प्रत्यंग का स्फुरण, श्वाँस की ऊर्ध्व अधोगति के क्रम ज्ञान से, शकुन, अपशकुन, आकस्मिक उपलब्धि तथा मनोवैज्ञानिक विधाओं से भी भविष्य में होने वाली शुभाशुभ सूचनाएँ भविष्य कथन के लिए कभी-कभी प्रत्यक्ष सत्य हुई देखी गई हैं। परन्तु स्पष्टता के लिए फलित ग्रन्थों की उपादेयता अलग है।

फलित कथन में कई कठिनाइयों के निवारणार्थ लघु रूप में गम्भीर आशयों को स्पष्ट करने के लिए सिद्धिप्रद तथा दैवज्ञों के लिए शुभप्रद मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ प्रसिद्ध है। नारायणभट्ट विरचित मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ लेखक की बौद्धिक वैशिष्ट्यता का विशेष परिचय देता है। अपने मगल श्लोक में ही लेखक ने स्पष्ट किया है कि लघु ग्रन्थ होते हुए भी ज्योतिष फलित मुहूर्त में सारगर्भित यह ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से शास्त्रज्ञों, सुधीजनों का पूर्णरूपेण मनस्तुष्टि होता है। कई साधनों की सिद्धि और शास्त्रीय अनेक शंकाओं, अर्थों को जो दुर्बोध हैं उन्हें दूर करता है। ऐसी ग्रन्थकार की उक्ति है। मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ में अधोलिखित विषयों का विवेचन है। जो प्रकरणों के आधार पर हैं।

प्रथम प्रकरण में शुभ कर्म के त्याज्य समयों का उल्लेख है।

दूसरे प्रकरण में अभिजित् सहित २८ नक्षत्रों के स्वामी देवताओं का नाम, स्थिर नक्षत्रों के नाम, जन्म मास नक्षत्रादिकों में त्याज्य विषय, लत्तादिक दोष, अयन, ऋतु,

मास, तिथि, वार आदि के अपर नाम के साथ दिन और रात्रि के १५ + १५ = ३० मुहूर्तों के नाम भी स्पष्ट हैं।

तीसरा संस्कार-प्रकरण है—सर्वप्रथम कन्या के विवाह के अनन्तर रजोदर्शन का शुभाशुभ समय, रजोदर्शन दिन से अशुचिता के त्याज्य दिन संख्या, प्रायः सभी शुभ कार्यों में त्याज्य लग्नादि समय, गर्भाधान का शुभ दिन लग्नादि का वर्णन है। इस सन्दर्भ की विशेषता मानव जीवन के लिए उसी प्रकार प्रासंगिक है जैसे एक कृषक के लिए उसकी कृषि हेतु समयादि का बोध प्रासंगिक होता है। एक सफल कृषक उत्तम फसल के लिए क्षेत्र, बीज, खाद, उपयुक्त समय और प्रसाधन का सन्धान निश्चित रूप से करता है। उसी प्रकार एक सभ्य सुसंस्कृत और समाज में प्रतिष्ठा पाने योग्य सन्तान की प्राप्ति हेतु गर्भाधान के लिए उपयुक्त समयादि मुहूर्त का विचार भी आवश्यक रूप से अपेक्षित है। लक्ष्मी स्वरूपा माँ और विष्णुस्वरूप पिता के उपयुक्त समयानुसार संसार में उत्कृष्ट कोटि के मानवों का जन्म होता है। विभिन्न फसलें—मूँग, उड़द, अरहर, चना, मसूर, गेहूँ, जौ आदि की खेती के लिए निश्चित समय और निश्चित प्राविधियाँ हैं। उसी प्रकार उत्तम विद्वान् और समादरणीय सन्तान पुत्र अथवा पुत्री की प्राप्ति हेतु भी विद्वानों ने समय और प्राविधि का उल्लेख किया है।

पुंसवन सीमन्त संस्कार मुहूर्त, प्रसव समय से शुभाशुभ विचार, जातकर्म नामकरणादि के शुभ समय, नवजात शिशु को पालने पर बैठाने, भूमि पर बैठाने, दुग्धपान मुहूर्त, कर्णवेध मुहूर्त, अन्नप्राशन का शुभ समय, गुरु शुक्र का अस्तादि विचार, चौलमुहूर्त, क्षौर कर्म के शुभाशुभ दिन, व्रतवन्ध मुहूर्त, गुरु बल वामवेध आदि विचारों का इस प्रकरण में विशेष रूप से उल्लेख है।

चतुर्थ विवाह प्रकरण है वर-कन्या के जन्म नक्षत्रों से मेलापक विचार से दोनों का जीवन-शुभद विचार १–वर्ण २–वश्य ३–तारा ४–योनि ५–ग्रहमैत्री ६–गणमैत्री ७–भकूट विचार और ८–नाड़ी विचार में उत्तरोत्तर गुण गणना के १ + २ + ३ + ४ + ५ + ६ + ७ + ८ = ३६ गुण पूर्ण में ३६ ÷ २ = १८ गुण से अधिक गुण मेलापक संख्या की उपलब्धि से दोनों वर-कन्या का मेलापक शुभ बताया गया है। १८ से कम गुण मेलापक में वैवाहिक सम्बन्ध पूर्ण सुखद नहीं होगा यह भी कहा गया है।

वर-कन्या दोनों के विवाह-संस्कार के शुभ मास तिथि-वार नक्षत्रादि विचार बताये गये हैं। प्रथम गर्भज लड़का लड़की के विवाह-संस्कार के लिए ज्येष्ठमास को निषिद्ध कहते हुए विवाह में शुभ नक्षत्र पर पापग्रह का वेध होने से उसे त्याज्य कहते हुए इसे पञ्चशलाका वेध कहा तथा अन्य शुभ संस्कारों में सप्त शलाका वेध से विद्ध कर्मोपयोगी नक्षत्र भी त्याज्य कहे गये हैं। इसमें सभी प्रकार के दोषों की व्याख्या के साथ उनका भी परिहार बताया गया है।

सूर्य चन्द्र ग्रहण को नक्षत्रों में ६ महीने शुभकार्य त्याग के साथ भद्रागण्डान्तादि दोष, वार दोष, दुष्टमुहूर्त नक्षत्रों की विष घटिका विष घटिकाओं का स्पष्टी करण उत्तम

विवाह लग्न का विचार, अन्य अनेक दोषों का भी वर्णन तथा परिहार, द्वादशभाव साधन, कर्तरी पञ्चकादि दोष, और परिहार, परिहार सहित नवमांश दोष, लग्न और सप्तम भाव की विशेष शुद्धि, ग्रह दृष्टि, षडवर्ग साधन, सूर्य और इष्ट काल का साधन, इष्टकाल साधनोपयोगी घटिका यन्त्र, गोधूलिलग्न विचार, विवाह मण्डप विचार, वधू प्रवेश विचार, द्विरागमन, जनन-मरणाशौच के आने पर भी वैवाहिक संस्कार किया जा सकता है इस प्रकार का धर्मशास्त्रीय विचार, वर-कन्या के नक्षत्रों से सास-श्वसुर का अभ्युदयादि विचार और नाम राशियों से भी मेलापक इत्यादि का इस प्रकरण के ५५ श्लोकों में सविशेष विचार किया गया है।

पञ्चम प्रकरण का नाम अग्न्याधान (अग्निहोत्र-अग्नि का आधान) है।

विवाह समय से अग्नि स्थापन या सम्पत्ति विभाजन के पश्चात् अग्निहोत्र कर्मारम्भ कहा गया है। अग्नि स्थापन के लिए शुभ नक्षत्र जलचर राशि नवांश वर्जित समय में चन्द्र-सूर्य और मंगल ग्रहों के बली रहने, शेष ग्रह उपचय ३।६।१०।११ में १/२ स्थानों में कोई ग्रह न हों इत्यादि अग्नि आधान = अग्निहोत्र कर्म का प्रारम्भ करने का शुभ मुहूर्त बतलाया गया है।

छठे प्रकरण में नवीन गृह निर्माण का शुभ समय बताया गया है—

मकान की भूमि की नाम राशि, मालिक की नाम राशि से शुभाशुभ का विचार ब्राह्मणादि वर्ण क्रम से ग्राम की शुभ दिशा में मकान बनाने का विचार, अ, क, च, ट, त, प, य, श आठ वर्गों से अपने नामादि वर्ण की लाभ प्रद संख्या विचार, पूर्व दिशा में ढलान से भूमि का शुभाशुभ ज्ञान, भूमि शोधन, खात की गहराई आदि विचार, गृह में पूर्वादि दिशा साधन ज्ञान, गृह आरम्भ करने के शुभ नक्षत्र वारादि विचार, पृष्ठ सम्मुख चन्द्र विचार, गृहारम्भ में निषिद्ध तिथिवार नक्षत्रादि विचार, वास्तु पुरुष समय, वास्तु पुरुष के शिर आदि दिशा समझकर मकान का शुभारम्भ, ध्वजधूम आदि आठ आयादि के नाम, शुभाशुभ विचार से द्वार (मुख्य द्वार) का निर्णय, जन्म या नाम राशि से द्वारादि निर्णय, आसपास के मकानों का वेध विचार राशिपरत्वेन विचार, घरों (गृहों) के नामकरण-नामाक्षर संख्या ज्ञान, दीर्घ वि······से गृहपिण्ड सायन गणित, भूमि शोधन के लिए सूत्रपात, शङ्कुन्यास, मुख्य द्वार का मान, स्नान, शयन, कोष, देव, आदि कमरों का निर्माण हेतु स्थान विचार, आय आदि के विचार से उपयुक्त घर, अपूर्व प्रवेश आदि और जीर्णादि गृहों का नवीनीकरण के अनन्तर गृह प्रवेश में लग्नादि ग्रह शुद्धि आदि विचार इस नवीन गृह निर्माण प्रकरण में प्रस्तुत किये गये हैं।

सातवाँ प्रकरण यात्रा प्रकरण है—जन्मकुण्डली के अनुसार शुभ ग्रह की दशा और उसी शुभ ग्रह के वार के दिन यात्रा करनी चाहिए। यात्रा के शुभ नक्षत्र और अनिष्ठ नक्षत्रों का उल्लेख रिक्ता आदि तिथियों में यात्रा निषेध के साथ बुध और शुक्र सम्मुख दिशा में न हों यह भी ध्यान देना चाहिए।

यात्रा में दिशा शूल विचार, योगिनी दिशाओं की स्थिति, परिघ योग की दिशा और परिघ लंघन निषेध पूर्वादि दिशाओं में शुभ नक्षत्रों में पश्चिम दक्षिणादि दिशा गमन निषेध, दिन रात्रि मान के तीन विभागों में उग्र—चर संज्ञक नक्षत्रों में यात्रा निषेध, अभिजित नामक २८ वें नक्षत्र का काल और इस समय का यात्रा काल सुखद कहते हुए सूर्य चन्द्रमा को एक ही अयन स्थिति में अयन दिशा आदि यात्रा शुभ, 'अडल' 'विडल' योग साधन और इन योगों में यात्रा निषेध वार-शूल और दोहद विचार, अस्तं गत वक्री आदि ग्रह वारों में यात्रा निषेध, लालाठिक योग विचार और इसमें यात्रा निषेध, वक्री ग्रह की केन्द्र स्थिति में विघ्न प्रद ग्रह योग, सम्मुख शुक्र का परिहार के साथ अन्य अनेक परिहार, यात्रा करने वाले के लिए शास्त्रीय नियम, यात्रा में शुभ शकुन और अशुभ शकुन, अनेक शकुनान्तर विचार, नदी पार करने, राजभय से स्थानान्तर गमन, संग्राम, नष्ट वस्तु की गवेषणा आदि में अशुभ शकुन भी शुभ कहे गये हैं।

आठवें प्रकरण का नाम मिश्र प्रकरण है—

यह प्रकरण अनेक विषयों के मूहूर्तों पर प्रकाश डालता है। राज्याभिषेक के साथ ही देवता प्रतिष्ठा के मुहूर्त, नवीन वस्त्र धारण तथा वस्त्र क्षालनादि के मुहूर्त, विवाहादि उत्सवों में पुरुषों के लिए आभूषण धारण के साथ व्यापारादि कर्म आरम्भ करने के शुभ मुहूर्तों का वर्णन, धनिष्ठार्द्ध से रेवती के अन्त तक पञ्चक नक्षत्रों में निषिद्ध कार्य, स्वामी को सेवा के लिए सेवा कार्य का मुहूर्त और संन्यास (गृहस्थत्याग) लेने का शुभ समय, रेवतो आदि कृषिकर्मारम्भ का मुहूर्त, हल जोतने का हल चक्र विचार, खेती के लिए खेत में बीज बोने का शुभ समय ज्ञान, धान्य पूर्ण खेत में धान्य छेदन मुहूर्त, धान कूटने, नवीन अन्न भक्षण के साथ नृत्य गीतादि कर्मारम्भ के शुभ मुहूर्त, पशु सम्बन्धी क्रय विक्रयादि विचार, घोड़े की शिक्षादि हेतु मुहूर्त, उबटन-स्नानादि के शुभ समयों का विचार, तिल, तेल, आंवला आदि उबटन औषधि निर्माण और सेवन का शुभ मुहूर्त, रोग मुक्त दिन रोगी के लिए स्नान, निरोगी होने पर स्नान मुहूर्त, द्रव्य की प्राप्ति अप्राप्ति का विचार, भूमि में द्रव्य गाडने का मुहूर्त, वापी, कूप, तडाग निर्माण और राजदर्शन का मुहूर्त, दिव्य कर्मारम्भ मुहूर्त के साथ शुक्र के अस्त का अपवाद, ईशान सर्पादि वाली, नित्य यात्रादि विचार, अपवाद के साथ तीर्थयात्रा विचार, प्रेतकर्म निषेध इत्यादि अनेक विचार इस प्रकरण में ग्रन्थकर्ता ने बताये हैं।

नवां अनध्याय प्रकरण है—

चैत्रादि मासों में अनध्याय तिथियां, पर्व तिथियां, नक्षत्र मासपरत्वेन अनध्याय तिथियां, पूर्वदिन सूर्यास्त के पहिले मुहूर्त मात्र रहने वाली तथा द्वितीय दिन सूर्योदय से तीन मुहूर्त तक रहने वाली अनध्याय तिथियों में दोनों दिन अनध्याय होना चाहिए, इत्यादि निर्णय तथा नेवला, विलार, हरिणा, गदहा, बकरा सर्प आदि के व्यवधान मे भी अनध्याय विचार, अकस्मात् वादल, विजली, आंधी पानी के दिन भी अनध्याय होना चाहिए, उल्लू गदहा-सियार के शब्द श्रवण में भी अनध्याय, त्रयोदशी तिथि, आधीरात-एवं

सप्तमी एक प्रहर के दिनों में भी अनध्याय, श्रावणी कर्म के ऊपर भी रात्रि के पूर्व भाग में एक मास तक आदि विवेचन ग्रन्थ में सम्यक् स्पष्ट किया गया है।

दशम प्रकरण में मात्र एक ही श्लोक है।

स्त्री-पुरुष के अङ्ग में पल्ली पतन (छिपकली गिरने) का शुभाशुभ विचार इस प्रकरण में किया है।

ग्यारहवाँ गोचर प्रकरण है—गोचर से ग्रहों के शुभाशुभ स्थान वर्णन ग्रहों का वेध स्थान इस प्रकरण में सुविचारित हुआ है।

बारहवाँ संक्रान्ति प्रकरण है—राशियों के अनुसार संक्रान्तियों का शुभाशुभ फल विचार, मकर, कर्क संक्रान्तियों में विशेष विचार इस प्रकरण में किया गया है।

बहुत विस्तार से लिखे गये प्राचीन ग्रन्थों एव भाष्यों के पठनपाठन में समय अधिक लगते हुए भी उन वृहद ग्रन्थ आकर का उपयोग करना दैवज्ञों के लिए कठिन हो जाता है। यदि आकर ग्रन्थों में लिखे गये शास्त्रों के आमूल चूल समग्र आशय ग्रन्थों के लघु रूप में उपलब्ध हो जायँ तो पाठकों के बहुमूल्य समय का सदुपयोग हो जाता है और शास्त्र ज्ञानप्राप्ति के लिए समय की भी बचत हो जाती है। मुहूर्त ज्योतिष शास्त्र में अनेक बृहद् ग्रन्थों की उपलब्धि है। उनका बृहद् आकार कण्ठ करने में कठिनाई देता है। परन्तु मुहूर्त मार्तण्ड ग्रन्थ लघुरूप में (१६० श्लोक) कण्ठीकरण में सुविधा जनक होने के कारण मुहूर्त ग्रन्थों में शीर्षस्थ है।

मुहूर्त मार्तण्ड ग्रन्थ के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में श्रीराम दैवज्ञ ने मुहूर्त शास्त्रों के विस्तृत वर्णन हेतु मुहूर्त चिन्तामणि नामक बृहद् ग्रन्थ की रचना कर दी थी। किन्तु ग्रन्थ गौरव नहीं के कारण यह मुहूर्त मार्तण्ड ग्रन्थ पाठकों के लिए समग्र मुहूर्तों का सुविशद व्याख्यान सहित लाघवयुक्त होकर अत्यन्त उपयोगी है।

अत्यन्त उपयोगी मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ के रचयिता आचार्य नारायण हैं। ग्रन्थ रचयिता श्री नारायण ने ही स्वरचित मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ की टीका मार्तण्डवल्लभा भी स्वयं लिखकर शास्त्र सम्वर्द्धन से विपुल यशःकाय प्राप्त किया है।

मुहूर्तमार्तण्डकार नारायणभट्ट का विशेष इतिवृत्त नहीं मिलता। इनके पिता अनन्तश्री थे और वह भी ज्योतिष के विद्वान थे। उनका ग्रन्थ 'अनन्त सुधारस' पञ्चाङ्ग गणित ग्रन्थ है। नारायण भट्ट ने शक १४९३ में मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ लिखा था। इनका गोत्र कौशिक था और यह वाजसनेयी ब्राह्मण थे। देवगिरी (दौलताबाद) के उत्तर धृणेश्वर महादेवतीर्थ के उत्तर में स्थित टापर गांव के वासी थे। इनके पूर्वज सासमणूर के निवासी थे। सम्प्रति ग्रन्थकार का मातुलवंश ही जीवित है।

सुधाकर द्विवेदी ने स्पष्ट किया है कि मुहूर्त ग्रन्थों में यह अतिप्रतिष्ठित प्रामाणिक ग्रन्थ है। ग्रन्थकार ने अपनी १४९४ शक में मार्तण्डवल्लभा टीका लिखकर इसकी उपादेयता बढ़ा दी है। मुहूर्तमार्तण्ड में वास्तुप्रकरणे-ऽनेनोज्जयिन्या यमदिशि चित्रास्वात्योर्मध्योर्वेधेन तदुत्तरे च कृत्तिकादयवेधेन प्राचीसाधनं कृतम्। एतादृशं प्राचीसाधनं वेदे प्रसिद्धम्। इसमें

यात्रा में दिशा शूल विचार, योगिनी दिशाओं की स्थिति, परिघ योग की दिशा और परिघ लंघन निषेध पूर्वादि दिशाओं में शुभ नक्षत्रों में पश्चिम दक्षिणादि दिशा गमन निषेध, दिन रात्रि मान के तीन विभागों में उग्र—चर संज्ञक नक्षत्रों में यात्रा निषेध, अभिजित नामक २८ वें नक्षत्र का काल और इस समय का यात्रा काल सुखद कहते हुए सूर्य चन्द्रमा को एक ही अयन स्थिति में अयन दिशा आदि यात्रा शुभ, 'अडल' 'विडल' योग साधन और इन योगों में यात्रा निषेध वार-शूल और दोहद विचार, अस्तं गत वक्री आदि ग्रह वारों में यात्रा निषेध, लालाटिक योग विचार और इसमें यात्रा निषेध, वक्री ग्रह की केन्द्र स्थिति में विघ्न प्रद ग्रह योग, सम्मुख शुक्र का परिहार के साथ अन्य अनेक परिहार, यात्रा करने वाले के लिए शास्त्रीय नियम, यात्रा में शुभ शकुन और अशुभ शकुन, अनेक शकुनान्तर विचार, नदी पार करने, राजभय से स्थानान्तर गमन, संग्राम, नष्ट वस्तु की गवेषणा आदि में अशुभ शकुन भी शुभ कहे गये हैं।

आठवें प्रकरण का नाम मिश्र प्रकरण है—

यह प्रकरण अनेक विषयों के मूहूर्तों पर प्रकाश डालता है। राज्याभिषेक के साथ ही देवता प्रतिष्ठा के मुहूर्त, नवीन वस्त्र धारण तथा वस्त्र क्षालनादि के मुहूर्त, विवाहादि उत्सवों में पुरुषों के लिए आभूषण धारण के साथ व्यापारादि कर्म आरम्भ करने के शुभ मुहूर्तों का वर्णन, धनिष्ठार्द्ध से रेवती के अन्त तक पञ्चक नक्षत्रों में निषिद्ध कार्य, स्वामी की सेवा के लिए सेवा कार्य का मुहूर्त और संन्यास (गृहस्थत्याग) लेने का शुभ समय, रेवतो आदि कृषिकर्मारम्भ का मुहूर्त, हल जोतने का हल चक्र विचार, खेती के लिए खेत में बोज बोने का शुभ समय ज्ञान, धान्य पूर्ण खेत में धान्य छेदन मुहूर्त, धान कूटने, नवीन अन्न भक्षण के साथ नृत्य गोतादि कर्मारम्भ के शुभ मुहूर्त, पशु सम्बन्धी क्रय विक्रयादि विचार, घोड़े की शिक्षादि हेतु मुहूर्त, उबटन-स्नानादि के शुभ समयों का विचार, तिल, तेल, आंवला आदि उबटन औषधि निर्माण और सेवन का शुभ मुहूर्त, रोग मुक्त दिन रोगी के लिए स्नान, निरोगी होने पर स्नान मुहूर्त, द्रव्य की प्राप्ति अप्राप्ति का विचार, भूमि में द्रव्य गाडने का मुहूर्त, वापी, कूप, तडाग निर्माण और राजदर्शन का मुहूर्त, दिव्य कर्मारम्भ मुहूर्त के साथ शुक्र के अस्त का अपवाद, ईशान सर्पादि वाली, नित्य यात्रादि विचार, अपवाद के साथ तीर्थयात्रा विचार, प्रेतकर्म निषेध इत्यादि अनेक विचार इस प्रकरण में ग्रन्थकर्ता ने बताये हैं।

नवां अनध्याय प्रकरण है—

चैत्रादि मासों में अनध्याय तिथियां, पर्व तिथियां, नक्षत्र मासपरत्वेन अनध्याय तिथियां, पूर्वदिन सूर्यास्त के पहिले मुहूर्त मात्र रहने वाली तथा द्वितीय दिन सूर्योदय से तीन मुहूर्त तक रहने वाली अनध्याय तिथियों में दोनों दिन अनध्याय होना चाहिए, इत्यादि निर्णय तथा नेवला, विलार, हरिणा, गदहा, बकरा सर्प आदि के व्यवधान में भी अनध्याय विचार, अकस्मात् बादल, विजली, आंधी पानी के दिन भी अनध्याय होना चाहिए, उल्लू गदहा-सियार के शब्द श्रवण में भी अनध्याय, त्रयोदशी तिथि, आधीरात-एवं

सप्तमी एक प्रहर के दिनों में भी अनध्याय, श्रावणी कर्म के ऊपर भी रात्रि के पूर्व भाग में एक मास तक आदि विवेचन ग्रन्थ में सम्यक् स्पष्ट किया गया है।

दशम प्रकरण में मात्र एक ही श्लोक है।

स्त्री-पुरुष के अङ्ग में पल्ली पतन (छिपकली गिरने) का शुभाशुभ विचार इस प्रकरण में किया है।

ग्यारहवाँ गोचर प्रकरण है—गोचर से ग्रहों के शुभाशुभ स्थान वर्णन ग्रहों का वेध स्थान इस प्रकरण में सुविचारित हुआ है।

बारहवाँ संक्रान्ति प्रकरण है—राशियों के अनुसार संक्रान्तियों का शुभाशुभ फल विचार, मकर, कर्क संक्रान्तियों में विशेष विचार इस प्रकरण में किया गया है।

बहुत विस्तार से लिखे गये प्राचीन ग्रन्थों एवं भाष्यों के पठनपाठन में समय अधिक लगते हुए भी उन बृहद ग्रन्थ आकर का उपयोग करना दैवज्ञों के लिए कठिन हो जाता है। यदि आकर ग्रन्थों में लिखे गये शास्त्रों के आमूल चूल समग्र आशय ग्रन्थों के लघु रूप में उपलब्ध हो जायँ तो पाठकों के बहुमूल्य समय का सदुपयोग हो जाता है और शास्त्र ज्ञानप्राप्ति के लिए समय की भी बचत हो जाती है। मुहूर्त ज्योतिष शास्त्र में अनेक बृहद् ग्रन्थों की उपलब्धि है। उनका बृहद् आकार कण्ठ करने में कठिनाई देता है। परन्तु मुहूर्त मार्तण्ड ग्रन्थ लघुरूप में (१६० श्लोक) कण्ठीकरण में सुविधा जनक होने के कारण मुहूर्त ग्रन्थों में शीर्षस्थ है।

मुहूर्त मार्तण्ड ग्रन्थ के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में श्रीराम दैवज्ञ ने मुहूर्त शास्त्रों के विस्तृत वर्णन हेतु मुहर्त चिन्तामणि नामक बृहद् ग्रन्थ की रचना कर दी थी। किन्तु ग्रन्थ गौरव नहीं के कारण यह मुहूर्त मार्तण्ड ग्रन्थ पाठकों के लिए समग्र मुहूर्तों का सुविशद व्याख्यान सहित लाघवयुक्त होकर अत्यन्त उपयोगी है।

अत्यन्त उपयोगी मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ के रचयिता आचार्य नारायण हैं। ग्रन्थ रचयिता श्री नारायण ने ही स्वरचित मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ की टीका मार्तण्डवल्लभा भी स्वयं लिखकर शास्त्र सम्वर्द्धन से विपुल यशःकाय प्राप्त किया है।

मुहूर्तमार्तण्डकार नारायणभट्ट का विशेष इतिवृत्त नहीं मिलता। इनके पिता अनन्तश्री थे और वह भी ज्योतिष के विद्वान थे। उनका ग्रन्थ 'अनन्त सुधारस' पञ्चाङ्ग गणित ग्रन्थ है। नारायण भट्ट ने शक १४९३ में मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ लिखा था। इनका गोत्र कौशिक था और यह वाजसनेयी ब्राह्मण थे। देवगिरी (दौलताबाद) के उत्तर धृणेश्वर महादेवतीर्थ के उत्तर में स्थित टापर गांव के वासी थे। इनके पूर्वज सासमणूर के निवासी थे। सम्प्रति ग्रन्थकार का मातुलवंश ही जीवित है।

सुधाकर द्विवेदी ने स्पष्ट किया है कि मुहूर्त ग्रन्थों में यह अतिप्रतिष्ठित प्रामाणिक ग्रन्थ है। ग्रन्थकार ने अपनी १४९४ शक में मार्तण्डवल्लभा टीका लिखकर इसकी उपादेयता बढ़ा दी है। मुहुर्तमार्तण्ड में वास्तुप्रकरणेऽनेनोज्जयिन्या यमदिशि चित्रास्वात्योर्मयोर्वेधेन तदुत्तरे च कृत्तिकादयवेधेन प्राचीसाधनं कृतम्। एतादृशं प्राचीसाधनं वेदे प्रसिद्धम्। इसमें

मुहुर्त सम्बन्धी तमाम विशेषताएँ है। उनके पिता खगोलज्ञ थे इसलिए खगोलीय विशिष्टता दिखाई देती है।

ग्रन्थकार के ज्ञान की पराकाष्ठा भारत में लुप्तप्राय गर्भाधान संस्कार के वर्णन में प्राप्त होती है। कन्या के प्रथम रजोदर्शन के शुभाशुभ का विशद वर्णन अपनी टीका में इन्होंने किया है। यह वर्णन अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। इसके साथ ही कन्या के प्रथम रजोदर्शन से ही उसके भावी जीवन का भी इससे ज्ञान हो जाता है। यह प्रसंग जिस प्रकार विस्तार से लिखा गया है उसे पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना अति आवश्यक है। स्त्री के प्रथम रजोदर्शन का प्रसंग लेखक की विशिष्टता प्रदर्शित करता है उसका वर्णन आवश्यक है। वह तिथि वार नक्षत्र योग दिन रात्रि के अनुसार फलादेश लिखता है।

यथा—**मास** = पौष ज्येष्ठ कार्तिक आषाढ़ और भाद्रपद अशुभ बाकी शुभ। **योग** = विष्कम्भ, अतिगंड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात, परिघ, वैधृति—अशुभ बाकी शुभ। **दिन** = रवि, मंगल, शनिवार अशुभ बाको शुभ। **तिथि** = नवमी, चतुर्दशी, अमावस्या, द्वादशी अष्टमी षष्ठी—अशुभ बाकी—शुभ। **मार्ग** = **स्थान** = कुत्सित स्थान, देवस्थान, पितृस्थान, श्मशान, निम्नस्थान, कुपद का रजोदर्शन शुभ नहीं। **समय** = रात्रि, दोनों संध्यायें दिन का तृतीय भाग शुभ नहीं। **नक्षत्र** = मिश्र संज्ञक, उग्रसंज्ञक तीक्ष्ण संज्ञक (मूलरहित) नक्षत्र अशुभ बाकी शुभ नक्षत्र हैं।

करण = वव में विधवा या बन्ध्या, बालव में कन्या जन्म, कौलव में पागल, तैतिल में सुन्दर मति, गर में स्वयं मृत्यु, वणिक में नष्ट संतान होना, भद्रा में धनहीन, शकुनि और चतुष्पद में विधवा होने का फल होता है। नाग में सुन्दर और किंग शुक में भी विधवा होने का फल है।

रंगफल (वस्त्रों का)—लाल, पुराना, जला हुआ, नीला तथा बहु रंग का धारण किए वस्त्र में भी रजोदर्शन ठीक नहीं होता।

लग्न = पाप ग्रहों—मंगल, सूर्य, शनि, के लग्नों में यानी १, ८, ५, १०, ११ में रजोदर्शन शुभ नहीं।

रजोरंग—कृष्णवर्ण = विधवा कुर्वारग में मृत प्रजा, पूर्णलाल = पुत्र होता है।

नक्षत्र फल—नक्षत्रों के आधार पर रजोदर्शन होने फल।

अश्विनी—में कन्या पुत्रवती, सौम्य, स्थिर गम्भीर वंश वृद्धिकारी।

भरणी—में वन्ध्या पुश्चली, गर्भपातकरी, काकवंध्या।

कृतिका—में पुश्चली, अनर्थकरी गर्भपातकरी मृतपुत्रदाह।

रोहिणी—में सुशीला, सुयोग्य संतान पैदा करने वाली, पति प्रिया, पतिभक्ता, गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाने वाली।

मृगशिरा—में धर्मरता, सहिष्णु, सती-साध्वी, पतिपुत्र से सुखी।

आर्द्रा—में कुलटा, दुर्भगा, मृतपुत्रा, जड़ा व्रतपरिभ्रष्टा।

पुनर्वसु—में पुत्रवती, योग्यसंतान में सुखी, कुलाचार मर्यादा पालिनी।

पुष्य—में पतिप्रिया, पुत्रवती, नाना प्रकार भोग्य सुखी, दक्षा।

आश्लेषा—में परपुरुषरता, क्रोधिनी, निर्लज्जा, मिथ्याभाषिणी।

मघा—में रोगिणी सर्वदा रति लोलुपा, सदा पितृ गृहवासिनी।

पूर्वाफाल्गुनी—में परकार्यरता, दीना, कुपुत्रसन्तान वाली।

उत्तराफाल्गुनी—में सुसंतान से सुखी, धर्मरता, सर्वप्रिया, मित्रपूज्या सती, भ्रातृ-गृहाश्रयवासिनी।

हस्त—में निर्वैरा पर्याप्त धनैश्वर्यसम्पन्ना, दान प्रिया, पुत्रयुक्ता।

चित्रा—में योगिनी, क्रयविक्रय कुशला शुभा।

स्वाती—में बहुतधन सम्पन्न, डरालु, कुशला शिल्पकला प्रिया पुत्र-पौत्रवती।

विशाखा—पतिसेवा विरत, पानासक्त, नीचकर्मरता, परप्रिया, पुत्ररहिता मलिना, क्रुद्धा।

अनुराधा—पति से आदरणीय, अपने गुणशील से सम्मानित, सुसंतान सम्पन्न, सौभाग्यवती।

ज्येष्ठा—दुष्ट चरित्र, क्लेशयुक्त, दुष्टसंतान वाली, पुंश्चली, अनर्थकरी।

मूल—में सन्तानार्थ गुणाधिक प्रयत्नशील, नित्यस्वकर्मरता।

पूर्वाषाढ़—में प्रच्छन्नमाया, दुष्ट सन्तान वाली, प्राणियों की हिंसा में तत्परा, व्यसनों में बराबर रत।

उत्तराषाढ़—में कार्याकार्य में कुशल, सदा धर्माचारप्रिया गुणग्राहिणी भाग्यवती।

श्रवण—पुत्रपौत्र सम्पन्ना, धनधान्यपूर्णा, समयानुसार प्रगतिशील।

धनिष्ठा—में धनधान्य सम्पन्ना, पुत्रपौत्र युता, स्वकर्मरता, सुखी।

शतभिषा—में बहुपुत्रा, धनवती, काल क्रमानुसारिणी, प्रगतिशीला।

पूर्वाभाद्रपद—में बंधन में रखने वाली, बंधु-बाधवों से ईर्ष्या, दुष्टकर्मरता, शिल्प कार्यों में कुशल।

उत्तराभाद्रपद—में सुसमृद्ध, पुत्रवती, मान्या, सुप्रसन्ना, पतिप्रिया, बंधुपूज्या।

रेवती—में पुत्र सुखी, धर्मवतो, दृढ़व्रता, विख्याता, गुण सम्पन्ना होती है।

निष्कर्षतः ग्रन्थकार के ज्ञान की अपूर्वता सिद्ध होती है जो आज के विकसित विज्ञान युग के वैज्ञानिकों के लिए विचारणीय है।

प्रस्तुत ग्रंथ का व्याख्यान लिखने की मेरी चिर प्रतीक्षित इच्छा थी, जो आज श्री काशो विश्वेश्वर की अनुकम्पा से पूर्ण हो रही है। यद्यपि फलित ज्यौतिष का ज्ञान मुझे कुल परम्परागत था। ग्रहगोल गणित के अध्ययन के लिए मुझे पूज्य पिताजी ने काशी भेजा। यहाँ मैंने ग्रहगोल मर्मज्ञ महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी के प्रधान शिष्य श्री १०८ पूज्य गुरुवर श्री पं० बलदेव पाठक (प्रधानाध्यापक ज्यौतिष विभाग का०हि०वि०वि०) के चरणों में ग्रहगोल गणित ज्यौतिष का अध्ययन किया। इस अध्ययन में शास्त्रार्थ आदि से प्रभावित होकर ब्रह्मर्षि पं० मदन मोहन मालवीय ने सन् १९३८ में मेरी नियुक्ति प्राच्य

विद्या संकाय, का० हि० वि० वि० में कर दी। अध्यापन काल में मुझे विभागीय राजनीति से फलित के ग्रन्थ अधिक पढ़ाने को दिये गये उस समय मुझे यह ग्रन्थ भी पढ़ाने को मिला। यद्यपि इसके पूर्व में मैं इस ग्रन्थ से विशेष परिचित न था तथापि गहन परिश्रम कर आद्योपांत ग्रंथ अध्यापन कराया। उसी समय से इस अपूर्व ग्रन्थ की व्याख्या करने की इच्छा थी। जो आज सफल हो रही है जिससे संतोष हो रहा है।

अथ च शाकुन ज्योतिष शास्त्र के "वासन्तराज शाकुन" ग्रंथ की व्याख्या लिखने की भी इच्छा मेरी रही है, जो अब संभव नहीं लगती या जैसी बाबा विश्वनाथ की इच्छा। "शाकुन ज्योतिष" पर मेरी विशेष रुचि रही है, मेरी प्रकृति उस पर बहुत विश्वास करती है। शाकुन विचार अद्भुत फलादेश की विद्या है, यह ग्रह नक्षत्र, योग आदि ज्ञान रहित सही फलादेश, की उत्तम विद्या एवं उत्तम ज्ञान है। इसके आधार पर मुझे कई सही अनुभूतियां आज तक होती रही हैं। मेरे परिचित दाक्षिणात्य काशी के मूर्धन्य वैदिक श्री पं० मनोहर जोशी अपनी कन्या के विवाह मेलापक विचार के लिए मेरे पास आये, उस समय के शाकुन शास्त्र के आधार पर उपलब्ध शकुन से मैंने बिना कुण्डली देखे ही कहा कि उत्तम मेलापक है, विवाह करिये तदनुसार उन्होंने मेरी बात मानकर विवाह संपन्न किया। आज कन्या, दामाद पुत्र सहित सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दूसरा एक अपशकुन मुझे २१ नवम्बर १९९१ को स्वप्न में प्रातः ४ बजे मिला कि मैं रिक्से से हरिश्चन्द्र घाट जा रहा था। रिक्सा चालक ने मुझे लगभग एक फर्लांग पूर्व ही उतार दिया मेरा उससे विवाद हुआ कि श्मशान घाट तक चलो परन्तु वह नहीं गया। मेरी निद्रा भंग हो गई। ठीक २३ नवम्बर ९१ को प्रातः गंगा स्नान से लौटकर आते हुये मार्ग में अपने विशेष परिचित नंदी (सांड़) ने मुझे मेरी ही गलती के कारण शृंग से गिरा दिया। उस नन्दी से मेरी अत्यन्त घनिष्ठता थी और वह मुझसे अत्यन्त स्नेह रखता था। गलती मेरी यह थी मैंने ध्यान नहीं दिया कि उसके समीप एक गाय थी। नन्दी द्वारा शृंग से मुझे गिरा देने पर मेरी कूल्हे की हड्डी टूट गई। आपरेशन आदि के बाद मेरी जान क्यों बची यह दुस्वप्न का दुष्परिणाम ही था। आश्चर्य है कि वह मेरा प्रिय नन्दी चार माह बाद मुझे घर आकर दर्शन देकर कुछ दिन बाद श्री विश्वनाथ धाम (परलोक) चला गया। इसी बीच मुझे शकुन और प्राप्त हुआ कि मेरे पुत्र दिनेश को पुत्र प्राप्ति होगी और मैंने परिवार में कहा कि पौत्र आ रहा है और जो १८ जुलाई १९९२ को सत्य हुआ। इस प्रकार शाकुन ज्योतिष एवं स्वप्न के आधार पर अनेक फल सटीक घटित होते देखे हैं। इसीलिए मेरी निजी मान्यता रही है कि ज्योतिष का क्षेत्र केवल मुहूर्तों के गणित फलित आदि तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये। वैयक्तिक भविष्यवाणियाँ, दुरनुभूति, स्वर, शकुन, स्वप्न, योग सिद्धि और इष्टसिद्धि द्वारा सुदूर की घटनायें देखी व समझी जा सकती हैं। ये भविष्यवाणियाँ सही होती भी देखी गई हैं। अतः एतत् सम्बन्धी सिद्धि-प्रदत्त ज्ञान, आगामी घटनाओं का अनुमान जिन-जिन कल्पनाओं द्वारा किया जाता है वह ज्योतिष का ही अन्यतम अंग है। आवश्यकता इस बात की है कि तत्सम्बन्धी ग्रंथों के

नियमों में समरूपता लायी जाये। एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के द्वारा इनको जनसाधारण तक पहुँचाया जाय तभी ज्यौतिष शास्त्र की महत्ता एवं एकरूपता ठीक समझी जा सकती है।

८४ वर्ष की लम्बी जीवन यात्रा में अनेक परिवारों से घनिष्ठ सम्बन्ध होने से उन परिवारों की उन्नति और अवनति या उत्थान और पतन का कारण समझ में आया कि—(१) जिस परिवार के पुत्र कलत्रादि सभी सदस्य मिष्टभाषी, मितभाषी होते हुए आचाराादि अनुष्ठान में तत्पर पाये गये उन परिवारों को सदासुखी, शुभोदयोन्मुख देखा गया। (२) तथा कटुभाषण रत, कलहप्रिय परिवारों का जीवन दुःखी और संघर्षमय पाया गया या देखा गया। इसलिए सुभाषित की इस सरस वाणी की दिशा में—

"रे जिह्वे ! रस सारज्ञे ! सर्वदा मधुरप्रिये ! मधुरं चेद् वदकल्याणि, लोको हि मधुरप्रियः। अभ्युदयोन्मुख जीवन की शुभ कामना के लिए वाणी की कटुता का त्याग और सरस का उच्चारण भी भविष्य जीवन ज्ञान का दिग्दर्शन देती है—अन्यच्च-"सरसो विपरीतश्चेत् सरसत्वं न मुञ्चति" सरस शब्द का विपरीत उच्चारण भी सरस ही होता है। अतः सदा सरसता बनी रहनी चाहिए। अभ्युदय प्राप्ति का यही वाक्य वाणी का सर्वोत्तम भूषण है। सरस वाणी का भूषण भी ज्योतिष है।

जरायु को प्राप्त, शिथिल इन्द्रियाँ, अज्ञान विस्मृति, भ्रांति एवं अनवधानतावश व्याख्यान लेखन में त्रुटियों का रहना स्वाभाविक है। विज्ञपाठक स्वयं परिमार्जन कर लेंगे या प्रकाशक को सूचित करने का कष्ट करेंगे जिससे भावी संस्करण स्वच्छ हो सके।

अंत में शेष जीवन की सार्थकता का एकमात्र विश्वास अघोरेश्वर रूप बाबा श्रीविश्वनाथ को समझकर इस धन्य श्रीकाशी नगरी में यह लेखनी सार्थक हो रही है और उनको स्मरण करते हुए यह लेखनी विश्राम की कामना कर रही है—

स्नातव्यं जाह्नवीतोये द्रष्टव्यः पार्वतीपतिः।
स्मर्तव्यः कमलाकान्तो वस्तव्यं काशिकास्थले॥
असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां सङ्गो गङ्गाम्भः शम्भुसेवनम्॥
हर हर महादेव शम्भो ! जय श्री काशी विश्वनाथ गङ्गे !
हर हर महादेव शम्भो ! जय श्री काशी विश्वनाथ गङ्गे !

इतिशम्

केदारदत्त जोशी
ज्यौतिश्शास्त्राचार्य
(गणित + फलित)
अवकाश प्राप्त प्राध्यापक
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

हरिहर्ष निकेतन
१/२८, नगवा (नलगाँव)
श्रीकाशी, वाराणसी (उ० प्र०)
संवत् २०४९ माघ शुक्ल वसंत पंचमी
बुधवार, पू० फा०, शिवयोग ववकरण।
दिनांक २७.१ १९९३

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय

पृष्ठ

———

॥ श्रीः ॥

ॐ गं गणपतये नमः

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबल तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं नमामि॥

मुहूर्त्तमार्त्तण्डः

मार्तण्डवल्लभा-संस्कृतटीका—वागीश्वरी-हिन्दीव्याख्यासहितः

त्याज्यप्रकरणम् ॥ १ ॥

सिन्दूरोल्लसितमिभेन्द्रवक्त्रमम्बां श्रीविष्णुं वियतिचरान्गुरून्प्रणम्य।
बह्वर्थं विबुधमुदे लघुं मुहूर्तमार्त्तण्डं सुगममहं तनोमि सिद्ध्यै ॥१॥

मार्तण्डवल्लभा

मार्त्तण्डोऽवतु वाचं नः पादैर्जाड्यतमोहरः।
वृत्तबद्धतनुः सेव्योऽभीष्टदो विश्वलोचनः॥ १ ॥
कुर्वे मुहूर्तमार्तण्डटीकां मार्त्तण्डवल्लभाम्।
इयमाकल्पमेतेन दीव्याद्विप्रास्यवेश्मसु ॥ २ ॥

अर्थद्वयवाची। तत्र प्रथमं सूर्यपक्षे-मार्तण्डः श्रीसूर्यः नोऽस्माकं वाचमवतु रक्षतु। किंलक्षणो मार्त्तण्डः वृत्तबद्धतनुः वृत्ते मण्डले बद्धा तनुर्यस्य स तथा। तथाच स्मृतौ "सशङ्खचक्रं रविमण्डले स्थितं कुशेशयं कान्तमनन्तमच्युतम्" इत्यादि। श्रुतिरपि "य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निः" इत्यादिः। पुनः किंलक्षणः पादैः किरणैः जाड्यतमोहरः जाड्यं पातकं तमोऽन्धकारस्तद्धरतीति तथा। पुनः किं सेव्यः सेवितुं योग्यः सेव्यः अभीष्टफलदातृत्वात्। पुनः अभीष्टदः सेवितः सन्नभीष्टार्थदायीत्यर्थः। पुनः कथंभूतः विश्वलोचनः विश्वं लोच्यतेऽनेनेति विश्वलोचनः "लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः" इत्यादित्यहृदये उक्तत्वात् प्रकाशकत्वात्। अथ ग्रन्थपक्षे—मार्त्तण्डः मुहूर्त्तमार्त्तण्डः नः वाचम् अवतु किंलक्षणः वृत्तबद्धतनुः वृत्तानि प्रहर्षिणीशार्दूलविक्रीडितानि तैर्निबद्धा तनुर्यस्य तथा, पुनः० पादैर्जाड्यतमोहरः पादैर्वृत्तचरणैर्जाड्यं मूर्खत्वं तदेव तमः तद्धरतीति तथा, पुनः० सेव्यः निरन्तर पठनीय इत्यर्थः। पुनः० अभीष्टदः यथोक्तमुहूर्त्त-व्युत्पत्तिकरणादभीष्टार्थसिद्धिकारीत्यर्थः। पुनः० विश्वलोचनः समयप्रकाशकत्वात्॥

इह शास्त्रे तावत्संबन्धाभिधेयप्रयोजनान्युच्यन्ते। आ ब्रह्मादिविनिःसृतमिदं वेदाङ्गमितिसंबन्धः। उक्तं च नारदमुनिना स्वसंहितायाम् "वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः-

शास्त्रमनुत्तमम्। अस्य शास्त्रस्य संबन्धो वेदाङ्गमिति धातृतः" इति। अत्राप्युक्तम् "पूर्ववाक्यार्थमादाय ग्रन्थोऽयं रचितो लघुः" इति। त्याज्यनक्षत्राद्यर्तुलग्नगोचर-गर्भाधानादिसंस्कार - विवाहाग्न्याधानवास्तुयात्रामिश्रानध्यायपल्लीग्रहगोचरसंक्रान्ति-कथनमभिधेयम्। तथाच नारदः "अभिधेयं च जगतः शुभाशुभनिरूपणम्" इति। अस्य प्रयोजनं मुहूर्तैर्नानाकार्यसाधनम्, अस्य सम्यग्ज्ञानान्मोक्षावाप्तिरिति। किमेभिरुक्तैरित्यत्रोच्यते नृणां संबन्धाभिधेयप्रयोजनकथनात् शास्त्रे प्रवृत्तिर्जायते। उक्तं च "सिद्धिः श्रोतृप्रवृत्तीनां संबन्धकथनाद्यतः। तस्मात्सर्वेषु शास्त्रेषु संबन्धः पूर्वमुच्यते। किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्टस्तु केनचित्। यदि न प्रोच्यते तस्मै फलं शून्यं तु तद् भवेत्। सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्। यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्केन न गृह्यते" इति। इह शास्त्रे कस्याधिकार इति प्रोच्यते द्विजस्यैव, वेदाङ्गत्वात्। यतः षडङ्गवेदो हि द्विजैरेवाध्ययनीयो ज्ञातव्यश्च। तथाचोक्तं भास्करीयसिद्धान्तशिरोमणौ "तस्माद्द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमं पवित्रम्। यो ज्योतिषं वेत्ति नरः स सम्यक् धर्मार्थमोक्षांल्लभते यशश्च" इति शिष्टास्तावच्छास्त्रा-रम्भे "सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः" इति शास्त्रेण सर्वारम्भेष्वन्तराय-प्राप्तौ सत्याम् "धर्मेण पापमपनुदति" इति श्रुतिसिद्धं प्रयोजनमास्थाय "स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः" इति लिङ्गाच्च ग्रन्थस्य निष्प्रत्यूहपरिसमाप्तये मङ्गलमाचरन्ति तस्मान्माध्यन्दिनीयो ब्राह्मणो नारायणो नारायणाच्चावाप्तमतिर्ज्योतिःशास्त्रसंहिता-स्कन्धं चिकीर्षुरशेषप्रत्यूहोपशान्तये अभिमतदेवतानमस्कारलक्षणमङ्गलपूर्वकं ग्रन्थ-करणप्रतिज्ञां प्रहर्षिण्याह—सिन्दूरोल्लसितमिति। सिन्दूरेण उल्लसितं शोभायमानं इभेन्द्रवक्त्रं गजाननम् अम्बां सरस्वतीं श्रीविष्णुं प्रसिद्धम्। वियतिचरान् गुरून् निजगुरून् शास्त्रोपदेष्टॄन् प्रणम्य नमस्कृत्वा अहं नारायणो मुहूर्त्तमार्त्तण्डनामग्रन्थं तनोमि विस्तारयामि। किमर्थम्? सिद्ध्यै कार्यसाधनाय। पुनः किमर्थम्? विबुधमुदे पण्डितहर्षाय। हर्षकारणं विशेषणद्वारेणाह—किंलक्षणं मुहूर्तमार्त्तण्डम्? लघुम् अतिशयेनाल्पम् अल्पे बह्वर्थाभावशङ्कांविशेषणद्वारा परिहरति—पुनः किंलक्षणम्? अर्थ-बहुलम् अल्पग्रन्थे बह्वर्थदुर्बोधशङ्कां परिहरति। पुनः किं० सुगमम् प्रकटार्थमिति ॥१॥

वागीश्वरी—ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण किया जा रहा है—

ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण से अभीष्ट देवी या देवता का स्मरण किया जाता है, यह भारतीय शास्त्रज्ञ शास्त्रकारों की पुनीत परम्परा आज तक अविचलरूपेण चली आ रही है। कहा भी गया है कि "मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि भवन्ति" इति शिष्टवचनम्। अर्थात् ग्रन्थों के आदि, मध्य और समापन में तीनों जगह या दो जगह नहीं तो प्रारम्भ में तो अभीष्ट देव का नाम उच्चारण और स्मरण से प्रार्थना होनी ही चाहिए। इसी अभिप्राय से यहाँ पर मुहूर्त्तमार्त्तण्ड नाम के इस ग्रन्थ के प्रणेता आचार्य नारायण दैवज्ञ ने श्री गणेश जी की वन्दना पूर्वक इस ग्रन्थ की रचना की है।

बुद्धिमान् कोई विद्वान् दैवज्ञ, ग्रन्थ लिखने में विघ्न-भय की आशंका से ग्रन्थ लेखन में आलस्य करते हैं ग्रन्थ का आरम्भ ही नहीं करते हैं। साहस के साथ यदि कोई विद्वान् दैवज्ञ, ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ करते हैं तो अनेक प्रकार की शारीरिक व्याधियों से या जीवन संघर्षमय हो जाने से ग्रन्थ को पूर्णरूप नहीं दे पाते हैं, किन्तु दैव में विश्वासपूर्वक जटिल श्रम के साथ ज्ञानी तपस्वी दैवज्ञ अनेकों विघ्नों का सामना करते हुए अथ से इति तक ग्रन्थ को पूरा करने पर ही विश्राम लेते हैं, यही उत्तम गुणज्ञ दैवज्ञों की पहिचान है।

तन्त्र शास्त्रों में विशेषतः शाक्त तन्त्र ग्रन्थों में ("गणेशं दिनेशं वह्नि शिवम्, शिवाञ्च") विघ्न विदूरीकरणाय श्री गणेश देव ही एक-मात्र सर्वशक्तिमान् देवता हैं इसी अभिप्राय से आचार्य देव गणेश जी की वन्दनापूर्वक ग्रन्थ प्रारम्भ हो रहा है। आरक्तवर्ण सिन्दूर से सुशोभित गजानन श्री गणेश, वाग्वर्द्धिनी माता सरस्वती, चतुर्भुज भगवान् श्री विष्णु, सूर्यादि केतु पर्यन्त ग्रहों और अज्ञान ध्वंस पूर्वक ज्ञानप्रकाशप्रद गुरुदेव को प्रणाम पूर्वक स्मरण करते हुए गम्भीर आशयों को सरल और लघु रूप में प्रकट करते हुए, दैवज्ञों के लिए शुभप्रद और सिद्धिप्रद बहुत विषयों से शोभित लघु इस "मुहूर्तमार्त्तण्ड" नामक ग्रन्थ की रचना की जा रही है॥ १॥

यामार्द्धं कुलिकं दिनर्द्धिमवमं पूर्वं दलं पारिघं
विष्टिं वैधृतिपातसंक्रमगणं गण्डान्तमेकार्गलम्।
कृष्णानङ्गचतुर्दिनं रविशशिक्रान्त्योः समत्वं खलां
होरां रात्रिदिनार्द्धके क्षयदिनं पित्रोर्जनन्यार्तवम्॥ २॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ नानामुहूर्तान्विवक्षुस्तावच्छुभे कर्मणि त्याज्यं त्रिभिः शार्दूलविक्रीडितैराह–यामार्द्धमिति। यामार्द्धादिकं शुभे शुभकर्मणि संत्यजेदित्यन्तिमश्लोकेनान्वयः। यामार्द्धकुलिको वक्ष्यमाणलक्षणौ दिनर्द्धिर्नाम यत्र तिथिः सूर्योदयात् षष्टिघटिका भवति सैवान्यस्मिन्दिने दृश्यते सा दिनर्द्धिः। अवमः प्रसिद्धः। पारिघं प्राग्दलं परिघयोगस्य पूर्वार्द्धम्, विष्टिर्भद्रा वक्ष्यमाणा, वैधृतिर्योगः, पातो व्यतीपातः संक्रमणं सूर्यादीनां राशिसंक्रमणं सर्वेषां ग्रहाणां संक्रमणे त्याज्यघटिका अग्रे वक्ष्यमाणाः, गण्डान्तं त्रिविधं वक्ष्यमाणम्, एकार्गलो वक्ष्यमाणः, कृष्णानङ्गचतुर्दिनं कृष्णत्रयोदश्यादिप्रतिपदन्तम् चंद्रस्य क्षीणत्वात्। कैश्चिद् द्वादश्यादिसार्द्धंदिनपंचकं त्यज्यते कृष्णेचान्त्यत्रिकं कैश्चित् तेषु मध्यमोऽयं पक्षोऽत्राङ्गीकृतः कृष्णानङ्गचतुर्दिनमिति। रविशशिक्रान्त्योः समत्वं सूर्यचन्द्रमसोः क्रान्तिसाम्यं गणितगम्यम्। तथापि तस्यावलोकनं कस्मिन् दिने कर्तव्यमित्यग्रे वक्ष्यति। खलां होरां पापग्रहहोराम् रात्रिदिनार्द्धके दिनार्द्धं रात्र्यर्द्धं च उक्तं ग्रन्थान्तरे "मुहूर्तः कालो निवसति महानिशायां च दिनदले यस्मात्। दशपूर्वं दशपरास्तस्माद्वर्ज्यानि चपलानि" इति क्षयदिनं पित्रोः माता च पिता च पितरौ तयोः पित्रोः क्षयदिनं श्राद्धदिनमित्यर्थः। जनन्यार्तवं मातुः रजस्वलात्वम्॥२॥

वागीश्वरी--सभी शुभ कर्मों में त्याज्य (अशुभ) समय बताया जा रहा है—

यामार्ध नामक अशुभ काल, कुलिक नामक अशुभ मुहूर्त्त, दिनवृद्धि या तिथि वृद्धि अर्थात् ६० घटी = २४ घण्टा से अधिक जिस तिथि का मान हो जाता है और जिस तिथि का मान ६० घटी = २४ घण्टे से कम हो उस क्षयतिथि को, परिघ योग का पूर्वार्द्ध, विष्टि अर्थात् भद्रा करण का समय, वैधृति व्यतीपात योग, सूर्य की संक्रान्ति का दिन और अन्य ग्रहों की संक्रान्ति दिनों की मात्र त्याज्य घटिकादि समय, तीन प्रकार के गण्डान्तों का समय, एकार्गल नामक दोष का समय, चान्द्रमासों के सभी कृष्णपक्षों की चतुर्दशी से शुक्लपक्ष की प्रतिपद तिथि तक के समयों, को सूर्य चन्द्रमा की क्रान्तियाँ जिस दिन तुल्य हो जाती हैं वह क्रान्ति साम्य नामक दिन, पाप ग्रह की होरा का समय, दिन और रात्रि का मध्य काल अर्थात् मध्याह्न और अर्द्धरात्रि, माता और पिता की मृत्यु सम्बन्धिनी समग्र तिथि का, अर्थात् माता-पिता की श्राद्ध तिथि का दिन और माता के आर्तव अर्थात् (ऋतु समय) रजस्वला के धर्मशास्त्रोक्त वर्जित दिनों में···(शेष आगे के श्लोक से सम्बद्ध है) ॥ २ ॥

मासाद्यं जनिसंभवं ग्रहणभं चण्डायुधं दुःक्षणं
ज्येष्ठं पूर्वभवस्य पापयुगितैष्यर्क्षाणि विद्धं च भम् ।
ऊनाख्याधिकमासकौ युतिषु विव्याशूवगण्डातिषु
त्र्यङ्कार्थाङ्करसर्तुपूर्वघटिका भानां विषाख्या घटीः ॥ ३ ॥

मार्तण्डवल्लभा–मासाद्यमिति । मासाद्यं जनिसंभवम् । जनिरुत्पत्तिस्तत्र संभवो यस्य एवंविधं मासाद्यं मासप्रभृति जन्ममासजन्मतिथिजन्मनक्षत्रादि । ग्रहणभं ग्रहण-नक्षत्रं चण्डायुधं वक्ष्यमाणं दुःक्षणो दुर्मुहूर्तो वक्ष्यमाणः तम्, ज्येष्ठं पूर्वभवस्य प्रथम-जातापत्यस्य ज्येष्ठमासम्, पापयुगितैष्यर्क्षाणि पापाः पापग्रहाः वक्ष्यमाणास्तेषामन्यतमेन युक् युक्तम् इतं गतं एष्यं पुरः स्थितम् एतानि ऋक्षाणि नक्षत्राणि विद्धं भं च विद्धनक्षत्रं वक्ष्यमाणलक्षणम्, ऊनाख्याधिकमासकौ क्षयमासाधिमासौ वक्ष्यमाणलक्षणौ, युतिषु विव्याशूवगण्डातिषु त्रि ३ अङ्क ९ अर्थ ५ अंक ९ रस ६ ऋतु ६ पूर्वघटिकाः वि विष्कम्भः व्या व्याघातः शू शूलः व वज्रः ग गण्डः प्रसिद्धः अति अतिगण्डः एषु योगेषु क्रमेण त्र्यंकार्थांकरसर्तुसंख्याकाः पूर्वघटिकाः प्रथमघटिकाः तद्यथा विष्कम्भे तिस्रः व्याघातेऽङ्काः नव शूले अर्थाः पंच वज्रे अङ्काः नव गण्डे रसाः षट् अतिगण्डे ऋतवः षडिति भानां अश्विन्यादीनां नक्षत्राणां विषाख्या घटीर्वक्ष्यमाणलक्षणाः ॥ ३ ॥

वागीश्वरी--संस्कार योग्य स्त्री पुरुषों के जन्मनक्षत्रमासतिथि को, जिस नक्षत्र में सूर्य चन्द्रमा का ग्रहण हुआ है वह नक्षत्र, (६ महीने तक शुभ कर्म में त्याग करना चाहिए) चण्डायुधनामक अत्यन्त दुष्ट समय, ज्येष्ठ सन्तान के संस्कारों के लिए ज्येष्ठ मास भी त्याज्य, पापग्रह से युक्त, पापग्रह का भोग्य और पापग्रह से युक्त नक्षत्र को भी, पापग्रह से वेधित नक्षत्र, क्षयाधिक मासों, विष्कम्भ व्याघात शूल वज्र और गण्डयोगों के क्रमशः पूर्व की ९, ५,

९, ६, ६, घटिकाओं के साथ २७ नक्षत्रों की विष घटिकाओं का अशुभ समय भी सभी शुभ कर्मों में त्याग करना चाहिए ॥ ३ ॥

लत्तापञ्चकपापवर्गमशुभं चन्द्रं दशारिष्टकं
जन्मेशेज्यसितास्तमङ्गशशिनोः क्रूरोद्भवां कर्तरीम् ।
रिष्टं गोचरसंभवं ग्रहजनिप्रान्तोद्भवं सूतकं
दुश्चिह्नानि मनोविभङ्गमपि च व्याधिं शुभे संत्यजेत् ॥४॥

मार्तण्डवल्लभा—लत्तेति। लत्तापञ्चकपापवर्गम्, एतत्सर्वं वक्ष्यमाणम्, अशुभं चन्द्रं वक्ष्यमाणगोचरप्रकरणे वेद्यं, दशारिष्टकं जातकशास्त्रगम्यम्, जन्मेशेज्यसितास्तं जन्मेशो राशिस्वामी ईज्यो गुरुः सितः शुक्रः एषाम् अस्तगमनं रविलुप्तकिरणत्वम्, अङ्गशशिनोः क्रूरोद्भवां कर्तरीम् अङ्गं लग्नम् शशी चन्द्रः तयोः क्रूरोद्भवां क्रूरग्रहजनितां कर्तरीं वक्ष्यमाणलक्षणाम्, रिष्टं गोचरसंभवं गोचरे दुष्टग्रहाधिक्यं गोचरं वक्ष्यमाणम्, ग्रहजनिप्रान्तोद्भवं सूतकम् ग्रहो ग्रहणम् जनिर्जन्म प्रान्तो मरणम् एभ्य उद्भूतं सूतकम् ग्रहणसूतकं जन्मसूतकं मृतसूतकमिति तेषु ग्रहणसूतकं वक्ष्यमाणम्, दुश्चिह्नानि कार्यारम्भसमये क्षुतदुर्वचनश्रवणादीनि, मनोविभङ्गमन्तःकरणस्य अप्रवर्तनं व्याधिर्ज्वरः तमपि "रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुःखमामयः" इतिवाग्भटः। ज्वरितस्य मङ्गलं न कुर्यादित्यर्थः। तथा चोक्तं ज्योतिःप्रकाशे "जन्माधिपविलग्नेशचन्द्रभार्गवमंत्रिणाम्। विरश्मित्वं जन्ममासो जन्मभं जन्मवासरः॥ दुर्निमित्तं मनोभङ्गः क्षयमासाधिमासकौ। मृतजातकयोश्चैव सूतकं ग्रहणस्य च॥ ज्वरोत्पत्ति रजो मातुः पित्रोः क्षयदिनं तथा। गण्डान्तत्रितयं कालः संधिर्भस्य तिथेस्तनोः॥ क्रान्तिपातो व्यतीपातो वैधृतिः परिघार्धकम्। भानोः संक्रान्तिभोगश्च कुलिकश्चार्द्धयामकः॥ क्रूरैर्मुक्तं युतं भोग्यं सराहुशिखिधूमितम्। धिष्ण्यं ग्रहणगं पापैर्विद्धं सौम्यैश्च पादतः॥ विष्टिः क्रूरयुतं लग्नं लग्नेशो रिपुमृत्युगः। जन्मतो दुःस्थितश्चन्द्रो लग्नस्थो निधनोपगः॥ जन्मभाज्जन्मलग्नाच्च लग्नलग्नांशकाष्टमौ। पापयोर्मध्यगं लग्नं क्षीणेन्दुः कुनवांशकः॥ क्रूरवारे पापहोरा दुष्टयोगा ग्रहोद्भवाः। तिथिवृद्धिः क्षयो भानां नाडिका विषसंज्ञिताः॥ एते दोषाः समाख्याताः शुभकर्मणि गर्हिताः। दशारिष्टोद्भवाश्चान्ये गोचरोत्थास्तथापरे॥ लत्तैकार्गलचण्डास्त्रकालवेलाश्च पञ्चकम्। मृत्युयोगोपग्रहाद्याः स्वे स्वे देशे तु निन्दिताः" ॥ इति ॥ ४ ॥

वागीश्वरी—शुभ कर्म में और भी त्याज्य विषय बताये जा रहे हैं—

लत्ता, पात, युति, वेध जामित्र आदि (जिनका ज्ञान अग्रिम श्लोकों से होगा)···का शुभकर्म में त्याग करना चाहिए, तथा गोचर प्रकरण में वर्णित अशुभ चन्द्र सम्बन्धी समय, अरिष्ट ग्रह की दशा जो जातक शास्त्रों से ज्ञात होती है अर्थात् अशुभ ग्रह दशा का समय, जन्मराशि का स्वामी और गुरु शुक्र के अस्त समयों को, लग्न चन्द्रमा पर की क्रूर ग्रह की कर्त्तरी नामक दोष युक्त दिन को, ग्रह गोचर से ज्ञात दुष्ट ग्रहाधिकबल सम्बन्धी दिन या

सूक्ष्म समय को, सूर्य चन्द्र ग्रहण सम्बन्धी अशौच समय और अपने गोत्र के सपिण्ड में जनन और मरण सम्बन्धी अशौच काल को तथा शुभ कर्म के आरम्भ में कटुभाषण श्रवण, कटु वाणी प्रयोग आदि के साथ मानसिक उद्वेग (मन की अस्थिरता) चंचलता और अप्रसन्नता आदि यदि हो जाय तो भी उक्त समयों में शुभ कर्म का आरम्भ नहीं करना चाहिए तथा रोगोत्पत्ति यदि हो गई हो तो भी शुभ कर्म का प्रारम्भ नहीं होना चाहिए ॥ ४ ॥

नो कुर्याद्रविभादगेन्द्रधृतितो युग्मेषु पञ्चाशयोः
स्वर्गात्पञ्चसुशोभनानि तनुयादेषूग्रशस्त्रादिकम् ।
मासर्त्वयनवारयोगतिथिभादीनां च सिद्धाभिधा
ज्ञातव्याः पुनरुक्तिरस्ति कुहचित्सा तत्स्मृतिप्राप्तये ॥ ५ ॥

इति श्रीमदनन्ताख्यचातुर्मास्ययाजिपुत्रनारायणविरचिते
मुहूर्तमार्तण्डे त्याज्यप्रकरणम् ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथोपग्रहान्तर्वर्तिदोषान्तरं वृत्तार्द्धेनाह नो कुर्यादिति । रविभात् सूर्याधिष्ठितनक्षत्रात् अगेन्द्रधृतिमितानि यानि नक्षत्राणि तेभ्यो युग्मेषु । एतदुक्तं भवति—सप्तमाष्टमयोः चतुर्दशपञ्चदशयोः अष्टादशैकोनविंशयोरिति तथा पञ्चाशयोः रविनक्षत्रात् पञ्चमदशमयोः तथा स्वर्गात्पञ्चसु एकविंशात्पञ्चसु नक्षत्रेषु २१।२२।२३।२४। २५ शोभनानि कर्माणि नो कुर्यात् । एषु उग्रशस्त्रघातादिकं तनुयात् विस्तारयेत् कुर्यादित्यर्थः । उक्तं च "विद्युत्पञ्चमभे क्षितेश्च चलनं स्यात्सप्तमे सूर्यभाच्छूलश्चाष्टमभे शनिश्च दशमे केतुस्तथाष्टादशे । दण्डः पञ्चदशे चतुर्दश इह प्रोक्तो निपातो बुधैरुल्काकालविदां गणैर्निगदिता चैकोनविंशेऽर्कभात् इति ॥" दैवज्ञवल्लभेऽपि "क्रमशो मोहनिर्घातभूकम्पा वज्र एव च । परिवेषश्च विज्ञेया नक्षत्रादेकविंशतेः । एतेष्विन्दुसमेतेषु कुर्यात्कर्म न शोभनम् । दहनास्त्रविषैः साध्ययत्नात्सिद्धिमुपैति च ॥" इति अन्यानपि दोषानग्रे प्रसंगतो वक्ष्यामि । अथास्मिन् ग्रन्थे मासादीनां संज्ञा लोकसिद्धा ज्ञेया इति । तथा पुनरुक्तिनिर्दूषणं वृत्तार्द्धेनाह मासर्त्वयनेति । मासाश्चैत्रादयः ऋतवो वसन्तादयः अयने दक्षिणोत्तरे वाराः सूर्यादयः योगाः विष्कम्भादयः तिथयः प्रतिपदादयः भान्यश्विन्यादीनि इत्यादीनां करणराशिभावादीनां सिद्धाभिधाः शास्त्रान्तरसिद्धाः संज्ञा ज्ञातव्याः । तथा इहास्मिन्ग्रन्थे कुहचित् कुत्रचित् पुनरुक्तिर्वर्तते सा तस्य दूरान्तरितस्य स्मृतिप्राप्तये स्मरणायेति न दोषः ॥

इतिस्वोपज्ञमुहूर्त्तमार्त्तण्डटीकायां मार्त्तण्डवल्लभायां त्याज्यप्रकरणम् ॥ १ ॥

वागीश्वरी—सूर्य के नक्षत्र से ७, ८, १४, १५, १८, १९, ५, १०, २१, २२, २३, २४ और २५वीं संख्यक उक्त चन्द्र नक्षत्रों में जिस दिन कोई भी नक्षत्र हो उस नक्षत्र सम्बन्धी दिन में शुभ कर्म तो नहीं ही करने चाहिए किन्तु उक्त शुभ कर्म की जगह समाज के हिताय उग्र उद्दण्ड अवाञ्छनीय कर्म किये जा सकते हैं ।

मुहूर्त्त मार्त्तण्ड के प्रथम त्याज्य प्रकरण की पर्वतीय श्री केदारदत्तजोशी कृत वागीश्वरी व्याख्या सुसम्पन्न ।

अथ नक्षत्रप्रकरणम् ॥ २ ॥

नक्षत्रप्रकरणे नक्षत्रदेवताः वृत्तेनैकेनाह—

भेशा दस्रयमाग्निकेन्दुगिरिशाः प्रोक्ता अदित्यङ्गिराः
सर्पाः कव्यभुजो भगोऽर्यमरवी त्वष्टा समीरः क्रमात् ।
इन्द्राग्नी त्वथ मित्र इन्द्रनिर्ऋतिर्नीरं च विश्वे विधि-
र्वैकुण्ठो वसुपाश्यजैकचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ साधारणनक्षत्रप्रकरणं विवक्षुरादौ नक्षत्रदेवताः वृत्तेनैकेनाह। अस्मिन् प्रकरणे सर्वाणि शार्दूलविक्रीडितानि। **भेशा इति**। अश्विन्याः सकाशात् क्रमेण भेशा बुधैः प्रोक्ता इत्यन्वयः। भानां 'नक्षत्राणामीशाः स्वामिनः दस्रौ अश्विन्याः, यमो भरण्याः, अग्निः कृत्तिकायाः, को, ब्रह्मा रोहिण्याः, इन्दुर्मृगस्य, गिरिशो महादेवः आर्द्रायाः, अदितिः पुनर्वसोः, अंगिरा गुरुः पुष्यस्य, पन्नगाः सर्पाः आश्लेषायाः, कव्यभुजः पितरः मघायाः, भगः पूर्वाफाल्गुन्याः, अर्यमा उत्तराफाल्गुन्याः, रविर्हस्तस्य, त्वष्टा चित्रायाः, समीरणो वायुः स्वात्याः, इन्द्राग्निदेवताद्वयं विशाखायाः, मित्रोऽनुराधायाः, इन्द्रो ज्येष्ठायाः, निर्ऋतिः राक्षसो मूलस्य, नीरं, जलं पूर्वाषाढायाः, विश्वेदेवा उत्तराषाढायाः, विधिर्ब्रह्माऽभिजितः, वैकुण्ठो विष्णुः श्रवणस्य, वसवो धनिष्ठायाः, पाशी वरुणः शततारकायाः, अजैकचरणः पूर्वाभाद्रपदायाः, अहिर्बुध्न्य उत्तरभाद्रपदायाः, पूषा रेवत्याः। देवताप्रयोजनं नक्षत्रज्ञानार्थं शान्तिकादौ यजनार्थं च ॥ १ ॥

वागीश्वरी—अब नक्षत्रों से सम्बन्धित देवताओं को कहते हैं—अश्विनी से रेवती तक के सताईस नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्र के देवता का नाम बताया जा रहा है। जिस नक्षत्र का जो स्वामी देवता होता है उस देवता या नक्षत्र के स्वामी के नाम से भी उसी नक्षत्र का बोध होता है अथवा नक्षत्रों की शान्ति की जहाँ आवश्यकता समझी जाती है वहाँ पर उस नक्षत्र के देवता की पूजा की जाती है जैसे—अश्लेषा नक्षत्र की पूजा में नाग पूजा, आर्द्रा नक्षत्र की पूजा में रुद्र देवता, श्रवण में विष्णु इत्यादि देवताओं की पूजा समझनी चाहिए।

अश्विनी नक्षत्र के देवता अश्विनी कुमार, भरणी के यम, आर्द्रा के शिव, पुनर्वसु के अदिति, पुष्य के बृहस्पति, अश्लेषा के सूर्य, मघा के पितर, पू० फा० के भग, उ० फा० के अर्यमा, हस्त के रवि, चित्रा के त्वष्टा, स्वाती के वायु, विशाखा के इन्द्र-अग्नि, अनु० के मित्र, ज्येष्ठा के इन्द्र, मूल के निर्ऋति, पू० षा० के जल, उ० षा० के विश्वेदेव, अभिजित् के ब्रह्मा, श्रवण के विष्णु, धनिष्ठा के वसु, शतभिषा के वरुण, पू० भा० के अजैकचरण, उ० भा० के अहिर्बुध्न्य तथा रेवती के देवता पूषा होते हैं ॥ १ ॥

नक्षत्राणां स्थिरचरादिसंज्ञा—

ब्राह्मं त्र्युत्तरयुग्ध्रुवं स्थिरमथो पूर्वा मघा याम्यभं
क्रूरोग्रं श्रवणत्रयादितियुता स्वाती चराख्या चला ।
दस्त्रार्काभिजिदीज्यभं लघु तथा क्षिप्रं च मैत्रान्तिमे-
न्दुत्वाष्ट्रं मृदुमैत्रमग्निभविशे मिश्रे च साधारणे ॥ २ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ नक्षत्राणां स्थिरचरादिसंज्ञामाह । ब्राह्मं रोहिणी, किंलक्षणम् ? ब्राह्मं त्र्युत्तरयुक् तिसृणामुत्तराणां समाहारस्त्र्युत्तरम्, तेन युक् युक्ताम् ध्रुवस्थिरामिति द्वयभिधानं मुनीन्द्रैः स्मृतमित्यन्वयः । अथो पूर्वामघायाम्यभं पूर्वात्रयं मघा भरणीतिपंचकं क्रूरोग्रं क्रूरमुग्रं चोक्तम् । श्रवणत्रयादितियुतास्वाती श्रवणधनिष्ठा-शतनारकाः अदितिः पुनर्वसुः एभिः सहिता स्वाती चराख्या चला चोक्ता । श्रवण-त्रयादिपंचकं चराख्यं चलं प्रोक्तमित्यर्थः । दस्त्रार्काभिजिदीज्यभं दस्रो अश्विनी अर्को हस्तः अभिजिद्वक्ष्यमाणलक्षणः ईज्यो गुरुस्तस्य भं पुष्य इतिचतुष्टयं लघु तथा क्षिप्रं प्रोक्तम् । मैत्रांन्तिमेन्दुत्वाष्ट्रं मैत्रमनुराधा अन्तिमं रेवती इन्दुर्मृगः त्वाष्ट्रं चित्रा एतच्च-तुष्टयं मृदु तथा मैत्रं प्रोक्तम् अग्निभविशे अग्निभं कृत्तिका विशा विशाखा एते द्वे मिश्रे साधारणे प्रोक्ते ॥ २ ॥

वागीश्वरी—नक्षत्रों की चर स्थिर आदि संज्ञायें बताई जा रही हैं—

१. उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी, इन चार नक्षत्रों की ध्रुव और स्थिर संज्ञा होती है ।

२. पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, मघा और भरणी इन पाँच नक्षत्रों की उग्र और क्रूर संज्ञा होती है ।

३. श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाती, इन पाँच नक्षत्रों की चर और चल संज्ञा है ।

४. अश्विनो, हस्त, अभिजित् और पुष्य, इन चार नक्षत्रों की लघु और क्षिप्र संज्ञा कही गई है ।

५. अनुराधा, रेवती, मृगशिरा और चित्रा, इन चारों नक्षत्रों की मृदु और मैत्र संज्ञा कही गई है ।

६. कृत्तिका और विशाखा ये दोनों नक्षत्र मिश्र और साधारण संज्ञक कहे गये हैं ।

नक्षत्रों की संज्ञा के नाम के अर्थ से सम्बन्धित कार्यों का समारम्भ उक्त नक्षत्रों में करना चाहिए । जैसे ध्रुव, स्थिर नक्षत्रों में स्थिर संज्ञक कार्य, जैसे गृह निर्माण, कृषि में बीज वपन, चर-चल संज्ञकों में हाथी घोड़े की सवारी, बाग-बगीचा का कार्य, उग्रक्रूर संज्ञक नक्षत्रों में, घात (मारण प्रयोग) खेत में अग्नि दाह, खल कर्म, विषभक्षण, मिश्र संज्ञक नक्षत्रों

में, अग्निहोत्र, वृषोत्सर्गादि कर्म; लघु संज्ञक नक्षत्रों में वस्तुविक्रय, स्त्रीसम्भोग, शास्त्रादिज्ञान प्राप्ति, आभरण भूषणादि धारण और नृत्य गीत आदि कर्म, मृदुमैत्र संज्ञक नक्षत्रों में, भयंकर उग्र कर्म मारणादि प्रयोग, अन्य पाप कर्म आदि किये जाने चाहिये।*

मूलाहीन्द्रशिवं च दारुणमदस्तीक्ष्णं मुनीन्द्रैः स्मृतं
संज्ञातुल्यमिहाचरन्ति सुधियः कार्यं हि संसिद्धये ।
सूर्याद्याः स्थिरचञ्चलोग्रमिलिताः क्षिप्रो मृदुर्दारुणः
क्षीणेन्द्वर्कयमारराहुशिखिनः पापा बुधस्तैर्युतः ।। ३ ।।

मार्तण्डवल्लभा—मूलं प्रसिद्धम् अहिराश्लेषा इन्द्रो ज्येष्ठा शिवः आर्द्रा एतच्चतुष्टयं दारुणम् अदः इदं तीक्ष्णं प्रोक्तम्। इह एषु ध्रुवादिसंज्ञेषु नक्षत्रेषु संज्ञातुल्यं कार्यं सुधियः पण्डिता आचरन्ति। किमर्थं संसिद्धये। एतदुक्तं भवति। स्थिरनक्षत्रेषु स्थिरं स्तम्भप्रतिष्ठादिकम् चरे चरमित्यादिकुर्वन्तीति स्पष्टम्। अत्र समानार्थसंज्ञाद्वयकरणं कवित्वबन्धनार्थम्। अत्र प्रसंगेन सूर्यादीनामपि स्थिरादिसंज्ञा सौम्यपापत्वं च वृत्तार्द्धेनाह। सूर्याद्या इत्यादि। सूर्यः स्थिरः चन्द्रश्चञ्चलः भौमः उग्रः बुधः मिलितो मिश्रः गुरुः क्षिप्रः शुक्रो मृदुः शनिर्दारुणः। अथ पापसौम्यान् ग्रहानाह। क्षीणेति। क्षीणेन्दुः कृष्णाष्टम्यूर्ध्वं प्रतिपत्पर्यन्तं क्षीणः अर्कः सूर्यः यमः शनिः आरो भौमः राहुः प्रसिद्धः शिखी केतुः एते क्षीणेन्द्वादयः पापाः क्रूराः तैः पापैर्युतो बुधः पापः स्यात्। उक्तं च जातकोत्तमे "क्षीणेन्द्वर्कार्किभौमाः स्युः पापाः सौम्योऽपि तद्युतः। राहुकेतू पापतरौ पापः पापयुतस्तथा।" इति। अर्थादन्ये सौम्याः। एषां प्रयोजनं क्रूरसौम्यकर्मसाधने ।। ३ ।।

वागीश्वरी—मूल, आश्लेषा ज्येष्ठा और आर्द्रा इन चार नक्षत्रों की तीक्ष्ण और दारुण संज्ञा है। इस प्रकार, ४+५+५+४+४+२+४=२८ नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्र को क्रमशः स्थिर, चर, उग्र, क्रूर, मिश्र, क्षिप्र, मृदु मैत्र और तीक्ष्ण दारुण समझना चाहिए। नक्षत्र तो २७ ही हैं यहाँ श्लोक में २८ नक्षत्रों को गिनाया गया है, ऐसा क्यों? यह शंका स्वाभाविक है। इसका समाधान है कि नक्षत्र तो २७ ही हैं, किन्तु उत्तराषाढ़ा का चतुर्थांश और श्रवण का पञ्चदशांश का जो समय हो उस काल का नाम अभिजित् समय होता है, इसलिए अश्विनी आदि गणनाक्रम से नक्षत्र संख्या २८ हो जाती है।

$$\frac{\text{उत्तराषाढ़ा भभोग}}{४} + \frac{\text{श्रवण भभोग}}{१५} = \text{घट्यात्मक योग काल} = \text{अभिजित् नाम के}$$

नक्षत्र का भभोग होता है।

---

*. इस प्रकार का विशद वर्णन मुहूर्त्त चिन्तामणि ग्रन्थ के नक्षत्र प्रकरण के श्लोक २ से ९ तक केदारदत्तकृत पीताम्बरा में देखें।

जिस नक्षत्र की जो संज्ञा है उस नक्षत्र वार सम्बन्धी दिनों में उस प्रकार के कार्यों को करने का आदेश ज्योतिर्विद् से जनता को होना चाहिए।

यहाँ पर सूर्यादि सात दिन या वारों में प्रत्येक की सूर्यवार = स्थिर वार, चन्द्र = चल वार, मंगल = उग्र वार, बुध = मिश्र वार, गुरु = लघुवार, शुक्र = मृदु मैत्र और शनि = तीक्ष्ण या दारुण वार समझना चाहिए।

क्षीण चन्द्रमा—कृष्ण पक्ष की अष्टमी से शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तक चन्द्रमा क्षीण होने से शुभग्रह होते हुए भी उसमें अशुभत्व आ जाने से ऐसा चन्द्रमा अशुभ हो जाता है, अतएव क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल, शनि, राहु और केतु ये ६ अशुभ या पापग्रह कहे जाते हैं, तथा बुध शुभ ग्रह होते हुए भी पाप ग्रहों के साथ रहने से बुध में पापत्व आने से पाप ग्रह और शुभग्रह होते हुए शुभ ग्रहों के साथ के बुध ग्रह में विशेष शुभता आ जाती है। वस्तुतः बुध ग्रह नपुंसक ग्रह होने से उसमें साहचर्य के गुण दोष आ जाते हैं ॥ ३ ॥

अथ शिवादयः मुहूर्ताः—

अह्नः स्युः शिवसार्पमित्रपितरो वस्वम्बुविश्वेऽभिजि-
त्केन्द्रेन्द्राग्निनिशाचरा अपि जलाधीशोऽर्यमाख्यो भगः।
रात्रेः स्युः स्मरहात्रयोऽजचरणात्पञ्चाश्वितोऽथोदिति-
र्जीवो विष्णुरिनास्त्रयस्तिथिलवाः कर्मँषु भोक्तं स्मृतम् ॥ ४ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ प्रसंगेन नक्षत्रसमाननाथान् दिनरात्रिमहूर्तान् नक्षत्रोक्त-कार्यसाधकान् वृत्तेनैकेनाह। एतेऽह्नो दिवसस्य तिथि १५ लवाः पञ्चदशांशाः महूर्त्ताः शिवादयः स्युः। प्रथमः शिवः, द्वितीयः सर्पः, तृतीयो मित्रः, चतुर्थः पिता, पञ्चमो वसुः, षष्ठोऽम्बु, सप्तमो विश्वे, अष्टमोऽभिजित्, नवमो ब्रह्मा, दशम इन्द्रः, एकादश इन्द्राग्नी, द्वादशो निशाचरः, त्रयोदशो जलाधीशो वरुणः, चतुर्दश अर्यमाख्यः, पञ्चदशो भगः। अथ रात्रेः प्रथमः स्मरहा शिवः, अजचरणात्त्रयः अजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाह्वाः क्रमेण द्वितीयोऽजचरणः, तृतीयोऽहिर्बुध्न्यः, चतुर्थः पूषा। पञ्चाश्वित इति। अश्वितः पञ्च दस्त्रयमाग्निकेन्दवः, पञ्चमो दस्त्रः, षष्ठो यमः, सप्तमोऽग्निः, अष्टमः कः ब्रह्मा, नवमः इन्दुः, अथो दितिर्दशमः, एकादशो जीवः, द्वादशो विष्णुः, इनाः त्रयः रवित्वष्टानिलाः, त्रयोदशो रविः, चतुर्दशस्त्वष्टा, पञ्चदशोऽनिलः वायुः प्रयोजनमाह। कर्मँषु भोक्तं स्मृतम् एषु मुहूर्त्तेषु भोक्तं नक्षत्रोक्तं कर्म स्मृतम् मुनीन्द्रैरित्यध्याहारः। एतदुक्तं भवति। शिवमुहूर्ते आर्द्रानक्षत्रोक्तं, सार्पमुहूर्ते आश्लेषोक्तम्, मित्रमुहूर्ते अनुराधोक्तं कर्म कुर्यादित्यादि। तदुक्तं रत्नमालायाम्—"यस्मिन्धिष्ण्ये यच्च कर्मोपदिष्टं तद्दैवत्ये तन्मुहूर्तेऽपि कार्यम्" इति। लोके हि स्वामिशब्दं सेवके प्रयुञ्जाना दृश्यन्ते। अतो देवताशब्दस्तन्नक्षत्रतिथ्यादिषु स्मर्यते तथाविधवृद्धप्रयोगदर्शनाच्च

"नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पश्च दशभिस्तथा। भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम्" इति। नागः पञ्चमी दिग्दशमीभूतश्चतुर्दशीतिवत् ॥ ४ ॥

इति स्वोपज्ञमुहूर्त्तमार्त्तण्डटीकायां नक्षत्रप्रकरणम् ॥ २ ॥

वागीश्वरी—अहोरात्र (अर्थात् दिनमान + रात्रिमान) में १५ मुहूर्त्त दिन में और १५ मुहूर्त्त रात्रि में एवं ३० मुहूर्त्त होते हैं। सामान्य वचन से "मुहूर्त्तं घटिका-द्वयम्" दो घटी का एक मुहूर्त्त होता है जो पृथ्वी की विषुवद्धरातलीय मात्र भूपृष्ठ देशों में ही ठीक होते हैं। भूपृष्ठ के यत्र तत्र सर्वत्र के देशों, नगरों, ग्रामों में दिनमान की समता वर्ष के मात्र दो दिनों—आधुनिक खगोल गणित से २१ मार्च और २३ सितम्बर को ही हो सकती है। अतः वर्ष के ३६५ दिनों में दिनमान रात्रिमान की विभिन्नता से दिनमान और रात्रिमान की घटिकाओं में १५ से भाग देने से लब्ध घटिकादि मान एक मुहूर्त्त का मान होता है। उदाहरण से यदि दिनमान = ३० तो एक मुहूर्त्त का मान $= \frac{३०}{१५} =$ २ घटी, यदि दिनमान = ३१ घटी तो ३१ ÷ १५ = २ घटी ४ पल १ मुहूर्त्त····इत्यादि। एवं रात्रिमान यदि २९ तो २९ ÷ १५ = १ घटी ५६ पल १ मुहूर्त्त का मान समझना चाहिए। यदि दिनमान = ३१ घटी तो एक मुहूर्त्त का मान ३१ ÷ १५ = २ घटी ४ पल होगा और सूर्योदयादिष्ट काल २५ घटी ४० पल तो २५ घटी ४ पल ÷ २ घटी ४ पल १२ अर्थात् १२वाँ मुहूर्त्त बीत गया। वर्तमान इष्ट काल २५ घटी ४० पल में १३वाँ मुहूर्त्त होता है इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए अर्थात्, दिन या रात्रि के मुहूर्त्त ज्ञान के लिए दिनमान और रात्रि मान में १५ का भाग देकर १ मुहूर्त्त का मान निकलेगा, इस एक मुहूर्त्त मान से इष्ट काल में भाग देने से लब्धि = गत मुहूर्त्त और लब्धि + १ = वर्तमान मुहूर्त्त संख्या होती है। तदनुसार दिन में अर्थात् दृश्य अर्धोदित सूर्य बिम्ब से अर्थात् सूर्योदय से, अर्द्धअस्त सूर्य बिम्ब अर्थात् सूर्यास्त तक १ दिन में, (१) शिव, (२) सार्प, (३) मित्र, (४) पितृ, (५) वसु, (६) अम्बु, (७) विश्वेदेव, (८) अभिजित् (९) ब्रह्मा, (१०) इन्द्र, (११) इन्द्राग्नि, (१२) राक्षस, (१३) वरुण, (१४) अर्यमा और १५ वाँ मुहूर्त्त भग संज्ञक, ये १५ मुहूर्त्त कहे गये हैं।

इस प्रकार रात्रि अर्थात् अर्द्धास्त सूर्य बिम्ब से अर्द्धोदित सूर्य बिम्ब तक के रात्रिमान पन्द्रह विभागों में क्रमशः १–शिव, २–अजपात्, ३–अहिर्बुध्न्य, ४–पूषा, ५–अश्वि, ६–यम, ७–अनल, ८–ब्रह्मा, ९–चन्द्र, १०–अदिति, ११–जीव, १२-विष्णु, १३–सूर्य, १४–त्वष्ट्रा और १५–समीर, ये रात्रि के १५ मुहूर्तों के पृथक् पृथक् प्रसिद्ध नाम कहे गये हैं।

उपयोग के लिये रोहिणी नक्षत्र ध्रुव संज्ञक नक्षत्र में पूर्व कथित कर्म करने के आदेश दिये हैं। यदि आज ही हमें उक्त कर्म करना है और दिन नक्षत्र रोहिणी नक्षत्र न होकर आज पुनर्वसु नक्षत्र है जो रोहिणी नक्षत्र सम्बन्धी कार्य के लिये अकथित है तो पुनर्वसु नक्षत्र युक्त दिन के १५ मुहूर्त्तों में जिस समय रोहिणी का पति ब्रह्मा मुहूर्त्त आवेगा, उस समय में

भी अभीष्ट कार्य किया जा सकता है इत्यादि विकसित शास्त्र ज्ञान से जनता को सुविधायें प्रदान होती हैं, शास्त्रों की व्यापकता स्वतः सिद्ध है ॥ ४ ॥

इति वागीश्वरी व्याख्यान में नक्षत्र प्रकरण सुसम्पन्न हुआ।

अथ संस्कारप्रकरणम्

आद्यर्तौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः कुयुक्पापवारा
रिक्तामार्काष्टषष्ठ्याः परगृहकुनदे रात्रिसन्ध्यापराह्णाः।
मिश्रोग्रामूलतीक्ष्णं विवरमनरुणाल्पाधिकास्त्रं गराष्टो-
त्पातः पापस्य लग्नं न सदरुणजरन्नोलचित्राम्बरं च ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा--अथ गर्भाधानादिसंस्कारप्रकरणं विवक्षुस्तावद् गर्भाधानस्य ऋतुसंबन्धात् प्रथमर्तुफल स्रग्धरावृत्तेनाह—**आद्यर्ताविति**। तत्रादौ मासफलमाह। आद्यर्तौ प्रथमर्तौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः सन्तो न स्युरित्यन्वयः। विभक्तिविपरिणामः। पौषः प्रसिद्धः शुक्रो ज्येष्ठः ऊर्जः कार्तिकः मधुश्चैत्रः शुचिराषाढः नभस्यो भाद्रपदः एते षण्मासाः न शुभा इत्यर्थः। अर्थादन्य शुभाः तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे "प्रथमर्तौ मधौ नारी विधवा भवति ध्रुवम्। वैशाखे धनपुत्राढ्या ज्येष्ठे रोगान्विता भवेत् ॥ आषाढे च मृतापत्या श्रावणे च धनान्विता। भाद्रपदे दुर्भगा च आश्विने च तपस्विनी ॥ ऊर्जेऽल्पायुष्मता नारा मार्गशीर्षे बहुप्रजा। पौषे तु पुंश्चली नारी माघे पुत्रसुखान्विता। फाल्गुने श्रीमती साध्वी क्रमान्मासफलं स्मृतम्" इति। योगफलमाह—कुयुगिति। कुयोगो विष्कम्भादिकः। योगेषु नव योगाः दुष्टाः सन्ति विष्कम्भातिगण्डव्याघातवज्रव्यतीपातपरिघवैधृतयः। एते योगा न शुभा इत्यर्थः। अर्थादन्ये शुभाः। तदुक्तम् "आद्यर्त्तौ दुर्भगा नारी विष्कम्भे चेद्रजस्वला। वन्ध्या चैवातिगण्डे च शूले शूलवती भवेत् ॥ गण्डे च पुंश्चली नारी व्याघाते चात्मघातिनी। वज्रे च स्वैरिणी प्रोक्ता पाते च पतिघातिनी ॥ परिघे मृतवन्ध्या च वैधृतौ पतिमारिणी। शेषाः शुभावहा योगा यथानाम फलप्रदा" इति। वारफलमाह—पापवारा इति। क्षोणेन्द्वर्कयमाराः पापाः तेषां वारा न शुभाः। अर्थादन्ये शुभाः। उक्तं च कारिकायाम् 'आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव मृतप्रजा। अङ्गारे स्वसृहन्त्री च बुधे कन्याप्रसूर्भवेत् ॥ पुत्रिणी गुरुवारे च कन्यापुत्रवती भृगौ। शनौ तु पुंश्चला नारी प्रथमर्तौ विदुर्बुधाः" इति ॥ तथा च नारदः 'रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी। पतिप्रिया क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात्' इति। कारिकावचने सोमवारफल मृतप्रजेति। नारदवचने पतिव्रतेति। एवं द्वयोर्विरोधे मृतप्रजेतिकृष्णपक्षे सोमवारविषयम्। पतिव्रतेति शुक्लपक्षीयसोमविषयमिति व्यवस्थापनीयम्। अतो मार्त्तण्डवचनं पापवारा इत्येतदतिप्रशस्तम्। तिथिफलमाह—रिक्तामार्काष्टषष्ठ्य इति। रिक्ता चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः अमा अमावास्या अर्को द्वादशी द्वादश्याः स्वामी अर्कः। अथवा अर्कसंख्यापि द्वादशवाचिका संख्ययापि द्वादशी भवति।

तिथिदेवतापि रत्नमालायाम्—"तिथिपाश्चतुर्मुखविधातृविष्णव" इत्यादयः। अष्ट अष्टमी षष्ठी प्रसिद्धा एताः सप्त तिथयः न शुभाः अर्थादन्याः शुभाः। उक्तं च

"आद्यर्तौ सुभगा नारी प्रतिपत्सु रजस्वला
द्वितीयायां भाग्यवती तृतीयायां सुतान्विता।
चतुर्थ्यां विधवा नारी पञ्चम्यां धनदायिनी
षष्ठ्यां च क्लेशभाङ्नारी सप्तम्यां धनवर्धिनी।
अष्टम्यां राक्षसी नारी नवम्यां पापवर्धिनी
दशम्यां प्रीतिकृन्नारी एकादश्यां सुतान्विता।
द्वादश्यां दुर्भगा नारी त्रयोदश्यां हिरण्यदा
चतुर्दश्यां पुंश्चली स्यात् पौर्णमास्यां सुपुत्रिणी॥

यदि भद्रा न जायेत दर्शे स्याच्चौरिका ध्रुवम्" इति। स्थानफलमाह—परगृहकुपद इति। परगृहं भर्तृगृहादन्यत् कुपदं कुत्सितस्थानं एते उभे निन्द्ये अर्थादन्यच्छुभम्। उक्तं च "देवस्थाने पितृस्थाने निन्द्यस्थानेऽन्यवेश्मनि। पुष्पवत्याः फलं न स्यान्मार्गे चाण्डालवेश्मनि" इति। देवस्थानं देवालयम्, पितृस्थानं श्मशानम् निन्द्यस्थानं कुत्सितस्थानम्, अन्यवेश्म भर्तृगृहादन्यद्गृहम्। अन्यत्सुगमम्। नन्वत्र श्लोके बहूक्तम्। अत्र कथं परगृहकुपद इत्येवोक्तं। सत्यम्। यत्स्थानद्वयमुक्तं तस्मिन्नेव सर्वं श्लोकोक्तमधितिष्ठति। तद्यथा। देवस्थानान्यवेश्मचाण्डालवेश्मेतिपदत्रयम् परगृह इत्येतस्मिन्पदेऽधितिष्ठति। अन्यच्छ्लोकोक्तं न कुपदे वर्तते। ननु मार्गः कथं कुपदोऽस्ति स तु कुत्सितो न भवति। अस्ति मार्गोऽपि दुष्टत्वं सर्वजनसंचाराद्धर्मशास्त्रप्रसिद्धं तर्हि पूर्वश्लोकोक्तं बहुभाषणं व्यर्थं स्यात्। मैवं। तदुक्तं बहुभाषणं त्वनधिकाधिकदोषविवक्षयोक्तमिति न दोषः। वेलाफलमाह—रात्रिसन्ध्यापराह्ण इति। रात्रिः प्रसिद्धा सन्ध्ये द्वे अपराह्णस्त्रेधाविभक्तस्याह्नस्तृतीयो भागः। एते चत्वारः काला न शुभाः अर्थादन्यौ पूर्वाह्णमध्याह्नौ शुभौ। उक्तं च "पुत्रिणी सुभगा पुण्या पूर्वाह्णे या रजस्वला। मध्याह्ने तु शुभप्राप्तिः स्वैरिणी चापराह्णके॥ संध्ययोरुभयोर्वेश्या निशायां विधवा तथा। नक्षत्रफलमाह—मिश्रोग्रामूलतीक्ष्णमिति। मिश्रे कृत्तिकाविशाखे उग्राणि पूर्वात्रयभरणीमघाः अमूलतीक्ष्णानि मूलरहिततीक्ष्णानि आश्लेषाज्येष्ठार्द्रा इत्येतन्नक्षत्रदशकं न शुभम्। अर्थादन्यानि शुभानि। तदुक्तं नारदीयसंहितायाम् "श्रीयुता सुभगा पुत्रवती सौम्यान्विता स्थिरा। कुलाधिका मानवती चाश्विन्यां प्रथमार्तवा॥ १॥ दुःशीला स्वैरिणी स्वस्य गर्भपातनतत्परा। परप्रेष्या काकवन्ध्या भरण्यां प्रथमार्तवा ॥२॥ अनर्था पुंश्चली वन्ध्या गर्भपातनतत्परा। प्रेष्या मृतप्रजा वापि वह्निभे प्र० ॥३॥ सुशीला सुप्रजा मान्या पतिभक्ता दृढव्रता। गृहार्चनरता नित्यं धातृभे प्र०॥ ४॥ गुणान्विता धर्मरता नारी सर्वसहा सती। पतिप्रिया सुताढ्या च चन्द्रभे प्र०॥ ५॥ कुलटा दुर्भगा कष्टा मृतपुत्रा खला जडा। दुष्टा व्रतपरिभ्रष्टा रौद्रभे प्र०॥ ६॥ पतिभक्ता पुत्रवती वरसन्तानमोदिनी। कुलाचारानुरक्ताढ्या दितिभे० ॥ ७॥

पतिप्रिया पुत्रवती नानाभोगवती शुभा। स्वकर्मनिरता दक्षा तिष्यभे प्र० ॥ ८ ॥ परभर्तृरता प्रेष्या कोपिनी निर्घृणालसा। मृषावागीशदुःपुत्रा भौजंगे प्र० ॥ ९ ॥ निर्द्वेष्या रोगसंयुक्ता सर्वदा रतिलोलुपा। पितृवेश्मरता मान्या पितृभे प्र० ॥ १० ॥ परकार्यरता दीना दुःपुत्रा क्लेशभागिनी। मलिना कर्कशा क्रुद्धा भाग्यर्क्षे प्र० ॥ ११ ॥ प्रजावती धर्मरता निर्वैरा मित्रपूजिता। सती मातृगृहासक्ता अर्यमर्क्षे रजस्वला ॥ १२ ॥ निर्द्वेष्या भूरिविभवा पुत्राढ्या भोगभोगिनी। प्रधाना दानकुशला हस्तर्क्षे प्रथमार्तवा ॥ १३ ॥ चित्रकर्मा भोगिनी च कुशला क्रयविक्रये। विकीर्णकामा श्लक्ष्णाढ्या त्वाष्ट्रभे प्र० ॥ १४ ॥ बहुवित्तवती भीरुः कुशला शिल्पकर्मणि। पुत्रपौत्रवती साध्वी वायुभे प्रथमार्तवा ॥ १५ ॥ नीचकर्मरता दुष्टा पानासक्ता परप्रिया। विपुत्रा मलिना क्रुद्धा द्विदैवे प्र० ॥ १६ ॥ स्वामिपक्षार्चिता स्वस्य गुणैः सम्यग्विभूषिता। सुपुत्रा सुभगा कान्ता मित्रभे प्रथमार्तवा ॥ १७ ॥ दुश्चरित्ररता क्लेशिन्यनर्था पुंश्चली व्यसुः। दुःसन्तानवती ज्येष्ठानक्षत्रे प्रथ० ॥ १८ ॥ सन्तानार्थगुणैर्नाल्पैर्युतान्यक्लेशमोचनी। स्वकर्मनिरता नित्यं मूलर्क्षे प्र० ॥१९॥ प्रच्छन्नपापा दुष्पुत्रा प्राणिहिंसनतत्परा। अजस्रं व्यसनासक्ता तोयभे प्र० ॥ २० ॥ कार्याकार्येषु कुशला सदा धर्मानुवर्तिनी। गुणाश्रया भाग्यवती विश्वभे प्र० ॥ २१ ॥ पुत्रपौत्रान्विता भोगधनधान्यवती सती। कालानु-मोदिनी मान्या विष्णुभे प्र० ॥ २२ ॥ धनधान्यवती भोगपुत्रपौत्रसमन्विता। स्वकर्म-निरता साध्वी वसुभे प्रथमा० ॥ २३ ॥ बहुपुत्रा धनवती स्वकर्मनिरता सती। कुलानु-मोदिनी मान्या वारुणे प्र० ॥ २४ ॥ बन्धकी बन्धुविद्वेष्या नित्यं दुष्टरता खला। शिल्पकार्येषु कुशलाऽजाङ्घ्रिभे प्रथमा० ॥ २५ ॥ आढ्या पुत्रवती मान्या सुप्रसन्ना पतिप्रिया। बन्धुपूज्या धर्मवत्याहिर्बुध्न्ये प्रथ० ॥ २६ ॥ दृढव्रता धर्मवती पुत्रसौख्यार्थ-संयुता। विख्याता गुणसंपन्ना पौष्णभे प्रथमार्तवा ॥ २७ ॥" अथ संधिफलमाह—विवरमिति। तिथिभादीनां विवरं सन्धिः न शुभम्। उक्तं च "दुर्भगा सर्वसन्धिषु" इति। रक्तफलमाह—अरुणाल्पाधिकास्रमिति। अरुणादन्यत् अनरुणम् अनरुणं न अधिकं च अनरुणाल्पाधिकं तच्च तत् अस्रं च अनरुणाल्पाधिकास्रं न सत्स्यात्। अनरुणं नाम यत्सुरंगम् आरक्तं न भवति अस्रं रक्तं अन्यत्सुगमम् अर्थादन्यच्छुभम्। उक्तं च "प्रथमर्तौ फलं स्त्रीणामुच्यते रजसोऽधुना। सुभगा पुत्रसंयुक्ता शुक्लवर्णे तथार्तवे ॥ शशशोणितसंकाशे यद्वाऽलक्तकसंनिभे। पुत्रकन्याप्रसूतिः स्यान्नीले तु स्यान्मृतप्रजा ॥ कर्बुरे म्रियते सा च पिंगटे च मृतप्रजा। कृष्णे तु विधवा नारी रजस्येवं विनिर्दिशेत् ॥ शोणिते बिन्दुमात्रे तु स्वैरिणी चाल्पशोणिता। वरा मध्यस्रवा स्यात्तु दुर्भगा बहुशोणिता" इति ग्रन्थान्तरेऽप्युक्तं "रक्ते रक्ते भवेत्पुत्रः कृष्णे च मृतपुत्रका। पिच्छलाभे भवेद्वन्ध्या काकवन्ध्या च पाण्डुरे ॥ पीते च स्वैरिणी प्रोक्ता सुभगा गुंजवर्णके। सिन्दूराभे भवेत्कन्या रजःशोणितलक्षणम्" इति। करणफलमाह—गराष्टेति। गरात् अष्टग-राष्टगराद्यकरणानि ववपर्यन्तानि न सन्ति न शुभानि स्युः। अर्थादन्यानि शुभानि। उक्तं च "ववे पुष्पवती नारी वन्ध्या वा विधवा भवेत्। बालवे पुत्रिणी नारी कौलवे प्रमदा

भवेत् ॥ तैतिले सन्मतवती गरे नारी विनश्यति । नष्टप्रजा वणिक्संज्ञे विष्ट्यां वन्ध्या धनोज्झिता ॥ शकुनौ च चतुष्पादे नारी वैधव्यमाप्नुयात् । नागे न रमते रामा किंस्तुघ्ने विधवा भवेत्" इति । अथोत्पातफलम् । उत्पातस्त्रिविधः सन् न स्यात् । तथा च नारदः "सन्ध्यासूपप्लवे विष्ट्यामशुभ प्रथमार्तवे" इति । अथलग्नफलमाह—पापस्य लग्नमिति । पापग्रहस्य लग्नं न सत्स्यात् । क्षीणेन्द्वर्कयमाराः पापास्तेषामन्यतमस्य लग्नमित्यर्थः । पापग्रहस्य मेषसिंहवृश्चिकमकरकुम्भाः एतानि लग्नानि न शुभानीत्यर्थः, अर्थादन्यानि शुभानि कर्कलग्ने शुक्लपक्षे शुभम्, कृष्णपक्षे अशुभम् । स्वामिवशात् लग्नस्वामिनो वक्ष्यमाणाः । उक्तं च "आत्मघ्नो भ्रूणहा मेषे वृषे पुत्रवती भवेत् । द्वन्द्वे कन्याप्रसूर्नारी मृतापत्या च कर्किणि ॥ सिंहे वैधव्यमाप्नोति कन्यायां स्त्रीप्रसूर्भवेत् । तुलायां बहुपुत्राढ्या दुष्टकर्मरताऽलिनि ॥ चापे पुत्रधनाढ्या स्यान्मकरे दुःखिनी भवेत् । सकृत्प्रजावती कुम्भे मीने चाल्पप्रजा भवेत्" ॥ नारदोऽपि "कुलीरवृषचापान्त्यनृयुक्कन्यातुलाधनाः । राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्तवे" इति । अत्रापि कर्कलग्नस्य द्वैधे चन्द्रस्य सौम्यत्वपापत्ववशाद्व्यवस्था ज्ञेया । अथ वस्त्रफलमाह–अरुणजरन्नीलचित्राम्बरमिति न सत्स्यात्, अरुणमारक्तं जरज्जीर्णं नीलं प्रसिद्धम् चित्रं नानावर्णं रंजितम् एवंविधमम्बर न सत्स्यात् न शुभं स्यादित्यर्थः । अर्थात् दृढं शुभ्रं पीतवस्त्रं शुभम् । उक्तं च "सुभगा श्वेतवस्त्रा च रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरधरा नारी विधवा प्रथमार्तवा ॥ भोगिनी पीतवस्त्रा च दृढवस्त्रा पतिव्रता । दुर्भगा जीर्णवस्त्रा च सुभगा चारुवस्त्रिणी" अत्रानुक्तमपि त्याज्यं प्रकरणोक्तमन्यद् दुष्टं विचारणीयम् । अत्रास्मिन्नुक्ते निषिद्धकाले रजोदर्शने सति अक्षततिलघृतैर्देव्या ईज्यया यजनं स्यात् । केन देव्या गायत्रीमन्त्रेण संख्यानुपादानादक्षततिलघृतानामष्टोत्तरशतं होमः यथाशक्तिस्वर्णगोभूतिलदानं च कार्यम् ॥ १ ॥ प्रथमार्तवप्रकरणम् ॥ ३ ॥

वागीश्वरी—गर्भाधान संस्कार की भूमिका बताई जा रही है ।

प्रतिक्षण में ब्रह्माण्ड के अनन्त जीवों की उत्पत्ति और उनका विनाश होता जा रहा है । शास्त्रों में यद्यपि जीवों की भेद संख्या हाथी से चींटी से भी और अनेक स्थूल से सूक्ष्म तक के जीवों की परिगणना ८४ लाख तक की बताई गयी है किन्तु वैज्ञानिक शोधक विद्वानों का शोध कार्यों से ज्ञात होता है कि जीवों की परिगणना नहीं हो सकती है । "यतोऽनन्तशक्तेरनन्ताश्च जीवाः" अनन्त शक्ति रूपा भगवती की अनन्त प्रकार की जीवों की संख्या भी अनन्त है । तात्पर्य यहाँ पर अनन्त योनियों के जीवों में मानव देहधारी यह जीव जिसे मनुष्य कहा गया है, यही विवेक से पूर्ण मानव जीव है । प्रकृति पुरुषात्मक माता-पिता के शारीरिक सम्बन्धों से उत्तरोत्तर पुत्र, पुत्री रूप सन्तान पैदा होती हैं । यह भी एक कृषि-विज्ञान है । किस बीज को किस प्रकार के सुसंस्कृत खेत में (भूमि में) कब, किस ऋतु में बोया जाय, इस विषय के लिए आधुनिक कृषि-विज्ञान की प्रगतियाँ जैसे स्तुत्य और सराहनीय हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक और आधिभौतिक ज्ञान चोटी के हमारे प्राचार्यों ने सभ्य, सुसंस्कृत दीर्घजीवी नर व नारी की उत्पत्ति और उपलब्धि के लिए वर्ष के १२ महीनों,

दिनों आदि में गर्भाधान का मानव बीज को मानव योनि (खेत) में वपन का शुभ समय बताते हुए बीज धारण करने योग्य खेत के शुभाशुभ विकास का समय बताया है कि यौवन प्राप्ति के प्रारम्भ में स्त्री का प्रथम-रजो-दर्शन (प्रथम मासिक धर्म) से ही वंशवृद्धि का विचार किया गया है। जैसे कि स्त्री के प्रथम रजोदर्शन में पौष, ज्येष्ठ, कार्तिक, चैत्र, आषाढ़ और भाद्रपद ये ६ महीने अशुभ कहते हुए, विष्कम्भ, अतिगण्ड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात, परिघ और वैधृति नामक अशुभ योगों के साथ रवि-मंगल, शनिवारों को अशुभ वार कहते हुए, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावस्या, द्वादशी, अष्टमी और षष्ठी तिथियों के दिन का प्रथम रजोदर्शन (प्रथम मासिक धर्म) अशुभ अर्थात् ऐसे गर्भों (खेतों से) से उत्पन्न बालिका बालकों का जीवन शुभप्रद न होने की सूचना मिल रही है। पञ्चांग के अशुभ समयों के उल्लेख के साथ, अशुभ स्थानों का प्रथम रजोदर्शन जैसे श्मशान में, मार्ग में, आदि अनुचित स्थानों का भी प्रथम रजोदर्शन शुभ नहीं कहा गया है। समयों में, रात्रि, दोनों सन्ध्याएँ दिन का अवशेष तृतीय भाग के साथ नक्षत्रों में मिश्र संज्ञक, उग्र संज्ञक, मूल रहित तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र ये नक्षत्र प्रथम रजोदर्शन में अशुभ कहे गये हैं। तिथि, नक्षत्र और लग्नों का गण्डान्त समयों का भी प्रथम रजोदर्शन अशुभ भविष्यसूचक होता है। गर से वव तक के ४ करणों का प्रथम रजोदर्शन भी अशुभ कहा गया है। दिविज, भूमिज और अन्तरिक्ष में उत्पन्न उत्पात के समयों का प्रथम रजोदर्शन भी अशुभ कहा गया है। पाप ग्रहों मंगल-शनि-सूर्य के लग्नों में (१।८।५।१०।११) भी प्रथम रजोदर्शन अशुभ हैं। लाल, पुराना, जला हुआ, नीला और अनेक रंग की धारण की गई (साड़ी) वस्त्र परिधान के समय का भी प्रथम रजोदर्शन जीवन के लिए अशुभ भविष्य सूचक कहा गया है।

इत्यादि उक्त (तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, दिन रात्रि) समयों से अतिरिक्त समय का स्त्री का प्रथम रजोदर्शन अर्थात् गर्भ पोटलिका से प्रथम मासिक या रक्तस्राव के समय से कुल वंश परम्परा के प्रचलन से उस वंश के अभ्युदय की सूचना मिलती है। मार्तण्डवल्लभा टीका में अश्विनी आदि नक्षत्र से, रेवती अन्तिम नक्षत्र तक स्त्री के प्रथम रजोदर्शन का शुभाशुभ भविष्य का सूक्ष्म विचार लिखा है जो उस टीका में स्पष्ट है।

साथ ही घर गृहस्थ की अति अनुभव प्राप्त महिलाओं को अपनी पुत्र-वधू के प्रथम रजोदर्शन के रक्त की, आरक्त, श्वेत, ईषद्रक्त इत्यादि रंग के रक्त को देखकर अपनी भाविनी वंश परम्परा के शुभाशुभ भविष्य का ज्ञान हो जाता है इत्यादि। इस विषय पर इस ग्रन्थ के प्राक्कथन में विशेष विचार किया जायेगा ॥ १ ॥

प्रायश्चन्द्रं त्यजान्त्याष्टमरिपुतनुगं भांशकौ मूडनाथौ-
क्रूरेन्द्वाप्तौ खलांशं मृतिगतखचरं मृत्युतत्पौ तनुस्थौ।
सौम्याः केन्द्रत्रिकोणेष्वरिभवसहजेष्वन्यखेटाः प्रशस्ताः
सर्वत्रैतत्प्रयोज्यं प्रकरणपठितांस्तद्विशेषान्विदित्वा ॥ २ ॥

इति साधारणलग्नबलप्रकरणम् ॥ ३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ साधारणलग्नबलं स्रग्धरावृत्तेनाह—**प्राय इति।** इह वक्ष्यमाणे गर्भाधानादिकृत्ये प्रायो बाहुल्येन चन्द्रमन्त्याष्टमरिपुतनुगम् त्यज जहीति। अन्त्यं द्वादशम् अष्टमं प्रसिद्धं रिपुः षष्ठं तनुर्लग्नं एतान्प्रति गतं चन्द्रं त्यजेति। तथा भांशकौ त्यज किंलक्षणौ भांशकौ मूढनाथौ मूढः नाथो ययोस्तौ। तथा अस्तङ्गतस्य लग्ननवांशावित्यर्थः। पुनः किंलक्षणौ क्रूरेन्द्वाप्तौ क्रूरग्रहचन्द्राणामन्यतमेन युक्तौ। तथा खलांशं त्यज यत्र कुत्रापि लग्ने पापग्रहनवांशं त्यज। तथा मृतिगतखचरं त्यज। लग्नादष्टमं ग्रहं त्यजेत्यर्थः। तथा मृत्युतत्पौ तनुस्थौ त्यज। मृत्युर्जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यामष्टमं त्यज। तत्परस्तत्पतिस्त्यज एतौ तनुस्थौ त्यजेत्यर्थः। लग्नगोचरमाह—सौम्या इति। सौम्याः सौम्यग्रहाः केन्द्राणि लग्नचतुर्थसप्तमदशमानि त्रिकोणे नवपंचमे एतेषु केन्द्रत्रिकोणेषु सौम्यग्रहाः प्रशस्ताः। अरिभवसहजेषु अन्यखेटाः अरिः षष्ठं भवः एकादशं सहजं तृतीयम् एषु स्थानेषु अन्ये खेटाः सौम्येभ्योऽन्ये पापग्रहाः प्रशस्ताः स्युः। सर्वत्रैतत्प्रयोज्यम्। एतच्छ्लोकोक्तं सर्वत्र गर्भाधानादिकृत्ये प्रयोज्यम्, साधारणत्वात्। किं कृत्वा प्रकरणपठितांस्तद्विशेषान् विदित्वा पृथक्कृत्ये प्रकरणपठितविशेषान् ज्ञात्वा॥२॥

इति साधारणलग्नबलप्रकरणम्॥

वागीश्वरी—गर्भाधान आदि से विवाह....अन्त तक के अनेकों शुभ संस्कारों और शुभ कर्म में अपनी जन्मराशि से ६।८।१२, छठे, आठवें और बारहवें, चन्द्रमा जिन दिनों में पड़ता है उस दिन कोई भी शुभ कर्म नहीं करना चाहिए।

अस्तङ्गत ग्रह की राशिलग्न समय और उसके नवांश समय, पाप ग्रहों से युक्त लग्न और उनके नवांशों की, पापग्रह का नवांश समय, लग्न से अष्टम स्थान स्थित कोई भी शुभ या अशुभ ग्रह, तथा अपनी जन्मलग्न जन्मराशि से, ८वीं राशि के लग्न और उसके स्वामीग्रह का, शुभ कर्म मुहूर्त्त में त्याग करना चाहिए।

शुभ ग्रहों (पूर्ण चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र) की स्थिति शुभ कर्म के लग्न से, १।४।७।१० और ९।५ अर्थात् केन्द्र कोण में होनी चाहिए और पाप ग्रह, (सू. मं. श. रा. के.) की स्थिति तृतीय षष्ठ एकादश में जिस लग्न से होती है वह लग्न शुभ कर्म के आरम्भ के लिए श्रेष्ठ कही गई है।

जिस कार्य के लिए शुभ मुहूर्त्त शुभ लग्न की गवेषणा की जाती है उस कर्म के शास्त्रीय विधि निषेध, (जातकर्म, नामकरण उपनयन-विवाह आदि) जो उन उन प्रकरणों में सविशेष कही गई है उन सब के अध्ययन मनन विचार पूर्वक किसी भी शुभ कर्म के मूहूर्त्त का मास, तिथि, वार, समय आदि का सुस्पष्ट आदेश करना चाहिए॥ २॥

स्वस्त्रौ प्राङ्निट्चतुष्कासमदिनविवरश्राद्धतत्प्राग्दिनानि
त्यक्त्वा मूलं मघान्त्ये वसुकलिजनिभाहानि पर्वाणि चतौं।
याहीज्यार्केन्दुलग्नैर्विषमभलवगैरुद्बलैर्भोः सुतार्थिन्
व्यस्तैरेतैरिहैवायुगहनि मुदितः कन्यकेच्छो सुचन्द्रे॥ ३॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ गर्भाधानं स्रग्धरावृत्तेनाह—भोःसुतार्थिन् ऋतौ मुदितः सन् स्वस्त्रीं प्रति याहि गच्छ इत्यन्वयः। सुतमर्थयतेऽसौ सुतार्थी तस्य संबोधनं भोःसुतार्थिन् ऋतौ रजोदर्शनादारभ्य षोडशरात्रयः ऋतुः तस्मिन् मुत् हर्षः संजातो यस्य स मुदितः एवंविधः सन् स्वस्त्रीं प्रति गच्छेत्यर्थः। यतोऽत्र स्त्री गर्भधारणं करोति। अत्र स्त्री अपि हर्षिता भाव्या। तथा च मनुः "ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः" इति। किं कृत्वा प्राङ्निट्चतुष्कासमदिनविवरश्राद्ध-तत्प्राग्दिनानि त्यक्त्वा। प्राचां निशां चतुष्कं प्राङ्निट्चतुष्कं पूर्वरात्रिचतुष्टयम् असमदिनं विषमदिनं विवराणि दिनरात्रितिथिभादीनां संधयः श्राद्ध स्वपित्रोः श्राद्धदिनं तत्प्राग्दिनं तस्य श्राद्धस्य पूर्वदिनं एतानि त्यक्त्वेत्यर्थः। एवं मूलं त्यक्त्वा तथा मूलमघान्त्ये त्यक्त्वा मूलमघे प्रसिद्धे अन्त्यं रेवती एतानि त्यक्त्वेत्यर्थः। तथा वसुकलिजनिभाह्नानि त्यक्त्वा। वसुरष्टमी कलिश्चतुर्दशी जनिभं जन्मनक्षत्रम् अह्नो दिवा एतानि त्यक्त्वेत्यर्थः। तथा पर्वाणि च त्यक्त्वा पर्वाणि दर्शपौर्णिमाव्यतीपातवैधृतिसंक्रान्तिमहापातादीनि त्यक्त्वा स्त्रियं प्रति गच्छेत्यर्थः। तथा च नारदः "रजोदर्शनतोऽस्पृश्या नार्यो दिनचतुष्टयम्। ततः शुद्धाः क्रियास्वेताः सर्ववर्णेष्वयं विधिः" इति। वसिष्ठः "उपप्लवे वैधृतिपातयोश्च विष्ट्यां दिवा पारिघपूर्वभागे। सन्ध्यासु सर्वास्वपि मातृपित्रोर्मृतेह्नि पत्नीगमनं विवर्ज्यम्। वक्ष्यमाणयोगैः सुतार्थी स्वसतीमुपेयात्। दिनेष्वयुग्मेषु च कन्यकार्थी हित्वा च गण्डांस्तिथिलग्नभागान्" ज्योतिषार्के "ऋतौ युग्मनिशि स्वस्त्रीं गच्छेत्पुत्राय सद्विधौ। मघामूलान्त्यपक्षान्तभूतदर्शाष्टमीस्त्यजेत्" इति। कैः ईज्यार्केन्दुलग्नैः विषमभलवगैः ईज्यो गुरुः अर्कः प्रसिद्धः इन्दुश्चन्द्रः लग्नं प्रसिद्धम् एतैर्विषमभलवगैः भं राशिः लवो नवांशः विषमराशिर्विषमनवांशस्थितैरित्यर्थः। न केवलं विषमभलवगैः अपि तु उद्बलैः उत् उत्कृष्टं बलं येषां तानि तथा तैः। अथ कन्याकामिनो विशेषमाह—भोः कन्यकेच्छो इहैव अनन्तरोक्तलक्षणे काले अयुगह्नि विषमे दिने मुदितः सन् स्त्रीं प्रति याहि। कैः एतैर्व्यस्तैः एतैः ईज्यार्केन्दुलग्नैः व्यस्तै-रिति समभलवगैः समराशिसमांशस्थैः। तथा च बृहज्जातके "ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु-बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः पुंजन्मप्रवदेत्समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योषितः" इति। कस्मिन्सति सुचन्द्रे शोभने चन्द्रे सति गोचरेण चन्द्रबले सतीत्यर्थः। सुचन्द्रे इति। अनन्यगतिकं विना सर्वत्र योज्यम् पूर्ववल्लग्नबलम्॥ ३॥

वागीश्वरी—धर्मपत्नी के रजस्वला (मासिक धर्म) होने पर गर्भाधान का उत्तम शुभ मुहूर्त्त बताया जा रहा है—

आधुनिक वैज्ञानिक आधार से भी उक्त कथन की परिपुष्टि होनी चाहिए। कृषि विज्ञान से कृषि कर्म द्वारा उत्तमोत्तम अन्न उपज के अनेक सफल प्रयास जैसे आज भी देखे जा रहे हैं तद्वत् यहाँ वंश परम्परा की सर्वतोन्मुखी उत्तम पुत्र और कन्या सन्तान प्राप्ति के लिए धर्मपत्नी रूपिणी पत्नी के गर्भाशय को खेत समझ कर (कृषिक्षेत्र) कृषिक्षेत्र में जौ, गेहूँ,

धान, चना…फल, फूल आदि अनेक प्रकार के अन्नों फलों आदि के उगाने या पैदा करने के शूभ समयों का जैसे-जैसे कृषिशास्त्रज्ञ पण्डित आदेश करते हैं ठीक इसी प्रकार यहाँ भी सुयोग्य वंश वृद्धि कारक पुत्री या पुत्र की पैदाइश के लिये अपनी धर्मपत्नी की योनिरूप गर्भाशय में मानवोत्पत्तिदायक गर्भ रूपी खेत में मानव बीज बोया जाना चाहिए। रक्त और बीज स्त्री-पुरुष दोनों का शारीरिक सम्बन्ध का शुभ समय या रक्त और बीज दोनों धाराओं का सङ्गम कब होना चाहिए ? अर्थात् गर्भ में बीज वपन का शूभ मुहूर्त्त प्रत्येक मास में स्त्री के रजोदर्शन दिन से १६वें दिन तक स्त्री के गर्भाशय का द्वार खुला रहता है १७वें दिन से दरवाजा बन्द होने से वीर्य भगवान् गर्भ के भीतर नहीं जा सकते हैं अत एव रजोदर्शन से १६ दिन के भीतर, रजोदर्शन दिन से पहिले की ४ रात्रियों में शारीरिक सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। यदि पुत्र प्राप्ति की इच्छा है तो १६ दिन तक की विषम रात्रियों, ५, ७, ९, ११, १३ और १५वीं तक रात्रि में दैवज्ञ से बताई गई उक्त सम रात्रियों में ही स्त्री-पुरुष का संयोग (सङ्गम) होना चाहिए अर्थात् गर्भाधान होना चाहिए। ध्यान रहे पुत्र कामना के सोलह दिनों का वह विषम दिन तिथि अवश्य वर्जित होनी चाहिए जिसमें पिता की मृत्यु हुई हो अर्थान्तर से माता की मृत्यु तिथि श्राद्ध तिथि में भी गर्भाधान वर्जित होना चाहिए। तथा माता-पिता के श्राद्ध का पूर्व दिन तथा गर्भाधान में तिथि और लग्नों का सन्धिकाल (गण्डान्त समय) भी वर्जित करना चाहिए।

२७ नक्षत्रों में मूल मघा, रेवती, तिथियों में अष्टमी और चतुर्दशी तिथियों का त्याग के साथ, जन्म तारा और जन्म दिन समय (पति पत्नी दोनों का), पर्व तिथियाँ अमावास्या पूर्णिमा और सूर्य सङ्क्रान्ति दिनों का भी गर्भाधान में त्याग करना चाहिए। जिस दिन चन्द्रमा अपनी जन्म राशियों से शुभ होता है, तथा गोचर से सूर्य गुरु, चन्द्रमा और लग्न जिस समय बलवान् हों यदि उक्त सभी विषम राशि लग्न नवांशों में हो तो विशेष उत्तम समय समझ कर बड़े प्रसन्न मन से (स्त्री पुरुष दोनों का गर्भाधान समय में अतिप्रसन्न होना भी आवश्यक है) ऋतुमती स्त्री के साथ पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध होने से अवश्य पुत्र प्राप्ति होती है।

कन्या प्राप्ति की इच्छा के स्त्री पुरुषों का शारीरिक सम्बन्ध उक्त सभी शुभ समयों के साथ रजोदर्शन के प्रथम चार दिनों को छोड़ कर शेष सम दिनों अर्थात् ६, ८, १०, १२, १४ और १६ ये ६ दिन ही उत्तम कहे गये हैं। कन्या प्राप्ति कामना के स्त्री-पुरुषों की जन्मराशि लग्नों में समराशि नवांश का होना आवश्यक है ध्यान रहना चाहिए। मुहूर्त्त की आत्मा सूर्य और मन चन्द्रमा कहा जाने से दिन का गर्भाधान उचित नहीं है क्योंकि दिन में मन अर्थात् चन्द्रमा निर्बल होता है रात्रि में विशेष बली होने से रात्रि का ही गर्भाधान समीचीन कहा गया है॥ ३॥

पुंभेऽर्केज्यारवारे विमिथुनविषमाङ्गांशयोः पुंसवं स्यात्
सामन्ताख्यं च सत्सु व्ययसुतगृहयोः पर्वरिक्तोनतिथ्याम्।

मासे द्वित्रिप्रसंख्ये प्रथमकमपरं तुर्यषष्ठाष्टमेषु
प्रोक्तं पुंगर्भलग्नं ग्रहबलमनयोर्योज्यमाद्यश्च पक्षः ॥ ४ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ पुंसवनसीमन्तोन्नयने स्रग्धरयाह—**पुंभेति ।** पुंभे "पुन्नक्षत्राणि चैतानि पुष्यो हस्तः पुनर्वसुः । अभिजित्प्रोष्ठपाच्चैव अनुराधाश्वियुक् तथा" इति । प्रोष्ठपात्पूर्वाभाद्रपदा एषामन्यतमे पुंनक्षत्रे अर्केज्यारवारे रविगुरुभौमवारे विमिथुनविषमाङ्गांशयोः अङ्गं च अंशश्च अङ्गांशौ विगतं मिथुनं याभ्यां तौ विमिथुनौ तौ च तौ अङ्गांशौ च तथा तयोः मिथुनरहिते विषमलग्ने विषमनवांशे इत्यर्थः पुंसवं पुंसवनं सीमन्ताख्यं च सीमन्तोन्नयनमिति सत्स्यात् । नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणम् । कयोः सतोः सुव्ययसुतग्रहयोः सतोः पापग्रहरहितयोः व्ययसुतभवनयोः सतोरित्यर्थः । पर्वरिक्तोनतिथ्याम् पूर्णिमामारिक्तातिथिरहिततिथ्यां मासे द्वित्रिप्रसंख्ये प्रथमकम् । पाठोक्त्या प्रथमकं पुंसवनं गर्भाधानात् द्वित्रिप्रसंख्ये मासि द्वितीये तृतीये वा मासि सत्स्यात् । अपरं सीमन्तोन्नयनम् तुर्यषष्ठाष्टमेषु गर्भाच्चतुर्थषष्ठाष्टमेषु मासेषु सत्स्यात् यत्पुंगर्भाय लग्नबलमुक्तम् ईज्यार्केन्दुलग्नैरित्यादिकं तदनयोः पुंसवनसीमन्तोन्नयनयोर्योज्यम् । आद्यः पक्षः शुक्लपक्षश्च योज्यः न कृष्णः । अत्र गर्भाद्यन्नाशनान्तेषु गुरुशुक्रमौढ्यादिकं न चिन्त्यमित्यग्रे वक्ष्यति । लग्नबलं पूर्ववत् । जातूकर्ण्यः "द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत् । व्यक्ते गर्भे भवेत्कार्यं सीमन्तेन सहाथवा" । नृसिंहः "रिक्तां च पर्व नवमीं त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः" । वृत्तशते "सीमन्तोन्नयनं बुधैस्तुहिनगौ पुन्नामधिष्ण्ये स्थिते कुर्यात्पुंसवनं च सूर्यदिवसे भौमस्य जीवस्य वा" इत्यादि । बृहस्पतिः "कुलीरं मिथुनं कन्यां हित्वा शेषाः शुभावहाः" इति । नारदः "चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे वा तदीश्वरे । बलोपपन्ने दम्पत्योश्चन्द्रताराबलान्विते । अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे । तीक्ष्णमिश्रोग्रवर्ज्येषु पुंलग्ने पुंनवांशके । शुद्धेऽष्टमे जन्मलग्नात्तयोर्लग्ने न नैधने । शुभग्रहयुते दृष्टे पापखेटायुतेक्षिते । पंचेष्टिके चतुर्भिर्वा इष्टेर्केन्द्वीज्यपूर्वकैः । स्त्रीणां तु प्रथमे गर्भे सीमन्तोन्नयनं शुभम् । शुभग्रहेषु धीधर्मकेन्द्रेष्वरिभवत्रिषु । पापेषु सत्सु चन्द्रेन्त्यनिधनाद्यरिवर्जिते । क्रूरग्रहाणामेकेऽपि लग्नादन्त्यात्मजाष्टगः । सीमन्तिनीं वा तद्गर्भं बली हन्ति न संशयः" इति ॥ ४ ॥

वागीश्वरी—गर्भाधान के अनन्तर पुंसवन और सीमन्त नामक दोनों संस्कारों के शुभ मुहूर्त्त बताये जा रहे हैं—

२८ नक्षत्रों में पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अभिजित्, पूर्वाभाद्र, अश्विनी और अनुराधा इन सात पुरुष नामक नक्षत्रों, सूर्य गुरु और मंगल वारों, मिथुन रहित शेष मेष सिंह तुला और कुम्भ इन विषमलग्नों और विषमलग्न नवांशों में, (समराशि लग्नों में भी विषमलग्न नवांशों की उपलब्धि हो सकती है) जिस लग्न से पाँचवाँ और बारहवाँ भाव शुद्ध हो या शुभ ग्रहों से युक्त हो उस लग्न में, पर्व अर्थात् संक्रान्ति पौर्णमासी अमावास्या और रिक्ता चतुर्थी नवमी और चतुर्दशी रहित शेष शुभ तिथियों में, पुंसवन (पुरुष की उत्पत्ति) और

सीमन्त संस्कार किये जाने चाहिए। गर्भाधान के दूसरे और तीसरे महीनों में पुंसवन तथा गर्भाधान से ४, ६, ८ महीनों में सीमन्त संस्कार कर्म शुभ कहा गया है। इन संस्कारों में गर्भाधानोक्त पुत्रप्राप्तिप्रद लग्न और पुरुष ग्रहों का विशेष बल भी ग्रहण करना चाहिए। इन दोनों संस्कारों के लिये शुक्ल पक्ष का ही आश्रय लेना चाहिए। यथाशक्ति चन्द्रमा की पूर्णता की स्थिति में कृष्णपक्ष भी लिया जा सकता है। (यह वागीश्वरी व्याख्याकार का मत है।)॥४॥

सूतौ जातं विदध्यादपि जनिमरणाशौचके वा तदन्ते
क्षिप्रैर्ब्राह्मोत्तराभिश्चरमृदुभिरथो नाम वर्णा विदध्युः॥
सूतेः सूर्याष्टिविंशाकृतिमितदिवसे जातभैर्वा चराङ्गं
रिक्ताष्टम्यारमन्दान्व्ययगतखचरं प्रोज्झ्य रात्रिं पराह्णम्॥५॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ जातकर्मविधिं स्रग्धरावृत्तेनाह—सूतौ प्रसूतौ जातायां जातं जातकर्म विदध्यात् कुर्यात्। अथ कदाचित् सूतकमध्ये प्रसूतौ जातायां सत्यां स्मार्तकर्मपरित्यागो "राहोरन्यत्र सूतके" इति शास्त्रेण जातकर्मणोऽवरोधे प्राप्ते तदपवादमाह जनिमरणाशौचकेपि। अयमर्थः। कदाचिज्जातकमृतसूतकयोः प्रसूतिर्भवति तदा जातकर्मविषये सूतकान्तरदोषो नास्तीति भावः। सूतकान्तरे सत्यपि जाते पुत्रे पिता सचैलं स्नानं कुर्यात् इति स्वस्वगृह्योक्तं कर्म कुर्यादित्यर्थः। यतः पूर्वाशौचेनैवास्य शुद्धिः पितुरिति कर्तुरुपलक्षणम् वा तदन्ते पूर्वाशौचान्ते वा' क्षिप्रादिभिर्नक्षत्रैः कुर्यात् क्षिप्राणि अश्विनीहस्ताभिजित्पुष्या ब्राह्मं रोहिणी उत्तरास्तिस्रः चराणि श्रवणत्रयं पुनर्वसुस्वात्यः मृदूनि अनुराधारेवतीमृगचित्राः, एभिरित्यर्थः। लग्नबलं पूर्ववत्। उक्तं च—"तस्मिन् जन्म मुहूर्तेऽपि सूतकान्तेऽथवा शिशोः। जातकर्म च कर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम्॥ क्षिप्रैश्चरैर्ध्रुवैर्मिश्रैर्द्वादशे प्रथमेऽह्नि वा। केन्द्रे गुरौ भृगौ कार्यं जातकर्म सनातनम्" इति। प्रजापतिः "सूतके तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुध्यति" इति। संवर्तः—"जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते। तच्च शीतोदकेन कार्यम्। तत्र जाबालिः—"कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताद्भिः काम्यमेव च" इति। एतच्च रात्रावपि कार्यम्। तत्र वसिष्ठः—"पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः। राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि। तच्च उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातके" इति। रात्रौ उदकादिगमनाशक्तौ विशेषमाह सांख्यायनः—"दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत्। रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसन्निधौ" इति।

अथ नामकर्माह। **अथो नाम वर्णा विदध्युः सूतेः सूर्याष्टिविंशाकृतिमितदिवस इति।** अथोऽनन्तरं वर्णाः ब्राह्मणादयः क्रमेण सूतेः प्रसूतेः सकाशात् सूर्या १२ अष्टि १६ विंश २० आकृति २२ मितदिवसे द्वादश षोडश विंश द्वाविंशमितदिवसे नाम

विदध्युः कुर्युरित्यर्थः। अयमर्थः ब्राह्मणो द्वादशदिवसे क्षत्रियः षोडशे वैश्यो विंशतिमिते शूद्रो द्वाविंशतिदिवसे नाम कुर्यादित्यर्थः। तच्चोक्तं बृहस्पतिना "द्वादशे दिवसे वापि जन्मतो दिवसे शुभे। षोडशे विंशतौ चैव द्वाविंशे वर्णतः क्रमात्" इति। अत्रान्येपि विकल्पाः सन्ति। तत्र व्यासः—"नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छन्ति सूरयः। द्वादशे अह्न्याहुरन्ये तु मासपूर्णे तथा परे॥ अष्टादशेहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः" इति। प्राप्तकालेऽपि विशेषमाह गर्गः "व्यतीपाते च संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि। श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेऽपि मानवः। अमासंक्रान्तिविष्टयादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेद्" इति। यत्र कालनिरोधस्तत्र दोषो नास्ति" यस्यां क्रियायां सर्वोक्ताः काले मासदिनैरपि। तस्यां न दोषो मूढत्वं वक्रं वा जीवशुक्रयोः" इति। अथ कालातिक्रमे नक्षत्राण्याह जातभैर्वेति। जातभैर्जातकर्मोक्तनक्षत्रैर्मैत्रैः क्षिप्रैरित्यादिभिर्वा कार्यम्। तदुक्तं नारदेन—"देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि। अनस्तगे भृगावीज्ये तत्कार्यं चोत्तरायणे॥ चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षेत्रे शुभवासरे। चन्द्रताराबलोपेते दिवसे च शिशोः पिता" इति। अथात्र त्याज्यविशेषमाह चरांगमिति। चरांगं लग्नरिक्ताष्टम्यारमन्दान् रिक्ता चतुर्थी-नवमीचतुर्दश्यः। अष्टमी प्रसिद्धा आरो भौमवारः मन्दः शनैश्चरः तान् व्ययगतखचरं खचरं व्ययभावगतं सौम्यमसौम्यं वा रात्रिः प्रसिद्धा अपराह्णो दिनतृतीयोंऽश एतान् प्रोज्झ्य त्यक्त्वा। लग्नबलं पूर्ववत्। तथा च बृहस्पतिः—"पूर्वाह्णः श्रेष्ठ इत्युक्तो मध्याह्नो मध्यमः स्मृतः। अपराह्णं च रात्रिं च वर्जयेन्नामकर्मणि" इति। नृसिंहः—"सायाह्ने दुष्टयोगे च शनिभूमिजवारयोः। रिक्ता पर्वाष्टमी विष्टिः किंस्तुघ्नं च विशेषतः॥ एतैर्दोषयुते काले रात्रावपि न कारयेत्" इति। बृहस्पतिः "शुभवारे च षड्वर्गे शुभानां नामसंपदे। राशयश्च स्थिराः श्रेष्ठा द्विःस्वभावाः शुभैर्युताः"। नृसिंहः—"लग्ना-द्व्ययाष्टमे सर्वे न शुभा नामकर्मणि" इति। केषां नाम कार्यमिति। संग्रहे उक्तम्—"देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापि कूपयोः। सर्वोपकरणानां च चिह्नानां योषितां नृणाम्॥ काव्यादीनां कवीनां च पश्वादीनां विशेषतः। राजप्रासादसंज्ञानां नामकर्म विशिष्यते" इति॥ ५॥

वागीश्वरी—जातकर्म और नामकरण या नामकर्म मुहूर्त्त जनन मरण अशौच विचार के साथ बताये जा रहे हैं—

अपने सापिण्ड्य कुल में किसी का जन्म और किसी का मरण हो जाने से जनन और मरण के अशौच के हो जाने पर भी नामकरण और जातकर्म संस्कार किये जा सकते हैं कुल परम्परा (वंश मर्यादा) के अनुसार जनन और मरण अशौच की समाप्ति पर तो उक्तकर्म करने में सङ्कोच का स्थान ही नहीं है।

क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों के साथ रोहिणी, तीनों उत्तरा, चर और मृदु संज्ञक नक्षत्रों में (शुभ तिथिवारादि के साथ) जातकर्म और नामकरण संस्कार किये जाने चाहिए।

ब्राह्मणादि वर्ण क्रम से, ब्राह्मण के नवजात शिशु का नामकरण जन्मदिन से १२वें दिन, क्षत्रिय बालक का १६वें दिन, वैश्य बालक का २०वें दिन और शूद्रज बालक बालिका

का नामकरण संस्कार २२वें दिन में करना चाहिए। अथवा चन्द्रतारानुकूल सुविधा के दिनों में भी सीमन्त और नामकरण संस्कार किये जा सकते हैं।

लग्नों में चर लग्न, तिथियों में रिक्ता और अष्टमी ४, ८, ९, १४ तिथियाँ, वारों में मंगल शनि, और जिस लग्न से द्वादश स्थान सबंग्रहरहित हो ऐसे लग्नों में, तथा दिनमान का तीसरा भाग (अपराह्न काल) भी नामकरण संस्कार में त्याज्य है ॥ ५ ॥

जन्माहाद्द्वादशेऽह्नि ध्रुवमृदुलघुभैर्वा न्यसेत्पालकेऽर्भं
सौम्याश्वीज्यध्रुवेन्द्रैर्भुवि शुभदिवसे पञ्चमे मासि दध्यात् ॥
एकत्रिंशद्दिने वाशननिगदितभैः कम्बुना योज्यमर्भे
व्यग्वाशास्ये पयोऽथास्यगमवदुदितो निष्क्रमो मासि तुर्ये ॥ ६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ पालकारोहणं भूम्युपवेशनं दुग्धपानं निष्क्रमणं चेति-चतुष्टयं वृत्तेकेनाह—प्रसूतेः सकाशात् द्वादशे दिवसे पालके खट्वायां वा अर्भं बालकं न्यसेत् निदध्यात्। उक्तकालातिक्रमे ध्रुवमृदुलघुभैर्वा नक्षत्रैर्निदध्यात्। लग्नबलं पूर्ववत् "सूर्यभाच्चन्द्रभं यावत् पंच पंच चतुर्दिशम्। मध्ये च सप्त देयानि बालकस्य हिताय वै ॥ पूर्वभागे तु रोगत्वं दक्षिणे मरणं ध्रुवम् ॥ पश्चिमे विकृती बाल उत्तरे व्याधिसंभवः ॥ शेषे तु मध्यनक्षत्रे बालकस्य हिताय वै।" तथा चोक्तं बृहस्पतिना स्वसंहितायाम्—"खट्वारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेऽपि वा। षोडशे दिवसे वापि द्वाविंशे दिवसेऽपि वा।" तथोक्तं भविष्योत्तरे—"अभीष्टदिवसे पुण्ये चन्द्रताराबलान्विते। मृदुध्रुवक्षिप्रभे तु माता वा कुलयोषितः ॥ शेषशायिनमाचिन्त्य प्राक्शीर्षं विन्यसेच्छिशुम्" इति। भूम्युपवेशनमाह। **सौम्येति**। सौम्यो मृगः अश्विनी प्रसिद्धा ईज्यः पुष्यः ध्रुवाणि पूर्वोक्तानि त्र्युत्तरारोहिण्यः इन्द्रो ज्येष्ठा एभिर्नक्षत्रैः शुभदिवसे रिक्तादिवर्जिते जन्मतः पंचमे मासि भुवि भूम्याम् अर्भं निदध्यात् उपवेशयेदित्यर्थः। तथाचोक्तं ब्रह्मपुराणे—"पंचमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत्। तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमोऽप्यत्र विशेषतः ॥ तिथिं विवर्जयेद्रिक्तां शस्तान्याः शृणु भानि मे। उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शुक्रदैवतम् ॥ प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम्। वराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा द्विजान् ॥ भूभागमुपलिप्याथ तत्र कृत्वा तु मण्डलम्। वाद्यपुण्याहशब्देन भूमौ तमुपवेशयेत्" इति। उपवेशनमन्त्रस्तत्रैवोक्तः—"रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शिशुम्। आयुःप्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये" इति। दुग्धपानमाह—**एकत्रिंशद्दिन इति**। एकत्रिंशमिते दिवसे अर्भे बालके कम्बुना शंखेन पयः दुग्धं योज्यं पाययेदित्यर्थः। अत्र नृसिंहः—"एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शंखेन योजयेत्" इति। अथ मातुः स्वल्पपयस्त्वे पक्षान्तरमाह—**वाशननिगदितभैरिति**। अन्नप्राशननक्षत्रैर्योज्यम्, भैरित्युपलक्षणम्। अन्नप्राशनोक्तमन्यदपि विचार्यम्। किंलक्षणे अर्भे व्यग्वाशास्ये विगतः अगुः राहुर्यस्याः सा व्यगुः सा चासौ आशा च तस्यां आस्यं मुखं यस्य स तथा तस्मिन् राहुवर्जितदिङ्मुख

इत्यर्थः। लग्नबलं पूर्ववत्। व्यग्वाशास्य इति उपलक्षणम्, तेन रुद्रयोगिन्यादिकमपि वर्ज्यम्। तथाचोक्तं ज्योतिर्निबन्धे "योगिनीराहुरुद्रादिमुखं चैव विवर्जयेत्" राहुलक्षणं– "गुरुभान्वोर्वसेत्प्राच्यामिन्दौ शुक्रे च दक्षिणे। कालराहुः कुजे प्रत्यगुत्तरे बुधमन्दयोः" लक्षणान्तरम् "इन्द्रे वायौ यमे रौद्रे तोयाग्निशशिराक्षसे। यामार्धमुदयाद्राहुर्भ्रमत्येवं दिगष्टके" इति। उदयात्सूर्योदयात्। रुद्रलक्षणं—"हरिसोमवह्निराक्षसयमवरुणानिलहरालयेष्वेवम्। उदयादिभ्रमतिसदाघटिकारुद्रो महालये" इत्यादि। अथ निष्क्रमणमाह। अथास्य गमवदुदितो दिनो निष्क्रमो मासि तुर्ये। तुर्ये चतुर्थे मासि अस्यार्भकस्य निष्क्रमे निष्क्रमणं गमवत् गमनवदिति यावत्। उदितः उक्तः पूर्वैः अत्र यात्राप्रकरणोक्तं सर्वं योज्यमित्यर्थः। निष्क्रमणं बृहस्पतिनोक्तम्—"अथ निष्क्रमणं नाम गृहात्प्रथमनिर्गमः। अकृतायां क्रियायां स्यादायुः श्रोनाशनं शिशोः" इति। यमः—"उपनिष्क्रमणं कुर्याच्चतुर्थे मासि सावने" इति। कारिकायां "चतुर्थे मासि पुण्यर्क्षे शुक्ले निष्क्रमणं भवेत्। स्नातं स्वलंकृतं स्वाभिः कृतस्वस्त्ययनं शिशुम्" इति। "आदाय गेहान्निर्गम्य गच्छेयुर्देवतालयम्। अभ्यर्च्य देवतां सम्यगाशिषो वाचयेदथ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं गेहमानयन्ति ततः स्वकम्। मातृस्वसृगृहं गत्वा मातुलादेर्गृहं नयेत्॥ तदाशीर्वचनाद्यैश्च दोर्घायुरभिनन्दितः। जयन्तस्य मतेनायं लिखितः शिशुनिष्क्रमः" स्वगृह्यानुसारं योजयेत्॥ ६॥

वागीश्वरी—नवजात शिशु का दोलारोहण (पालकी शयन), भूमि में बैठाना, दुग्धपान और घर के गोपनीय सुरक्षा स्थान से बहिर्गमन सूर्य दर्शनादि मुहूर्त्त बताये जा रहे हैं—

जन्म दिन से १२वें दिन या उसके आगे के दिनों में, ध्रुव-मृदु और लघु संज्ञक नक्षत्रों में नवजात शिशु को पलने में, (झूला झूलने वाला) बिठाना चाहिए।

जन्ममास से पाँचवें मास मृग, अश्विनी पुष्य ज्येष्ठा सहित ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों के किसी नक्षत्र युक्त शुभ दिन (वार) में नवजात शिशु को पृथ्वी पर बिठाने का उत्तम समय कहा गया है।

जन्म के ३१वें दिन अथवा अन्न प्राशन के लिये जो शुभ नक्षत्र हैं उनके किसी नक्षत्र में राहु रहित पूर्व या पश्चिम या दक्षिण या उत्तर दिशा की तरफ के अभिमुख बालक को शंख से प्रथम दूध पिलाने का शुभ मुहूर्त्त होता है।

यात्रा प्रकरण में वर्णित शुभ समय के अनुसार जन्म से चतुर्थमास में चि० नवजात शिशु को अपने घर की सीमा के निकट में बाहर ले जाना शुभ कहा गया है।

वारक्रम से राहु, रवि और गुरुवार को पूर्व में, सोम शुक्र को दक्षिण, मंगलवार को पश्चिम तथा बुध शनिवार को उत्तर में राहु की स्थिति के साथ तीन तीन मास क्रम से मार्गशीर्ष पौष और माघ में राहु पूर्व में, फाल्गुन चैत्र वैशाख में दक्षिण, ज्येष्ठ आषाढ़ श्रावण में पश्चिम और भाद्र अश्विन कार्तिक··· सौर मासों में राहु की स्थिति उत्तर दिशा में राहु का मुख और ठीक विपरीत दिशा में राहु का पुच्छ केतु, रहता है॥ ६॥

मैत्रैः क्षिप्रैः स्थिरभचरभैर्व्यानिलाम्भःपकर्क्षै-
श्चैकाफापौष्विनशनिकुजर्क्षांशवारानपास्य ।
रिक्तापर्वेश्वरवसुतिथीन् रात्रिसन्ध्ये समाब्दं
पुंस्त्रीकर्णौ सविधिपटुना दक्षवामादिवेध्यौ ॥ ७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ कर्णवेध मन्दाक्रान्तयाह—**मैत्रैरिति**। मैत्रैः अनुराधा-रेवतीमृगचित्राभिः क्षिप्रैः दस्रार्काभिजिदीज्यभैः स्थिरभचरभैः स्थिराणि उत्तरा-त्रयरोहिण्यः चराणि श्रवणत्रयपुनर्वसुस्वात्यः तैः कथंभूतैः स्थिरभचरभैः व्यानिलाम्भः पकर्क्षैः विगतानि अनिलाम्भः पकर्क्षाणि येभ्यस्तानि तथा तैः अनिलं स्वाती अम्भःपः शततारका कर्क्षं रोहिणी तद्रहितैरित्यर्थः। चैकाफापौषु चैत्र-कार्तिकफाल्गुनपौषेष्वित्यर्थः। पुंस्त्रीकर्णौ पटुना कुशलेन सविधि यथा स्यात् तथा दक्षवामादिवेध्यौ पुरुषस्य दक्षिणकर्णादिः स्त्रियाः वामकर्णादिरित्यर्थः। कर्णवेधने सूचीमाह बृहस्पतिः—"सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः। शूद्रस्य त्वायसी सूची मध्यमाष्टाङ्गुलात्मिका॥" कर्णवेधविधिस्तु गृह्यपरिशिष्टे उक्तः—"अथ कर्णवेधो वर्षे तृतीये पंचमे वा पुष्येन्दुहरिचित्रारेवतीषु पूर्वाह्णे प्राङ्मुख उपविश्य दक्षिणं कर्णमभिमन्त्रयेत्। भद्रं कर्णेभिरिति। सव्यं वक्ष्यंतीवेदिति। कुमाराय मधुरं दत्त्वाऽथाभिवन्द्यात्ततो ब्राह्मणभोजनम्" इति। किं कृत्वा इनशनिकुजक्षांशवारानपास्य रविशनिकुजानां ऋक्षाणि लग्नानि अंशा नवांशाः वाराः प्रसिद्धास्तांस्त्यक्त्वेत्यर्थः। पुनः किं कृत्वा रिक्तापर्वेश्वरवसुतिथीनपास्य रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः पर्व पूर्णिमामावास्ये संक्रान्तिश्च ईश्वरतिथिरेकादशी वसुरष्टमी एतानपास्य पुनः किंकृत्वा रात्रिसन्ध्ये अपास्य, स्पष्टम्। पुनः किं कृत्वा समाब्दमपास्य समवर्षं त्यक्त्वा विषमे वर्षे कर्तव्यमित्यर्थः। लग्नबलं प्राग्वत्। अत्र नृसिंहः—"वेध्यौ कर्णावदन्तस्य विषमेऽब्देऽपि वा शिशोः। शुक्लपक्षे शुभे वारे चैत्रपुष्योर्जफाल्गुने॥ एकादश्यष्टमीपर्वरिक्ता वर्ज्याः शुभावहाः। शिष्टाश्च तिथयः सर्वा कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना॥ कर्णद्वयादितिक्षिप्रमृदुभैस्त्र्यायगैः शुभैः। गुरौ लग्ने च केऽप्याहुरुत्तरासु श्रुतिं व्यधेत्" इति। अगस्त्यः—"द्वयोश्च सन्ध्ययोर्लग्ने न कुर्यात्कर्णवेधनम्। रात्रावपि तथा लग्ने नक्षत्रतिथिसन्धिषु॥ कर्णवेधं न कुर्वीत कुर्याच्चेच्छेदनं भवेत्" इति। बृहस्पतिः—"मन्दार्कारांशवाराः स्युर्वर्ज्या कर्णस्य वेधने। गुरुशुक्रेन्दुजेन्दूनां पूज्यवारांशकोदयात्" इति। संग्रहे—"शातकुम्भमयी सूची वेधनेषु शुभप्रदा। राजती वायसी वापि यथाविभवतः शुभा॥ सुभूमौ प्राङ्गणे रम्ये शुचौ देशेऽवरे रवौ। संस्थिते वेधयेत्कर्णौ स्त्रीपुंसोर्वामदक्षिणौ। शुक्लसूत्रसमायुक्त-ताम्रसूच्याथ वेधयत्। वेधात्तृतीयनक्षत्रे क्षालयेदुष्णवारिणा" इति। देवलः "कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः। तं दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः" इति॥ ७॥

वागीश्वरी—कुशल व्यक्ति स्वभावतः भी मृदु व्यक्ति के हाथों से पुत्र बालक का, दाहिना, और कन्या सन्तान का पहले बायां कान छेदवाना चाहिए।

स्वाती शतभिषा और रोहिणी नक्षत्रों को छोड़कर मैत्र, क्षिप्र, चर और स्थिर संज्ञक नक्षत्रों में चैत्र, कार्तिक, फाल्गुन और पौष मासों में, मंगल शनि रवि ग्रहों के दिन लग्न और नवांशों का त्याग कर शेष ग्रहों के दिन नवांशादि में, रिक्तातिथि (४।९।१४) के साथ पर्वतिथि (अमावस्या पूर्णिमा) एकादशी और अष्टमी तिथियों को छोड़ शेष शुभ तिथियों में सन्ध्या रात्रि''''समय और सम वर्ष रहित वर्षों में बालक या बालिका का कान छेदन करना शुभ कहा गया है ॥ ७ ॥

मासे षष्ठेऽष्टमे नुर्निगदितमशनं पञ्चमे सप्तमे वा
भीरोरुज्झन्ति नन्दाहरिवसुरजनीरिक्तकाः स्वर्क्षमेके ।
सदृक्कांशाह्न्यचान्द्रे ध्रुवमृदुचरभं क्षिप्रभेऽजालिमीनो-
नाङ्गे केन्द्रत्रिकोणान्त्यमृतिषु विमलास्विन्दुरिष्टोखिलोङ्गे ॥८॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ अन्नप्राशनं वृत्तेनाह। जन्मतः षष्ठमासे अष्टमे वा मासे नुः नरस्य अशनम् अन्नप्राशनं निगदितं प्रोक्तम्। भीरोः कन्यायाः पंचमे सप्तमे वा मासे अशनं प्रोक्तम्। अत्र नन्दाहरिवसुरजनीरिक्तकाः उज्झन्ति मुनयः। नन्दाः प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः हरिर्द्वादशी वसुरष्टमी रजनी रात्रिः रिक्ताश्चतुर्थी-नवमीचतुर्दश्यः ताः स्वर्क्षं जन्मनक्षत्रं च एके आचार्या अत्र उज्झन्ति। तथा चोक्तं "जन्मर्क्षे श्रीक्षयं विद्यात्" इति। जन्मर्क्षं तु पुंविवाहान्नप्राशनादिषु बहुभिर्गृह्यते तदग्रे वक्ष्यते, पुनः कस्मिन् सदृक्कांशाह्नि दृक्को दृक्काणः अंशो नवांशः अहो दिनं एषां समाहारः सदृक्कांशाहः सतो गृहस्य दृक्कांशाहः सदृक्कांशाहः तस्मिन्। कथंभूते सदृक्कांशाह्नि अचान्द्रे न विद्यते चान्द्रदृक्कांशो यस्मिस्तदचान्द्रं तस्मिन् चन्द्रस्य दृक्कांशाहानि निंद्यानि क्षीणश्चेत् पूर्णे तु न दोषः। अन्यशुभग्रहाणां शुभानीत्यर्थः। पुनः कस्मिन् ध्रुवमृदुचरभक्षिप्रभे ध्रुवादीनि प्रसिद्धानि पूर्वमेवोक्तानि तत्रेत्यर्थः। पुनः अजालिमीनोनाङ्गे अजो मेषः अलिर्वृश्चिकः मीनः प्रसिद्धः एभ्योऽन्यलग्ने मेषवृश्चिकमीनलग्नान्यन्नप्राशने न शुभानीत्यर्थः। कासु सतीषु केन्द्रत्रिकोणान्त्यमृतिषु विमलासु सतीषु केन्द्राणि प्रथमचतुर्थसप्तमदशमानि त्रिकोणे नवपञ्चमे अन्त्यं द्वादशं मृतिरष्टमम्। "परवल्लिगं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः"। एतासु विमलासु पापग्रहरहितासु सतीषु पापग्रहोऽत्र अनिष्टकारीत्यर्थः। इन्दुश्चन्द्रः अखिलः पूर्णः अङ्गे लग्ने इष्टः अन्नप्राशने पूर्णचन्द्रो लग्ने शुभ इत्यर्थः। अन्यल्लग्नबलं पूर्ववत्। अत्र नारदः "षष्ठे मास्यष्टमे वापि पुंसां स्त्रीणां तु पञ्चमे। सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शिशोः॥ रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीं समाम्। त्यक्त्वाऽन्यतिथयः श्रेष्ठाः प्राशने शुभवासराः" इति। ज्योतिर्विवरणे "जन्मर्क्षे श्रीक्षयं विद्यात्कर्मर्क्षे चातिसौख्यकृत्। आधानर्क्षे च बालानां प्राशने रोगनाशनम्"। वृद्धनारदः "जीव-

सौम्यसितानां तद्दृक्काणादि वसांशकाः। बालान्नप्राशने शस्ता न चन्द्रार्कार्कजासृजाम्" इति। अणंवे "गोऽश्वौ कुम्भस्तुला कन्या सिंहः कर्किर्मृगो यमः। एताश्च राशयः शस्ता न मेषझषवृश्चिकाः" इति नारदः "चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रेषु न नैषध" इति। रवौ लग्नेकुष्ठीत्याह ॥ ८ ॥

वागीश्वरी—नवजात बालक या बालिका का अन्न प्राशन जीवन के सर्वप्रथम भोजन का शुभ मुहूर्त्त बताया जा रहा है—

पुलिङ्ग बालक के नित्य प्रथम भोजन आरम्भ के लिये जन्म से छठा या आठवाँ मास, और स्त्रीलिङ्ग नवजात के लिये जन्म से ५वाँ या सातवाँ महीना अन्न प्राशन के लिये उत्तम कहा गया है। नन्दा तिथियाँ (१।६।११) द्वादशी अष्टमी, रिक्ता (४।९।१४) तिथियों को रात्रि समय के साथ जन्म नक्षत्र भी त्याग कर शेष तिथियाँ (जो सूर्योदयात् सूर्यास्त के पहिले ही उपलब्ध होती हैं)। चन्द्रवार और चन्द्रमा के नवांश दृष्काण रहित लग्न नवांशों दिनों में अर्थात् चन्द्रवर्जित शुभ ग्रहवार दिन लग्न नवांशों में ध्रुव मृदु चर क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों में, तथा मेष वृश्चिक मीन रहित शेष लग्नों में, अष्टम द्वादश शुद्ध केन्द्र त्रिकोणस्थ (१, ४, ७, १०, ९, ५) ग्रहों की शुभ स्थिति रहने पर अन्नप्राशन शुभ कहा गया है। यदि पूर्ण चन्द्रमा लग्न में हो तो मुहूर्त्त में गुणाधिक्य से जीवन भी विशेष शुभोदय का होता है। फलतः क्षीणता या निर्बलता की चन्द्रमा की स्थिति त्याज्य है ॥ ८ ॥

गर्भाद्यन्नाशनान्तेषु न गुरुसितयोर्बाल्यवार्ध्ये च मौढ्यं
जह्यात्कालस्य रोधाद्धरिगुरुमयनं याम्यमूनाधिमासौ ॥
एतच्चौलादिषूज्झेदथ गुरुसितयोर्बाल्यवार्धे नगाहे
चाथो शाखेशमौढ्ये व्रतमपि निगमारम्भमार्यो न कुर्यात् ॥ ९ ।

मार्तण्डवल्लभा—अथ येषु संस्कारेषु गुरुशुक्रास्तादिदोषाभावः येषु दोषः बालत्ववृद्धत्वप्रमाणं शाखेशस्य मौढ्ये किं न कार्यमिति चतुष्टयं वृत्तेकेनाह। गर्भाद्यन्नाशनान्तेषु गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तेषु कर्मसु गुरुसितयोर्बाल्यवार्ध्ये च परं मौढ्यं गुरुशुक्रमूढत्वं जह्यात्। कस्माद्धेतोः कालस्य रोधात्, यतः शास्त्रे गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तानां कर्मणां कालनिरोधः कृतोऽस्ति तस्माद्धेतोः। तथा च माण्डव्यः "नित्ययाने गृहे जीर्णे प्रशनान्तेषु सप्तसु। वधूप्रवेशमाङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः" इति। हरिगुरुं सिंहस्थितं वृहस्पतिं याम्यमयनं दक्षिणायनम्। ऊनाधिमासौ क्षयमासाधिमासौ न त्यजेत्। कालस्य रोधादित्येतत्पदं बुद्ध्यावगन्तव्यम्। तद्यथा—प्रसूतिसमय एव जातकर्म विहितं तत्र कालनिरोधाद् किमप्यस्तादिकं न चिन्त्यम्। अन्नप्राशनं तु मासे षष्ठेऽष्टमे वेति विकल्पेन मासद्वये विहित तत्र यस्मिन् मासे मौढ्यादिकं न स्यात्तत्र कर्तव्यं कालस्य सावकाशत्वात्। तयोरपि मासयोर्यदि सिंहस्थगुर्वादिनिरोधः स्यात् सोऽप्यत्रानु चिन्तनीयः। एवं गर्भाद्यन्नाशनान्तेषु विचारणीयम्। "अनन्यगतिकं कुर्यान्नित्यं नैमित्तिकं तथा" इतिस्मरणात्।

संस्कारक्रमस्तु कात्यायनगृह्यकारिकायामुक्तः "गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः। जातकर्माभिधेयं च निष्क्रमप्राशने कमात्॥ चूडोपनयनं वेदव्रतानां च चतुष्टयम्। गोदानं मेखलामोको विवाहः षोडशक्रियाः" इति। अनेन क्रमेण गर्भाद्यन्नाशनान्तेषु मौढ्यादिकं बुद्धयावलोकयेदित्यर्थः। तथाच बृहस्पतिः "मास-प्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः। न दोषकृत्तदा मासलक्षणो बलवानिति" यमोऽपि "गर्भे वार्धुषिके भृत्ये श्राद्धकर्मणि मासिके। सपिण्डीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत्"। भृगुः—"सीमन्तजातकादीनि प्राशनान्तानि च क्रमात्। कर्तव्यानि न दोषोऽस्ति पंचाननगते गुरौ" इति। कात्यायनस्मृतौ "गर्भाधानादिका अन्न-प्राशनान्ता मलिम्लुचे। आकर्णवेधाः कर्त्तव्या नान्या इत्याह भास्करः" इति। अस्तादिकं चूडादिषु वर्जनीयमित्याह—एतच्चौलादिषूज्झेदिति, एतद्गुरुसितास्तादिकं चूडादिषु कर्मसु उज्झेत्यजेत्। अथ बालत्ववृद्धत्वप्रमाणमाह—अथगुरुसितयोरिति। गुरुसितयोर्गुरुशुक्रयोर्बाल्यवार्द्धक्ये बालत्ववृद्धत्वे नगाहे सप्ताहे सप्ताहं बाल्यं सप्ताहं वार्द्धक्यमिति। बालत्वं वृद्धत्वं बहुविधमस्ति तत्र मध्यमः पक्षोऽत्राङ्गीकृतः। अथ शाखे-शस्य अस्ते वर्ज्यमाह। अथो शाखेशमौढ्य इति। शाखेशो वेदपतिर्वक्ष्यमाणः तस्य मौढ्ये अस्ते व्रतं मौञ्जीबन्धनं निगमारम्भमपि आर्यः श्रेष्ठो न कुर्यात्। तस्यास्ते व्रतादिकृते सति बटोर्मूर्खत्वं स्यात्। ननु वेदारम्भे मूर्खत्वं घटते वेदपतित्वात् व्रते मूर्खत्वं किमुक्तम्। उच्यते। व्रतबन्धस्तु वेदाध्ययनार्थं क्रियते। तस्मात्तत्रापि मूर्खत्वं घटते। तथाच याज्ञवल्क्यः—"उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्। वेदमध्यापये-देनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्। प्रतिवेद ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पंच वा। ग्रहणान्तिक-मित्येके केशान्तश्चैव षोडशे" इति। "यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम्। वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः" तथा कात्यायनगृह्यसूत्रे—"वेदं समाप्य स्नायाद्-ब्रह्मचर्यं वाष्टाचत्वारिंशकं द्वादशकेऽप्येके गुरुणानुज्ञातः" इत्यादि ॥ ९ ॥

वागीश्वरी–गर्भाधान से अन्नप्राशन तक गुरु और शुक्र ग्रहों का अस्त वक्र वार्धक्यादि तथा सिंह राशिगत तथा क्षयमास अधिक मास दक्षिणायन इत्यादिक शुभ कर्म त्याज्य समयों का (गर्भाधान से अन्नप्राशन तक के मुहूर्त्तों में) यहाँ कोई दोष नहीं होता यह सब प्रकृति की स्वतः की देन है जिसमें शास्त्रज्ञ के भी वश ज्ञान नहीं है। किन्तु बावजूद चूडाकरण उपनयन वेदारम्भ समावर्त्तन केशान्त, विवाह वधूप्रवेश यात्रा, गृहनिर्माण, गृह प्रवेश आदि मानव कृत्य कर्मों में उक्त शात्रज्ञों की गम्भीर गवेषणा से उपलब्ध फलित ज्यौतिष के इस शुद्ध शुभ मुहूर्त्त की उपेक्षा अनिष्ट भविष्य की सूचना देती है।

गुरु और शुक्र के उदय के अनन्तर ७ दिन तक का बाल्यत्व और अस्त के पूर्व के सात दिन का वार्धक्य (वृद्धत्व) दोष भी शुभ कर्म में त्याज्य है।

ऋग्वेदादि वेद चतुष्टय शाखाधीश ग्रहों के अस्तादि समयों में भी उपनयनादि शुभ कर्म त्याज्य कहे गये हैं ॥ ९ ॥

चौलं माघादिपञ्चस्वमधुषु गदितं द्वित्रिपञ्चोन्मितेऽब्दे
स्वाचाराद्वा सगर्भा यदि भवति जनन्यत्र नो कार्यमेतत् ।
साकं यत्रोपनीत्या क्रियत इह तदा यन्निरोधो नहि स्या
ज्जह्यादम्बार्तवेऽदोव्रतमुपयमनं चाविशुद्धेः शुभार्थी ॥१०॥

मार्त्तण्डवल्लभा—अथ चौलं सनिर्णयं वृत्तेकेनाह । **चौलमिति** । कार्यं वर्णैरित्यग्रिमश्लोकेनान्वयः । चूडाकरणं माघादिपञ्चसु मासेषु अमधुषु चैत्ररहितेषु गदितमुक्तम् । तथाचोक्तं नारदेन "माघादिपंचके चौलं हित्वा क्षीणविधुं मधुम्" इति । द्वित्रिपञ्चोन्मितेऽब्दे द्वितीये तृतीये पंचमे वर्षे स्वाचाराद्वा स्वकुलाचारतो वा । उक्तं च कात्यानगृह्ये—"सांवत्सरिकस्य अतिक्रान्ताब्दस्येति हरिहरमिश्रैर्व्याख्यानं कृतम् । तथाच सद्गुरुशिष्यः "आद्येऽब्दे कुर्वते केचित्पञ्चमेऽन्ये द्वितीयके । उपनीत्या सहैवेति विकल्पः कुलधर्मतः" इति । सगर्भा यदि भवति जनन्यत्र नो कार्यमेतत् । अत्र उक्तवर्षेषु द्वित्रिपञ्चाब्दकेषु जननी कुमारस्य माता यदि सगर्भा भवति स्यात्तदा एतच्चौलं नो कार्यम् । पञ्चमाब्दादूर्ध्वं गर्भिण्यां चूडाकर्मं न कारयेत् । पञ्चाब्दात्प्रागथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ।" उपनयनेन सह क्रियमाणे न दोष इत्याह । "साकं यत्रोपनीत्या क्रियत इह तदा यन्निरोधो नहि स्यात्" इति । यत्र उपनीत्या साकमुपनयनेन सह क्रियते तदा इहास्मिन् चौले अयमुक्तो निरोधश्चैत्रमासमातृगर्भलक्षणो न ह्येव स्यात् । तदुक्तं तेनैव—"सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते" इति । अम्बार्तवे निषेधमाह—जह्यादम्बार्तवेऽदो व्रतमुपयमनं चाविशुद्धेः शुभार्थीति । अम्बार्तवे मातृरजसि अदः अनन्तरोक्तं चौलमित्यर्थः । व्रतं मौंजी उपयमनं विवाहः आविशुद्धेः शुद्धिपर्यंन्तं शुभार्थी नरः एतत्त्रयं जह्यात् न कुर्यादित्यर्थः । तथाच मनुस्मृतौ "उद्वाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला । तदा न मंगलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेच्छुभिः" ॥ अन्यमुहूर्तालाभे कारिकानिबन्धे शान्तिकमुक्तम् । 'अलाभे सुमुहूर्त्तस्य रजोदोषे तु संस्थिते । श्रियं संपूज्य तत्कुर्याद्वृत्रहत्या भयंकरी ॥ हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनाऽर्चयेत् । प्रत्यृचं पायसं हुत्वाऽभिषिच्य शुभमाचरेत् ॥ सूतिकोदक्ययोः शुद्धौ गां दद्याद्धेमपूर्वकम् । प्राप्ते कर्मणि शुद्धिः स्यादितरस्मिन्न शुद्धयति" इति । उदक्या रजस्वला ॥ १० ॥

वागीश्वरी--जन्म के १, ३ और ५वें वर्ष में ही चौल संस्कार होता है । चैत्र रहित माघादि पाँच मासों अर्थात् माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ मासों में बालक का चूडाकरण संस्कार शुभ होता है । यदि इन वर्षों में माता गर्भिणी हो तो बालक का चूडाकरण नहीं किया जाना चाहिए ।

यदि उपनयन के साथ ही चौल मुण्डन संस्कार किया जाता है तो माता की गर्भिणी व चैत्र मास का निषेध नहीं होना चाहिए । क्योंकि यहाँ उपनयन संस्कार का ही प्राधान्य है । किन्तु माता के रजस्वला की स्थिति में तो उक्त संस्कार नहीं किये जा सकेंगे ॥ १० ॥

कार्यं वर्णैरिनारार्किशनिषु निखिलैर्ज्ञत्रये शुक्लसोमे
द्व्यन्त्यद्व्यादित्यशाक्रेन्दुभिरिनहरितस्त्रिस्त्रिभैश्चौलकर्म ॥
द्यूनेर्कारार्किशुक्रागतकविनिखिला मृत्युगा मृत्युदाः स्यु-
र्व्यब्जाः सन्तोऽन्त्य इष्टास्त्यज गुहशशिनौ रात्रिसन्ध्ये च रिक्ताः ॥११॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वर्णविशेषेण वारविशेषं तथा नक्षत्राणि लग्नबलं च वृत्तेनाह—**कार्यमिति** । वर्णैर्ब्राह्मणादिभिः यथाक्रमेण इनारार्किशनिषु चौलकर्म कार्यमित्यन्वयः । इनः सूर्यः आरो भौमः आर्किः शनिः शनिः प्रसिद्धः तेष्वित्यर्थः । एतदुक्तं भवति । विप्रेण रविवारे क्षत्रियेण भौमवारे वैश्येन शनिवारे शूद्रेणापि शनिवारे चौलं कर्तव्यमित्यर्थः । शूद्रस्य द्वादशसंस्कारा उक्ताः । "वेदो व्रतोपनयनं महानाम्नी महाव्रतम् । विना द्वादश शूद्राणां संस्कारा नाममन्त्रतः" इति । निखिलैश्चतुर्भिर्वर्णैरविशेषेण ज्ञत्रये बुधत्रये शुक्लपक्षगतसोमवारे कार्यम् । कृष्णपक्षे सोमवारोऽतिनिंदितः क्षीणत्वात् । अत्र नारदः "अपर्वरिक्तातिथिषु शुक्रेज्यज्ञेन्दुवासरे" इति । बृहस्पतिः "सोमवारः सिते पक्षे कृष्णपक्षेतिगर्हितः । बुधवारः शुभः प्रोक्तः पापग्रहयुते बुधे ॥ पापग्रहाणां वारादौ विप्राणां शुभदो रविः । क्षत्रियाणां क्षमासूनुर्विट्शूद्राणां शनिः शुभः" इति । कैः द्व्यन्तद्व्यादित्यशाक्रेन्दुभिः अन्त्याद्द्वे इति द्व्यन्त्यं रेवत्यश्विन्यौ द्व्यादित्यं पुनर्वसुपुष्यौ शाक्रं ज्येष्ठा इन्दुर्मृगः तैः पुनः कैः इनहरितस्त्रित्रिभैः इनो हस्तः हरिःश्रवणः ताभ्यां त्रित्रिभैः हस्तात्त्रिभिः श्रवणात्त्रिभिरित्यर्थः । तथाच नारदः "दस्रादितीज्यचन्द्रेन्द्रपूषभानि शुभान्यतः । चौलकर्मणि हस्तर्क्षात्त्रीणि त्रीणि च विष्णुभात्" इति । द्यूनेर्कारार्किशुक्राः अत्र चौले मृत्युदाः स्युः द्यूने सप्तमे अर्कारार्किशुक्राः अर्कः सूर्यः आरो भौमः अर्कस्यापत्यमार्किः शनिः शुक्रःप्रसिद्धः एते चत्वारो मृत्युदा इति । चतुर्णां समानं फलमुक्तम् । वसिष्ठेनात्र विशेषफलमुक्तम् "जामित्रे भास्करे क्षौरे मृत्युः स्याद्भूमिजे तथा । शुक्रे सौख्यविनाशः स्यान्मन्दभाग्यं शनैश्चरे" इति । अत्र चतुर्णामपि सामान्येन मृत्युफलमुक्तम् । तद्दारिद्र्यान्मरणं वरमितिन्यायेन न दोषः । गतकविनिखिला मृत्युगा मृत्युदाः स्युः गतः कविः शुक्रः येभ्यस्ते गतकवयः ते च निखिलाश्च शुक्ररहिताः सर्वे मृत्युगाः अष्टमगा मृत्युदाः । अत्र बृहस्पतिः "अष्टमस्थानगाः सर्वे नेष्टाः शुक्रविवर्जिताः । शुक्रस्तु निधने क्षौरे सर्वसंपत्प्रदः शिशोः" इति । व्यब्जाः सन्तोऽन्त्य इष्टाः विगतः अब्जः चन्द्रो येभ्यस्ते व्यब्जाः एवंविधाः सन्तो सद्ग्रहाः चन्द्ररहिताः सद्ग्रहाः अन्त्ये द्वादशे इष्टाः शोभनाः स्युः । तथा च नारदः "चौलान्नप्राशने शस्ताः सौम्या रन्ध्रव्ययोपगाः" इति । अन्यच्च "न नैधने भे शीतांशौ षष्ठाष्टान्त्यविवर्जिते" इति । तस्यैव वचनम् । अन्यल्लग्नबलं पूर्ववत् । त्यज गुहशशिनौ रात्रिसन्ध्ये च रिक्ताः । गुहः षष्ठी शशी पौर्णिमा । स्पष्टमन्यत् । "क्रूरवारं निशां रिक्तां षष्ठीं सन्ध्यां च जन्मभम् । सद्भिर्विवर्जयेदेतन्नारदस्य वचो यथा" इति ॥ ११ ॥

वागीश्वरी--ब्राह्मणादि वर्णक्रम से क्षौर (हजामत) का अच्छा दिन वारादि समय बताया जा रहा है—

ब्राह्मण के लिये क्षौर का दिन रविवार, क्षत्रिय के लिये मंगलवार, वैश्य और शूद्र के लिये मुण्डन (क्षौर = हजामत चूड़ा) शनिवार के दिन ठीक कहा गया है।

सभी वर्णों में सर्वसाधारण के लिये, बुध, बृहस्पति शुक्र और शुक्ल पक्ष में सोमवार के दिन भी चौल कर्म किया जाना चाहिए। नक्षत्रों में—रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, ज्येष्ठा, मृगशीर्ष, तथा हस्त चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा चौल कर्म के लिये शुभ कहे गये हैं।

चौल (मुण्डन) के लिये लग्नशुद्धि—लग्न से सप्तम सूर्य, मंगल शनि और शुक्र मृत्यु कारक होते हैं। लग्न से अष्टम स्थान गत शुक्र ग्रह को छोड़कर सभी अशुभ फलप्रद कहे गये हैं। फलतः मुण्डन संस्कार में शुक्र ग्रह शुभ कहा गया है तथा चन्द्र रहित सभी ग्रह १२वें स्थान में शुभ कहे गये हैं। चौल मुण्डन कर्म में षष्ठी पूर्णिमा, और रिक्ता (४।९।१४) तिथियाँ अशुभ हैं। दोनों सन्ध्या समयों एवं समग्र रात्रि समय में चूड़ा (मुण्डन) कराना अशुभ भविष्य का संकेत है ॥ ११ ॥

भुक्ताभ्यक्तोपवासीश्वरजनयुवतीप्राग्वयस्काश्च योगी
यात्रायुद्धोन्मुखा ये कृतदिनविधयोऽस्त्यम्बकास्ते न मुण्ड्याः ॥
सीमन्तोर्ध्वं न पत्युर्नखकचलवनं दूरदेशप्रयाणं
वृक्षच्छेदः समुद्राप्लुतिमृतहरणे स्यादृते वश्यकार्यात् ॥१२॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ प्रसंगात् क्षौरनिर्णयं सार्द्धवृत्तेनाह—**भुक्त इति।** भुक्तः कृतभोजनः अभ्यक्तः कृताभ्यंगः उपवासी प्रसिद्धः ईश्वरजनो राजसेवकः समर्थो वा युवतिः स्त्री सौभाग्यवती प्राग्वयस्काः प्रथमवयस्काः पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तं पूर्ववयः योगी राजयोगी गीतादौ प्रसिद्धः यात्रायुद्धोन्मुखाः यात्रा प्रयाणं युद्धं प्रसिद्धं तौ प्रति ये उन्मुखाः प्रचलिताः यात्रोन्मुखा युद्धोन्मुखाश्चेत्यर्थः। कृतः दिनविधिः आह्निकं यैस्ते कृतदिनविधयः अस्त्यम्बको जीवत्पितृकः ते न मुण्ड्याः मुण्डनार्हा न भवन्ति। अवश्यकार्यादृते इत्युत्तरार्द्धोक्तमत्रानुसन्धेयम्। यत्रावश्यमुण्डन-कारणं भवति तत्रावश्यं मुण्ड्याः। अथ क्षौरनिषेधप्रसंगाद् गुर्विर्णीपतेर्निषिद्धं साप-वादमाह—**सीमन्तोर्ध्वमिति।** सीमन्तोर्ध्वं सीमन्तोन्नयनादूर्ध्वं पत्युः कृतसीमन्त-संस्कारायाः पत्युः भर्तुरवश्यकार्यादृते नखकचलवनादिकं न स्यात्। नखकचलवनं नखकेशच्छेदनम्। अन्यत्सुगमम्। आवश्यकार्यादृते न स्यादित्यनेन आवश्यके न दोष इत्यर्थात्सिद्धम्। यथा पितृमरणे क्षौरादि देशविप्लवे देशान्तरगमनमित्यादि-विचारणया आवश्यके न दोष इत्यर्थः। कृताग्न्याधानस्य मुण्डनपक्षांगीकारे मुण्डनमावश्यकम् "मासिमास्युपासनीकस्य पक्षे पक्षेऽग्निहोत्रिणः" इति ॥ १२ ॥

वागीश्वरी--क्षौर (हजामत) के लिये आवश्यक नियम पालन भोजन करने के बाद, तेल मर्दन के अनन्तर, व्रत उपवास के दिन मुण्डनादिक क्षौर कर्म नहीं किया जाना चाहिए।

राजा के कर्मचारी, सौभाग्यवती स्त्री कुमारावस्था के युवक, योगी, यात्रा और युद्धप्रयाण के समय सम्पादित दैनिक कर्म के पश्चात् जीवित माता की सन्तान, इत्यादि के लिये आवश्यक कार्य के बिना क्षौर (मुण्डन) आवश्यक नहीं है।

गर्भिणी स्त्री का पति सीमन्त संस्कार के पश्चात् अनावश्यक न तो नाखून कटावै और नहीं केश कटा सकता है। गर्भिणी के पति के लिये दीर्घ यात्रा करना भी निषेध है। वृक्ष काटना, समुद्र स्नान, मृतक बहन शव यात्रा आदि भी गर्भिणी स्त्री के पति के लिये निषेध है। अत्यन्त आवश्यकता पर उक्त कार्य किये जा सकते हैं यह परिस्थिति विशेष पर निर्भर करता है क्योंकि सापिण्ड आदि में मरण हो जाने पर मुण्डन आवश्यक होने से किया जा सकता है॥ १२॥

क्षौरं चौलोक्तभादौ गदितमथ रविक्षेत्रगंगाध्वराग्न्या-
धाने पित्रोर्विनाशे द्विजनृपकथने सर्वदा क्षौरमिष्टम्॥
मित्रत्र्यर्कादितीन्द्रान्तिमहरितुरगैः पञ्चमेऽब्दे व्रतात्प्रा-
ग्विद्यारम्भोक्तकालेऽक्षरविधिरघटे सौम्यसंज्ञेऽयनेऽर्के॥१३॥

मार्तण्डवल्लभा—अथोक्तेभ्योऽन्येषां क्षौरार्थं नक्षत्रादिकमाह—**क्षौरमिति**। चौलोक्तभादौ क्षौरं गदितं प्रोक्तम्। चौलार्थमुक्तश्चौलोक्तः। स चासौ भादिश्च तस्मिन्नक्षत्रतिथ्यादिकाले क्षौरं गदितं प्रोक्तम्। अथ क्षौरनिमित्तान्याह—रविक्षेत्र-गंगाध्वराग्न्याधाने पित्रोर्विनाश इत्यादि। रविक्षेत्रं भास्करक्षेत्रं गंगा प्रसिद्धा अध्वरो यागः अग्न्याधानमग्निहोत्रं तस्मिन् पित्रोर्विनाशो मरणं तस्मिन् द्विजनृपकथने ब्राह्मणाज्ञायां राजाज्ञायां च सत्यां सर्वदा क्षौरमिष्टं स्यात्। क्षौरे नक्षत्रादिनियमो नास्तीत्यर्थः। तदुक्तं वृत्तशते—"भुक्ताभ्यक्तनिरासनैः" इत्यादि। रत्नमालायाम् "आज्ञाया नरपतेर्द्विजन्मनाम्" इत्यादि। बृहस्पतिः "राजकार्ये नियुक्तानां नराणां भूपसेविनाम्। श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम्"॥ ज्योतिर्निबन्धे "राजा योगी पुरंध्री च मातापित्रोश्च जीविनोः। मुण्डनं सर्वतीर्थेषु न कुर्याद्गुर्विणी-पतिः"॥ स्मृत्यन्तरे "सिन्धुस्नानं द्रुमच्छेदं पवनं प्रेतवाहनम्। विदेशगमनं चैव न कुर्याद्गुर्विणीपतिः॥ क्षौरं नैमित्तिकं कुर्यान्निषेधे सत्यपि ध्रुवम्॥ पित्रोः प्रेतविधानं च न दोषस्तत्र विद्यते॥ गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृतेऽहनि। आधाने सोमपाने च षट्सु क्षौरं विधीयते॥ अन्तर्वत्न्यां तु जायायां तीर्थे क्षौरं न कारयेत्। प्रेतवाहादिकं नैव सीमन्तोन्नयनादनु॥ पञ्चाशद्वायनात्पूर्वं क्षौरं नैमित्तिकं विना। न कुर्यात्तत ऊर्ध्वं तु स्वेच्छया वपनं चरेत्" इति। अथाक्षरारम्भं वृत्तार्द्धेनाह—**मित्रत्र्यर्केति**। मित्रादिभिर्नक्षत्रैः जन्मतः पञ्चमे वर्षे व्रतात् व्रतबन्धात् प्राक् प्रथमं

विद्यारम्भोक्तकाले वक्ष्यमाणलक्षणे अक्षरविधिः शुभः स्यादित्यध्याहारः। कस्मिन् सति सौम्यसंज्ञे अयने अर्के सति, कथंभूते सौम्यसंज्ञे अयने अघटे न विद्यते घटो यस्मिन् तथा तस्मिन् कुम्भरहित उत्तरायणे इत्यर्थः। ब्रह्मतुल्ये अयनलक्षणं "कर्किमृगादिषट्के ते चायने दक्षिणसौम्यायने स्तः" इति। मित्रमनुराधा त्र्यकं हस्तत्रयं अदितिः पुनर्वसुः इन्द्रो ज्येष्ठा अन्तिमं रेवती हरिः श्रवणः तुरगोऽश्विनी। शेषं प्रथममेव व्याख्यातम्। व्रतात्प्रागित्यनेन व्रतबन्धादुपरि निषेधोऽर्थसिद्धः। पञ्चमे वर्षे पठनरुच्या व्रतबन्धोऽग्रे वक्ष्यति। तथा चोक्तं बृहस्पतिना—"द्वितीयजन्मतः पूर्वमारभेताक्षरान्सुधीः" इति। नृसिंहः "अक्षरस्वीकृतिः प्रोक्ता प्राप्ते पञ्चमहायने। उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भमासं विवर्जयेत्" इति॥ १३॥

वागीश्वरी--पूर्व में चूडाकरण (मुण्डन संस्कार) में कहे गये नक्षत्र तिथि वारादि में साधारण क्षौर (मुण्डन या दाढ़ी बनाना नाखून कटवाना) किया जा सकता है।

गङ्गातीर की उपलब्धि, यज्ञ याग कर्मारम्भ, अग्निहोत्र ग्रहण, मातृपितृ मरण, ब्राह्मण और राजा की आज्ञा से क्षौर कर्म कभी भी किया जा सकता है ऐसी स्थिति में क्षौर कर्म सदोष नहीं है।

जन्म से ५वें वर्ष, उपनयन संस्कार के पहले, कुम्भ राशि रहित उत्तरायण सूर्य में विद्यारम्भ (आगे श्लोक १९···) अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, रेवती, श्रवण और अश्विनी, किसी भी एक नक्षत्र में अक्षर आरम्भ कराना शुभ है॥ १३॥

विप्रादेर्गर्भतोऽब्देऽष्टशिवरविमिते जन्मतो वा व्रतं स्या-
दत्रानिष्टेऽपि जीवेऽनिमिषरविमधौ कार्यमब्दस्य दाढर्यात्।
स्वाब्दादूर्ध्वं क्रमादा द्विगुणितशरदो निन्द्यमब्दक्रमेण
पंचाष्टांकाब्दतो वा प्रपठनरुचितः शस्तमेषां तदाहुः॥ १४॥

मार्त्तण्डवल्लभा--अथ ब्रह्मक्षत्रविशां मुख्यं गौणं च व्रतबन्धकालं वृत्तेनाह—**विप्रादेरिति।** गर्भतः गर्भाधानाज्जन्मतो वा अष्टशिवरविमिते अब्दे विप्रादेर्व्रतं स्यात्। विप्रस्याष्टमे, क्षत्रियस्य शिवमिते एकादशे वर्षे स्यात्, वैश्यस्य रविमिते द्वादशे वर्षे स्यात्। अत्र स्वस्ववर्षे जीवे गुरौ अनिष्टे अशुभे सत्यपि व्रतं कार्यम्। क्व? अनिमिषरविमधौ अनिमिषे रविः अनिमिषरविः अनिमिषरविणा विशिष्टो मधुः अनिमिषरविमधुः तस्मिन् मीनस्थे रवौ सति चैत्रे व्रतं कर्तव्यमित्यर्थः। अब्दस्य दाढर्यात् वर्षबलात्। तदुक्तं संग्रहे—"शुद्धिर्न विद्यते यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि। चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम्॥ जन्मभादष्टगे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ। मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ॥ अशुभेऽब्दे ग्रहाः सर्वे शुभगोचरगा अपि॥ शान्तिभावाच्छुभं नैव यात्यब्दः कालमृत्युवत्" इति। अथ गौणकालफल-माह—**स्वाब्दादूर्ध्वं क्रमादिति।** स्वाब्दात्स्ववर्षादूर्ध्वं क्रमात् अद्विगुणितशरदः द्विगुणिता चासौ शरच्च द्विगुणितशरद्वर्षं तां मर्यादीकृत्येति तथा तस्याः अब्दक्रमेण

निन्द्यम्। तद्यथा ब्राह्मणस्याष्टमं वर्षं मुख्यं तद्द्विगुणितं षोडशं अष्टवर्षात्षोडशवर्षपर्यन्तं ब्राह्मणस्य, एकादशवर्षाद्द्वाविंशवर्षपर्यन्तं क्षत्रियस्य, द्वादशवर्षाच्चतुर्विंशतिवर्षपर्यन्तं वैश्यस्य। अब्दक्रमेणोत्तरोत्तरनिन्द्यम्। अर्थादत ऊर्ध्वमनधिकारिणो भवन्ति। तदुक्तं संग्रहे—"नृपा १६ कृति २२ जिना २४ ब्दान्तं नातिकालस्ततः परम्। पातित्यं स्यादग्रजादेर्व्रात्यस्तोमो विशोधनम्" इति। तथा च कात्यायनगृह्ये—"आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः काल आ द्वाविंशात्क्षत्रियस्या चतुर्विंशाद्वैश्यस्यात ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति। नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्नचैभिर्व्यवहरेयुः, कालातिक्रमे नियतवत् त्रिपुरुषं पतितसावित्रीकाणामपत्यसंस्कारो नाध्यापनं तेषां संस्कारेप्सुर्व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन्व्यवहार्या भवन्ति" इति वचनादिति। अथ स्वाब्दात् प्रागपि अध्ययनौत्सुक्यादुपनयनकालमा पञ्चाष्टङ्काब्दतो वेति। पञ्चमाष्टमनवमवर्षेभ्यः सकाशादेषां ब्रह्मक्षत्रविशां क्रमेण प्रपठनरुचितः वेदादिपठनरुच्या तद्व्रतं शस्तमाहुर्मुनयः। उक्तं च संग्रहे—"ब्रह्मवर्चसमूर्जश्च विद्यायुःश्रीर्यशःसुखम्। विप्रादेरुपनीतस्य पञ्चाष्टाङ्काब्दतः फलम्" ॥ १४ ॥

वागीश्वरी—उपनयन (व्रतबन्ध) संस्कार का शुभ समय गर्भ में जीव को बालक रूप में धारण करते समय से अथवा भूमि में चि० बालक के जन्म समय से, ब्राह्मण बालक का ८वें, क्षत्रिय वैश्य बालकों का क्रमशः ११वें और १२वें वर्ष में उपनयन-संस्कार (व्रतबन्ध कर्म) शुभ होता है। वर्ष अवधि की प्रधानता से गोचर से बृहस्पति की शुद्धता न होने पर भी उक्त वर्षों में यज्ञोपवीत संस्कार कर देना चाहिए। मीन राशि के सूर्यस्पष्ट ११।०।०··· से सा. सू. ०।०।० तक मीनार्क में भी शास्त्रोक्त उपनयन वर्ष संख्या के वर्ष में उपनयन संस्कार किया जा सकता है। यहाँ पर उपनयन संस्कार वर्ष संख्या का प्राधान्य है गोचरादि विचार आवश्यक नहीं है।

यदि उक्त कथित वर्षों में बटुओं का उपनयन संस्कार नहीं किया जा सकता है तो उक्त विप्र आदि वर्ण के कथित वर्षों की द्विगुणित संख्या के वर्षों तक अर्थात् ब्राह्मण बटुका ८वें से १६वें वर्ष तक और क्षत्रिय वैश्य वर्णों का ११वें से २२वें एवं १२वें से २४वें वर्ष तक के बीच के वर्षों में भी व्रतबन्ध किया जा सकता है।

उक्त इन वर्षों की अवधि तक में यदि उपनयन नहीं किया जा सकेगा तो उस संस्कार हीन सन्तान की व्रात्य संज्ञा हो जाती है। संस्कार रहित होने से वे पतित कहे जाते हैं।

वेद शास्त्र के अध्ययन की अभिलाषा से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वर्ण के बालकों का क्रमशः ५वें ८वें और ९वें वर्ष में उपनयन संस्कार कर ही देना चाहिए ॥ १४ ॥

राशेःषट्त्र्याद्यखस्थो गुरुरिह शुभदः पूजया स्यात्तथापि
प्रान्तोऽम्बुस्थोऽष्टमो नो यदि निजगृहगस्तुङ्गगोऽत्रापि शस्तः।
एवं कन्यर्क्षतः स्यादतितरगुणिनो लब्धये वातिकालेऽ-
निष्टोऽपीह द्विरर्च्योऽष्टमभवनगतः शोभनः स्यात्त्रिरर्च्यः ॥१५॥

मार्त्तण्डवल्लभा--अथात्र गुरुबलाबलं वृत्तेकेनाह—**राशेरिति**। राशेः जन्मराशेः सकाशात् षट्त्र्याद्यखस्थो गुरुः इहास्मिन् व्रतबन्धे पूजया शुभदः स्यात्। षट् षष्ठं त्रि तृतीयं आद्यं जन्मराशिः खं दशमं एषु तिष्ठतीति तथा तयापि पूजयापि प्रान्त्यो द्वादशः अम्बु चतुर्थः अष्टमः न शुभदः स्यात् पूजयापि अशुभदः स्यादित्यर्थः। स यदि निजगृहगः धनुर्मीनग इत्यर्थः। तुंगगो वा यदि भवति, तदा इह दुष्टस्थानेषु वर्तमानः शस्तः स्यात् अस्य तुङ्गं कर्कटः। तदुक्तं बृहज्जातके "अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादि तुङ्गाः। दश १० शिखि ३ मनुयुक् २८ तिथी १५ न्द्रियांशै ५ स्त्रिनवक २७ विंशतिभि २० श्च तेऽस्तनीचाः" इति। अर्थादुक्तस्थानेभ्योऽन्यस्थानगः शुभदः स्यात्। एवं कन्यर्क्षतःस्यात् कन्यर्क्षतः कन्याराशेः सकाशात् एवमुक्तवत् शुभाशुभः स्यात्। अतितरगुणिनो वरस्य लब्धये अतिकाले वा अनिष्टोऽपि गुरुर्द्वादशचतुर्थाष्टमः द्विरर्च्यः षट्त्र्याद्यस्वस्थस्य शास्त्रे या पूजोक्ता तत्प्रमाणतो द्विरर्च्यः तेन द्विगुणार्चनेन शोभनः स्यात्। एवं सामान्येनोक्त्वा अष्टमस्य विशेषमाह—अष्टमभवनगतः त्रिरर्च्यः तेन शोभनः स्यात्। अत्र बृहस्पतिः—"झषचापकुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचरः। अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयनादिषु॥ व्रते जन्मत्रिखारिस्थो जीवोऽपीष्टोऽर्चनात्सकृत्। शुभोऽतिकाले तुर्योऽष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात्"॥ उद्वाहतत्त्वे "कन्यर्क्षाद् द्विसुतद्युनायनवमे श्रेष्ठो गुरुश्चान्यथा, पूज्योऽष्टान्त्यसुखेतिकाल इह तु प्राज्ञैर्द्विरर्च्यः शुभः। रिःफाम्बत्रिधनाभ्रगैर्यदि ग्रहैः श्रेष्ठोऽपि विद्धो ह्यसन्वामाद्विद्ध इहेष्टदो न निधने वेधास्त्रिरर्च्यः शुभः" इति॥ १५॥

वागीश्वरी—उपनयन के योग्य बालक की और विवाह योग्य कन्या की जन्मराशियों से ६।३।१।१० स्थानों में यदि बृहस्पति हो तो उपनयन और कन्या के विवाह में गुरु (बृहस्पति) की पूजा से शुद्धि अर्थात् शुभता प्राप्त होती है। (उपनयन के पूर्व में पूजा होनी चाहिए) यदि गोचर से गुरु ४।८।१२ हों तो पूजा करने पर भी गुरु में, उन वटु कन्याओं के लिये शुभता नहीं आती। तथा उक्त निन्दित स्थान ४।८।१२ में होते हुए यदि बृहस्पति अपनी राशियों धनु-मीन और उच्च कर्क राशि में गया हो तो बृहस्पति में उत्तम शुभ फल देने की शक्ति स्वाभाविक आजाने से पूजा आदि की आवश्यकता नहीं होती।

स्वभावतः बटु या कन्या की जन्म राशियों से बृहस्पति यदि २।७।११।९।५ में हो तो सहर्ष उस वर्ष में उपनयन-विवाह उन वटु-कन्याओं का किया ही जाना चाहिए।

कन्या की जन्मराशि से भी बृहस्पति का बलाबल विचारना चाहिए। कन्या की अवस्था से विवाह समय का अतिक्रमण हो रहा हो और सुयोग्य सुन्दर वर (पति) की उपलब्धि हो रही हो, बृहस्पति गोचर से नहीं बन रहा है तो द्विगुणित या त्रिगुणित गुरु की पूजा से सानन्द विवाह सम्बन्ध सम्पन्न करना चाहिए॥ १५॥

द्वीष्वायागाङ्कसंस्थो व्ययजलनिधनव्यभ्रगैश्चेन्न विद्धः
शस्तोऽनिष्टोऽपि वामं शुभ इह खचरैर्वेधितो नोऽष्टमस्थः।

शुक्ले माघादिपञ्चस्विनशुभदिवसे प्राग्दलेऽह्नो व्रतं स-
त्यक्त्वाऽनध्यायरिक्तातिथिमुनिमदनांश्चन्द्रभागं प्रदोषम् ॥ १६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ गुरोर्वामवेधमाह—**द्वीष्विति**। द्वीष्वायागाङ्कसंस्थो गुरुस्तदा शुभःस्यात्, तदा कदा यदि व्ययजलनिधनत्र्यभ्रगैः खचरैर्नो विद्धः स्यात्। द्विद्वितीयं इषु पञ्चमम् आय एकादशं अगाः सप्तमं अङ्कः नवमं एतत्संस्थो गुरुः व्ययं द्वादशं जलं चतुर्थं निधनमष्टमं तृतीयं अभ्रं दशमं एतत्संस्थैः खचरैः यदि नो विद्धो भवति तदा शुभः स्यात्। २। ५। ११। ७। ९। १२। ४। ८। ३। १०। वेधितश्चेद-शुभ इत्यर्थः। अनिष्टोऽपि व्ययजलनिधनत्र्यभ्रगोऽपि वामं विद्धः सन् द्वीष्वायागाङ्कसंस्थैः खचरैर्वेधितः सन्नित्यर्थः। इह अस्मिन्व्रतबन्धे विवाहे वा शुभः नोऽष्टमस्थः अष्टमस्थो वेधितो न शुभदः स्यादित्यर्थः। सोऽतिकालादौ त्रिगुणार्चनेनैव शुभः स्यात्। तथा च बृहस्पतिः—"रजस्वला यदा कन्या गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत्। अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात्"॥ अथोपनयने मासादिकमाह—शुक्ल इति। शुक्ले शुक्लपक्षे माघादिपञ्चमासेषु ज्येष्ठान्तेषु इनशुभदिवसे इनः सूर्यः शुभाः वर्धमानेन्दुगुरुबुधशुक्राः एषां दिवसे, तस्मिन् अह्नःप्राग्दले दिवसस्य पूर्वार्द्धे व्रतमुपनयनं सत् शुभं स्यात्। किं कृत्वा? अनध्यायरिक्तातिथिमुनिमदनान् चन्द्रभागं प्रदोषं त्यक्त्वा अनध्यायाः वक्ष्यमाणाः रिक्तातिथयश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः मुनिः सप्तमी मदनस्त्रयोदशी एतान् चन्द्रभागः कर्काशः पापांशादिकं पुरैव निषेधितम् प्रदोषोऽनध्यायप्रकरणोक्तः तं त्यक्त्वा ॥ १६ ॥

वागीश्वरी—ग्रहवेध रहित गुरु की स्थिति कब होती है? इसका विचार—

बटु, वर और विशेषतः कन्या की जन्म राशि से २, ५, ११, ७, ९ स्थान में बैठे हुए बृहस्पति पर १२, ४, ८, ३ और १० स्थान पर बैठे अन्य किसी ग्रह या ग्रहों से वेधित होता है और यदि वेध न हो तो भी अनिष्ट गुरु समीचीन शुभद कहा जाता है।

यदि १०।४।८।३।१० भावों में हो और २।५।११।७।९ भावस्थ ग्रहों से वेधित हो (जिसे वाम वेध कहते हैं) तो भी शुभफलद होता है। किन्तु गोचर से ८वें बृहस्पति की स्थिजि में वाम वेध से शुभफलदान सामर्थ्य नहीं ही होती है।

चान्द्र माघादि पाँच महीनों, माघ फाल्गुन चैत्र वैशाख और ज्येष्ठ मासों के रविवार सहित शुभग्रहों के वारों में दिन के पूर्वार्द्ध (अपराह्न में नहीं) में यज्ञोपवीत संस्कार शुभ कहा गया है। रिक्ता, सप्तमी, त्रयोदशी, चर नवांशों में तिथियों का त्याग और विशेषतः चन्द्रमा का नवांश—कर्क नवांश का त्याग आवश्यक शेष तिथि-नवांशों में व्रतबन्ध शुभ कहा गया है। ध्यान देने की आवश्यकता है कि यदि बृहस्पति १२वाँ और दूसरे स्थान में कोई ग्रह हो तो वामवेध, शुभ वेध होता है अर्थात् वामवेध शुभ कहा गया है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए।

कृष्ण, शुक्ल पक्ष की तिथियों में कृष्णपक्ष की पञ्चमी तक की ही तिथियाँ उत्तम हैं, (कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि) तदुपरि कृष्णपक्ष तिथियाँ चन्द्रदर्शन क्षीणगति से अग्राह्य कही गई हैं ॥ १६ ॥

शस्तो द्वीशाग्निशाक्रान्तकपितृरहितैः सर्वभैर्मौञ्जिबन्धो
वेदेशे ज्ञे बलाढ्ये गुरुसितकुजवित्संज्ञका वेदपाः स्युः ।
स्वर्क्षोच्चांशेषु सौम्याः श्रुतिपतिरपि चेत्केन्द्रकोणस्थिताःस्यु-
र्वर्णी वेदार्थवेत्ता पशुगृहधनवानत्र मन्देत्यसेवी ॥ १७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ व्रतबन्धे नक्षत्राण्याह—स्पष्टम् । उक्तं च "मघा च भरणी ज्येष्ठा विशाखा चैव कृत्तिका । नक्षत्रपञ्चकं प्राज्ञैर्न ग्राह्यं व्रतबन्धने" ॥ वेदेशे वेदपती ज्ञे बुधे बलाढ्ये सति स्थानादिना बलसमृद्धे सति ते के वेदेशा इत्यपेक्षायामाह—गुरुसितकुजवित्संज्ञकाः क्रमात् वेदपाः वेदाधिपतयः स्युः । गुरुः ऋग्वेदस्य शुक्रो यजुर्वेदस्य कुजः सामवेदस्य वित् बुधोऽथर्वणवेदस्य पतिरित्यर्थः । लग्नगोचरबलमाह—स्वर्क्षोच्चांशेषु सौम्या इति । सौम्याः स्वोच्चस्वभागांशे वर्तमानाः श्रुतिपतिरपि वेदपतिरपि स्वोच्चस्वभांशे वर्तमानश्चेद्यदि केन्द्रकोणे स्थिताः स्युस्तदा वर्णी ब्रह्मचारी वेदार्थवेत्ता स्यात् । न केवलं वेदार्थवेत्ता स्यात्, अपितु पशुगृहधनवान् स्यात् । अत्र केन्द्रकोणे शनौ मन्दे सति अन्त्यसेवी अन्त्यजसेवकः स्यात् । तस्मात्केन्द्रकोणे शनिर्न भवितव्यः । उक्तं च संग्रहे—"केन्द्रस्थितैरिनाद्यैर्नृपसवी विट्क्रियः श्ववृत्तिश्च । वेदाभ्यासी यज्वा क्रतुकर्ता हीनसेवको भवति" इति ॥ १७ ॥

वागीश्वरी—वर्णी का अर्थ यहाँ पर ब्रह्मचारी अर्थात् जिसका व्रतबन्ध (उपनयन) किया जा रहा है और जिसे बटु भी कहा जाता है वह सुयोग्य वेदार्थवेत्ता होगा ? कब ?

विशाखा, कृतिका, ज्येष्ठा, भरणी और मघा इन पाँचों नक्षत्रों को त्याग कर शेष नक्षत्रों में व्रतबन्ध संस्कार शुभ कहा गया है ।

वेदों के अधिपति ग्रह--ऋग्वेद का स्वामी बृहस्पति, यजुर्वेद का शुक्र, सामवेद का मंगल और अथर्ववेद का स्वामी बुध ग्रह होता है । उपनयन मुहूर्त्त में, शुभ ग्रह और अपने वेद के स्वामी ग्रह अपनी उच्चराशिगत में एवं अपने नवांशादि में होते हुए व्रतबन्ध लग्न से १।४।७।१० या ९।५ स्थानों में हों तो ब्रह्मचारी बटु अपने दीर्घ जीवन तक वेद वेदांग शास्त्रज्ञ पशु और भूमि, गृह (घर) आदि सम्पत्ति, धन धान्य से समृद्ध रहता है ।

केन्द्र कोणस्थ शनि ग्रह की स्थिति से उपनेता बटु नीच संसर्ग या नीच सेवक होता है । उपनयन लग्न से शनि केन्द्र कोण में न रहे ध्यान देना चाहिए ॥ १७ ॥

चन्द्रक्रूरा विलग्ने शशिसिततनुपाः षष्ठगेहे सितोऽन्त्ये
सर्वे रन्ध्रे बटुघ्नाः क्व च तनुग इनः श्रेष्ठ उच्चेन्दुरेके ।
विद्यां मौञ्ज्युक्तकाले स्थिरचरहरिजन्युत्तरब्राह्महीने
मौञ्ज्या ऊर्ध्वं गणेशं गिरमपि विधिवत्पूजयित्वारभेत ॥ १८ ॥

मार्तण्डवल्लभा-अथ लग्नभङ्गानाह । चन्द्र इति । चन्द्रः क्रूराः क्रूरग्रहाः विलग्ने तनौ शशिसिततनुपाः षष्ठगेहे शशी चन्द्रः सितः शुक्रः तनुपो लग्नपः षष्ठगेहे सितः

शुक्रः अन्त्ये द्वादशस्थाने शेषं सुगमम्। सर्वे रन्ध्रे अष्टमस्थाने एके प्रत्येकं बटुघ्नाः बटुमारका भवन्ति। किंच क्वचित् अन्यलग्नाभावे तनुगः इनः रविः श्रेष्ठः! उक्तं च मौञ्जीपटले—"शुभदो बलवान् भानुर्लग्नगो दशमस्तथा। सर्वशाखाधिपो यस्मात्सर्वेषां व्रतबन्धने॥ सर्वशाखाधिपो भानुः केचिदूचुर्महर्षयः। तस्माद्गत्यन्तराभावे लग्नस्थोऽर्कः प्रशस्यते"॥ उच्चेन्दुरेक इति। एके मुनयः उच्चेन्दुः उच्चस्थश्चन्द्रः तनुगश्च श्रेष्ठ इति वदन्ति तद्वाक्यं "चन्द्रोदयेऽभिशस्तः स्यात्क्षयरोगी सितेतरे॥ सिते पक्षे भवेद्यज्वा स्वभे तुङ्गे विशेषतः" इति। अस्यार्थः—सितेतरे कृष्णपक्षे चन्द्रोदये चन्द्रयुक्तलग्ने सति व्रती अभिशस्तः स्यात् क्षयरोगी च स्यात्, अभिशस्तो नाम मिथ्याभिशस्तः मिथ्याभिशंसी अनेनेदं पातकं कृतमिति यल्लोका मिथ्या वदन्ति सोऽभिशस्तः क्षयरोगी स्यादिति कृष्णपक्षे लग्नस्थचन्द्रफलमुक्तम्। सितपक्षे भवेद्यज्वेति वाक्यं स्पष्टम्। अयं श्लोकः पुनःसंस्कारविषय इव भाति। यतः कृष्णपक्षे व्रतबन्धे चन्द्रस्य फलमुक्तम्, तस्य दिवा असंभवात्। पुनः संस्कारार्हस्य तु कर्मलोपभयाद्रात्रावपि संस्कारो विहितो नान्यस्य। प्रथमव्रतबन्धस्तु सर्वैर्ग्रन्थकारैर्दिवैव पूर्वाह्णे विहितो न रात्रौ। अतः कारणादिदं वचनं पुनः संस्कारविषयं प्रतिभाति। पुनःसंस्कारनिमित्तानि रासभारोहणादीनि धर्मशास्त्रप्रसिद्धानि। तादृशं वाक्यं रत्नमालायाम्—"त्रिषट्खगोऽर्कस्त्रिधनास्तकर्मगश्चन्द्रस्त्रिषष्ठाः शनिराहुभौमाः। सर्वे च लाभे द्वित्रिकोणकेन्द्रगाः शुभाशुभाः स्युर्व्रतबन्धकाले" इति। अत्र तृतीयस्य षष्ठस्य सूर्यस्य राशिगतलग्ने संभवः। नारदेन तु लग्नस्थचन्द्रो निन्दित एव, तद्वाक्यमेवं—"स्वोच्चसंस्थोऽपि शीतांशुर्व्रतिनो यदि लग्नगः। तं करोति शिशुं निःस्वं सततं क्षयरोगिणम्" इति। कन्यालग्नबलं पूर्ववत्। अथ विद्यारम्भं वृत्तार्द्धेनाह—विद्यां मौञ्ज्युक्तकाले इति। मौज्या ऊर्ध्वं मौञ्ज्युक्तकाले विद्या प्रारभ्यते मौञ्ज्यर्थमुक्तः मौञ्ज्युक्तः स चासौ कालश्च तस्मिन्विद्यां वेदमारभेत्। मौञ्ज्या ऊर्ध्वमित्यनेन मौञ्ज्याः प्रागनधिकारः सूचितः। किं कृत्वा गणेशं गिरमपि सरस्वतीमपि विधिवद्विध्युक्तमार्गेण पूजयित्वा कथंभूते मौञ्ज्युक्तकाले स्थिरचरहरिजत्र्युत्तरब्राह्महीने स्थिरचरहरिजं स्थिरलग्नं तिसृणामुत्तराणां समाहारस्त्र्युत्तरं ब्राह्मं रोहिणी एभिर्हीने रहिते मौञ्ज्यर्थमेतानि गृहीतानि विद्यारम्भे त्वग्राह्याणीत्यर्थः। "जाड्यं स्थिरे द्व्यङ्गलग्ने सुविद्याप्तिश्चरे भ्रमः" इति श्रवणात्॥ १८॥

वागीश्वरी—चन्द्र और पाप ग्रह रहित लग्न, चन्द्र, शुक्र, या लग्नेश व्रतबन्ध लग्न से छठे, शुक्र १२वाँ और अष्टम में किसी भी ग्रह की स्थिति से बालक के लिये मृत्युप्रद कहे गये हैं। अन्य लग्न की उपलब्धि के अभाव में, सूर्य या चन्द्रमा का उच्चराशिगत होना दोषनाशक होते हुए बाहुल्येन शुभफल दान सामर्थ्य हो जाती है।

उपनयन कर्म के पश्चात् गणेश विष्णु सरस्वती लक्ष्मी की पूजा होनी चाहिए। केवल द्विस्वभाव लग्न, मिथुन, कन्या, धनु, मीन लग्नों में, तीनों उत्तरा (उ. फा. उ. षा.

उ. भाद्र) और रोहिणी को छोड़ अन्य उपनयनोक्त नक्षत्रों में प्रथम गणेश और सरस्वती का विधि पूर्वक पूजन कर तब विद्या आरम्भ करनी चाहिए ॥ १८ ॥

केशान्तं चौलवत्स्यान्नृपमितशरदीत्याहुरार्या व्रतोक्ते
काले मौञ्जीविमोक्षं गुरुबलमनयोर्नावलोक्यं सुधीभिः ।
शूद्राणां मौञ्ज्यभावात्तदुदिततिथिभेऽनस्तभौमेज्यशुक्रे
व्यारे वारे लवे मास्युपयमविहिते छूरिकाबन्धमाहुः ॥ १९ ॥

इति मुहूर्तमार्तण्डे उपनयनसंस्कारप्रकरणम् ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ केशान्तं मौञ्जीविमोक्षं च वृत्तार्द्धेनाह । **केशान्तमिति** । तदुक्तं मनुना "केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः" इति । केशान्तं कर्म नृपमितशरदि षोडशे वर्षे चौलवत्स्यादित्यार्या आहुः । सर्वं चौलोक्तमत्र ग्राह्यमित्यर्थः । व्रतोक्ते काले मौञ्जीविमोक्षमाह । स्पष्टम् । अनयोः केशान्तमौञ्जीविमोक्षयोः गुरुबलं सुधीभिर्नावलोक्यम् । अथ शूद्राणां मौञ्ज्यभावाच्छुरिकाबन्धं वृत्तार्द्धेनाह—शूद्राणां मौञ्ज्यभावात्तदुदिततिथिभे मौञ्ज्युक्तनक्षत्रे अनस्तभौमेज्यशुक्रैः उदितैः भौमगुरुशुक्रैः व्यारे वारे आरो भौमः तद्रहितवारे लवे नवांशे यत्र कुत्रापि लग्ने भौमनवांशवर्जित इत्यर्थः । उपयमविहिते मासि विवाहोक्तमासे "विवाहोपयमौ समौ" इत्यमरः । आरो भौम इत्यर्थः । छूरिकाबन्ध कटिप्रदेशे च्छूरिकाबन्धनमाहुः । तथा च संग्रहे—"शूद्राणां राजपुत्राणां मौञ्ज्यभावेऽस्त्रबन्धनम् । मौञ्जीबन्धोक्ततिथ्यादौ कार्यं भौमदिनं विना ॥" नारदः "छूरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् ॥ विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे ॥ जीवशुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते ॥ मौञ्जीबन्धर्क्षतिथिषु कुजवर्जितवासरे ॥ तेषां नवांशके कर्तुरष्टमोदयवर्जिते । शुद्धेऽष्टमे विधौ लग्नषडष्टान्त्यविवर्जिते । धनत्रिकोणकेन्द्रस्थैः शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः ॥ छूरिकाबन्धनं कार्यमर्चयित्वा सुरान् पितॄन् ॥ अर्चयेच्छूरिकां सम्यग्देवतानां च सन्निधौ ॥ ततः सुलग्ने बध्नीयात्कक्ष्यां लक्षणसंयुताम् ॥ तस्यास्तु लक्षणं वक्ष्ये यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥ संमितं च्छूरिकायामं विस्तारेणैव ताडयेत् ॥ भाजितं गजसंख्यैश्च अङ्गुलान्परिकल्पयेत् । शेषं चैव फलं वक्ष्ये ध्वजाये धनवान् भवेत् । धूमाये मरणं सिंहे जयं श्वायेऽतिरोगिता ॥ धनलाभो वृषेऽत्यन्तं दुःखोभवति गर्दभे ॥ गजायेत्यन्तसंप्रीतिर्ध्वांक्षे वित्तविनाशनम्" इति । सर्वत्र त्याज्यप्रकरणोक्तं विलोक्यम् । अस्मिन्प्रकरणे कर्णवेधवृत्तं विना सर्वाणि स्रग्धरावृत्तानि ॥ १९ ॥

इति स्वोपज्ञमुहूर्तमार्तण्डटीकायां मार्तण्डवल्लभायां गर्भाधानादिसंस्कारप्रकरणम् ॥

वागीश्वरी--जटा जूट निकृन्तन तथा क्षत्रियों के लिए कमर में छूरि बन्धन के मुहूर्त—

जन्म से १६वें वर्ष में मुण्डन की तरह, व्रतबन्ध में कथित मुहूर्त्त की तरह केशान्त (जटा जूट कटवाना) मौञ्जी विसर्जन करना चाहिए । इस कर्म में गुरु शुद्धि की आवश्यकता

नहीं कही गई है। शूद्रों के लिए उपनयन का निषेध है। अत एव त्रैवर्णिकों के लिए उपनयन के लिए कथित तिथि वारादिकों में, मंगल-गुरु, और शुक्र ग्रह के उदय होने पर मंगलवार के साथ लग्न में मंगल ग्रह का नवांश छोड़कर अन्य वारों व अन्य ग्रहों के नवांशों में विवाह विहित मासों में उनके कमर में छुरी बांधना (छूरिकाबन्धन) शुभ कहा गया है ॥ १९ ॥

मुहूर्त्तमार्त्तण्ड ग्रन्थ के संस्कार प्रकरण की पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशी
कृत हिन्दी में वागीश्वरी व्याख्या सुसम्पन्न।

अथ विवाहप्रकरणम्

शुद्धां गोत्रकुलादिभिर्गुणयुतां कान्तां वरश्चोद्वहेद्
वर्णो वश्यभयोनिखेचरगणाः कूटं च नाडी क्रमात्।
वर्णाद्याः बलिनो यथोत्तरमहीन्दूर्ध्वं गुणैक्यं शुभं
वर्णा विप्रमुखा झषादिह वरो वर्णोत्तमः स्याच्छुभः ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ विवाहप्रकरणं विवक्षुस्तावत् घटितगुणविचारं द्वादशभिर्वृत्तैराह। अतः परं अत्रग्रन्थे सर्वाणि शार्दूलविक्रीडितानि। वरः गोत्रकुलादिभिः शुद्धां कान्तां कमनीयां कन्यामुद्वहेत् चकाराद्वरोऽपि एवंविधो भाव्यः गोत्रशुद्धिर्ग्रन्थान्तराज्ज्ञातव्या। कुलमपि पञ्चसप्तनिर्णयमपि एतद्द्वयं ग्रन्थान्तराज्ज्ञात्वा अन्यदत्रावलोकयेत्। अथ यथोत्तरं बलिष्ठं घटितक्रममाह वर्ण इति। वर्णः १ वश्यं २ भं ३ योनिः ४ खेचरः ५ गणः ६ कूटं ७ नाडी ८ क्रमाद्यथोत्तरं बलिनः स्युः। अहीन्दूर्ध्वमष्टादशाधिकं गुणैक्यं यथोत्तरं स्याच्छुभम्। तत्रादौ वर्णलक्षणमाह—झषात् मीनात् सकाशात् विप्रमुखाः ब्राह्मणादयो वर्णाः पुनर्गणनया ज्ञेयाः तद्यथा मीनो ब्राह्मणः मेषः क्षत्रियः वृषो वैश्यः मिथुनः शूद्रः पुनः कर्की ब्राह्मणः सिंहः क्षत्रिय इत्यादि। इहास्मिन् राशिमेलने वर्णोत्तमो वरः शुभः स्यात् नान्यथेत्यर्थात्सिद्धम् ॥ १ ॥

वागीश्वरी--गोत्र, कुल, वंश परम्परा, अध्ययन आदि से सुयोग्य वर (लड़के) का गुण शील सम्पन्न कन्या के साथ विवाह सम्बन्ध होना चाहिए। गोत्र प्रवर आदि का विचार धर्मशास्त्र ग्रन्थों से समझा जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार वर कन्या की जन्मकुण्डली के साथ नक्षत्र राशियों में परस्पर मेलापक आवश्यक होता है। वर कन्या दोनों के जिन जन्म नक्षत्र राशि और ग्रहों का मेलापक बैठता हो तथा कन्या का सन्तान सौभाग्य ग्रह योग के साथ चि० वर (लड़के) का दीर्घायुष्य के साथ सुख समृद्धि योग में विवाह का मेलापक होता है उसके साथ विवाह सम्बन्ध करना या

कराना चाहिए। दोनों वर कन्या के नक्षत्र राशियों के मेलापक का माप दण्ड निम्न भांति होता है। दोनों के वर्णसाम्य में अष्ट विध गुणामेलापक में वर्ण विचार में गुण संख्या का माप १, वश्य में २, तारा में ३, योनि में ४, ग्रहमैत्र में ५, गणमैत्र में ६, राशि सम्बन्धों में ७ और नाडी मेलापक विचार में सर्वाधिक गुण संख्या ८ कही गई है। लीलावती अङ्कगणित ग्रन्थ के अनुसार $\frac{(८+१)\times ८}{२}$ = ३६ परमाधिक गुण संख्या होती है। दोनों की नक्षत्र और राशियों के मेलापक में $\frac{३६}{२}$ = १८ तक के गुण मेलापक में दोनों का विवाह सम्बन्ध शुभप्रद कहा गया है।

वर्ण विचार—१२ राशियों में कर्क वृश्चिक और मीन राशि के वर या कन्या का ब्राह्मण वर्ण कहा गया है। उक्त इन राशियों में क्रमशः एक एक राशि वृद्धि से–मेष, सिंह और धनु राशियों का क्षत्रिय वर्ण, एवं वृष, कन्या, मकर राशियों का वैश्य और मिथुन तुला और कुम्भ-राशियों का शूद्र वर्ण होता है ऐसा कहा गया है। ध्यान रहे यह वर्ण व्यवस्था राशियों के आधार से है, फलतः जन्मना ब्राह्मण वर्ण का वर ज्यौतिष से शूद्र एवं जन्मना शूद्र वर्ण के वर कन्या भी ज्यौतिष के अनुसार ब्राह्मण वर्ण के होते रहते हैं। वर और कन्या का परस्पर में यदि वर्ण साम्य हो ब्राह्मण-ब्राह्मण या शूद्र-शूद्र, इत्यादि तो ऐसी स्थिति में वर्ण की गुणमेलापक संख्या १ होती है ॥ १ ॥

नुर्भक्ष्या जलजा वशा विहरयो वश्या विकौर्प्या हरे-
रस्यालिर्न शुभो नुरब्जहरयो नेष्टाः स्युरन्यज्जनात् ।
भे गण्येऽङ्कहृते मिथस्त्र्यगशराः शेषं न सच्चाश्विभा-
दश्वेभाव्यहिभोगिनः श्ववृषभुङ्मेषाखुभुग्द्वयुन्दुराः ॥ २ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वृत्तार्द्धेन वश्यमाह—नुः नृराशेः मनुष्यराशेः जलजा जलचरा भक्ष्याः। तस्यैव विहरयः सर्वे वशाः विगतः हरिः सिंहो येभ्यस्ते विहरयः सिंहरहिताः सर्वे वश्या इत्यर्थः। हरेः सिंहस्य विकौर्प्या वश्याः कौर्प्यो वृश्चिकः विगतः कौर्प्यो येभ्यस्ते विकौर्प्याः सिंहस्य वृश्चिकरहिताः सर्वे राशयो वश्याः। अथानन्तरोक्तस्य हरेः अलिर्वृश्चिको न शुभः वैरीत्यर्थः। नुः मनुष्यराशेः अब्जहरयः नेष्टाः स्युः। अब्जाः जलजाः हरिः सिंहः एते नेष्टाः मेलनं न कर्तव्यमित्यर्थः। अन्यज्जनात् अन्यत् अस्य भक्ष्यादिकं जनाज्ज्ञेयम् । तद्यथा नुः पुरुषस्य गौर्वश्या भवति। अत्र परस्पर मित्रत्वं दृश्यते तस्मादनयोर्मेलनं शुभं स्यात्। इदमेव म्लेच्छजातीयवधूवरयोर्न शुभम्, म्लेच्छानां गौर्भक्ष्यम्। इत्येवं लोकप्रचारतो विचारणीयमित्यर्थः। राशिस्वरूपं बृहज्जातकवशादवगन्तव्यम्। बृहज्जातके "मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगदं सवीणं चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः॥ तौली ससस्यदहना प्लवगा च कन्या शेषाः स्वनामसदृशाः खचराश्च सर्वे" ॥ अथ भयोनी द्वावपि

वृत्तैकेनाह—भे गण्ये इति। मिथः परस्परं वधूवरयोर्भे नक्षत्रे वधूनक्षत्राद्वरनक्षत्रं गण्यं वरनक्षत्रात्कन्यानक्षत्रं गण्यम्। उभे अपि नवभिर्भाजिते कार्ये। शेषं त्र्यगशराः त्रिसप्तपंच भवति तदा न सत्स्यात्। अथ योनिमाह—अश्विभादिति। अश्विभात्सकाशाद्भानां नक्षत्राणां श्वादयो योनयो भवन्ति। अश्वो अश्विन्याः इभो भरण्याः अविर्मेषः कृत्तिकायाः अहिः सर्पो रोहिण्याः भोगी सर्पो मृगस्य श्वा श्वान आर्द्रायाः वृषमुन्दुरुं भुनक्तीति वृषभुग् मार्जारः पुनर्वसोः मेषः प्रसिद्धः पुष्यस्य आखुभुग् मार्जार आश्लेषायाः द्व्युन्दुरो द्वौ उन्दुरौ मघापूर्वाफाल्गुन्योः॥ २॥

वागीश्वरी—१—चतुष्पद राशियाँ—मेष, वृष, धनु का परार्ध १६ अंश से ३०° तक और मकर का पूर्वार्द्ध।

२—नर (मानव) राशियाँ–मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ और धनू राशि का पूर्वार्द्ध।

३—वनचर–केवल सिंह राशि।

४—जलचर राशियाँ–कर्क, मीन और मकर का उत्तरार्द्ध।

५—कीट राशियाँ–मात्र वृश्चिक राशि कीट संज्ञक राशि है।

नामों के सदृश राशियाँ जलचर वनचर भी हैं। वर कन्या के राशि मेलापक में जलचर राशियाँ नरराशि की भक्ष्य, सिंह राशि को छोड़कर सभी राशियाँ नर राशि के वश में, वृश्चिक राशि को छोड़कर शेष सभी १० राशियाँ शेर (सिंह) के वश में हैं। सिंह राशि की शत्रु राशि वृश्चिक, एवं नर राशियों की शत्रु राशि सिंह है तथा सभी जलचर राशियाँ नर राशि की शत्रु होती हैं। वर कन्या की राशियों में परस्पर शत्रुता न हो तो गुण मेलापक २ होता है अथवा शून्य इस प्रकार वश्य मेलापक का विचार करना चाहिए।

विचार—वर के नक्षत्र से कन्या नक्षत्र तक की संख्या में कन्या नक्षत्र से वर के नक्षत्र अंक संख्या में ९ का भाग देने से शेष १ से ९ तक की संख्याऐं तारा कही जाती हैं जिनके (ताराओं के) नाम–क्रमशः (१) जन्म, (२) सम्पत्, (३) विपत्, (४) क्षेम, (५) प्रत्यरि, (६) साधक, (७) वध, (८) मैत्र और (९) अधिमैत्र नाम से प्रसिद्ध हैं। तीसरी पाँचवीं और सातवीं तारा होने से गुणमेलापक ० अन्य, शेषों में गुणमेलापक ३ होता है। तथा १, १, में ३ गुण, १, २ शेष में १, ३ में १॥ गुण किन्तु ३, ३, या ५ में ० गुण मिलता है।

जन्मनक्षत्र से योनि विचार—

अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न वर या कन्या की योनि अश्व, भरणी में हाथी, कृतिका में मेष (बकरा), रोहिणी मृगशिर में सर्प, इत्यादि से योनि का विचार करना चाहिए॥ २॥

गौः काली पशुभुङ्महिष्यथ पशुद्विड् द्वौ मृगौ श्वा कपि-
द्वौ बभ्रू कपिसिंहवाजिहरिगोनागाः क्रमाद्योनयः।

सिंहेभं महिषाश्वमोतुखनकं श्वैणं च कीशाविगो-
व्याघ्रं बभ्रु फणीति भीरुवरयोः प्रेष्येशयोश्च त्यजेत् ॥ ३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—गौरुत्तराफाल्गुन्याः काली महिषी हस्तस्य पशुभुग् व्याघ्रश्चित्रायाः महिषी स्वात्याः पशुद्विड् व्याघ्रो विशाखायाः द्वौ मृगौ अनुराधाज्येष्ठयोः श्वा मूलस्य कपिर्वानरः पूर्वाषाढायाः द्वौ बभ्रू उत्तराषाढाभिजितोः बभ्रू नकुलौ कपिर्वानरः श्रवणस्य सिंहो धनिष्ठायाः वाजी अश्वः शततारकायाः हरिः सिंहः पूर्वाभाद्रपदायाः गौरुत्तराभाद्रपदायाः नागो हस्ती रेवत्याः। इति योनिमभिधाय योनिवैरमाह—सिंहश्च इभश्च सिंहेभं सिंहगजं महिषाश्वम् ओतुखनकं मार्जारोन्दुरु श्वैणं श्वानमृगौ कीशावि वानरमेषं गोव्याघ्रं बभ्रुफणि नकुलसर्पं इतिवैरं भीरुवरयोः वधूवरयोः प्रेष्येशयोः प्रेष्यः सेवकः ईशःस्वामी एतयोश्च त्यजेद्वर्जयेत् ॥ ३ ॥

वागीश्वरी—प्रत्यक्ष देखे गये व्यवहार के अनुसार, योनियों में शत्रुता—सिंह और हाथी, महिष-घोड़ा, मार्जार-मूषक, मृग-कुत्ता, वानर-मेष, गौ-व्याघ्र, नेवला और सर्प में स्वभावतः पारस्परिक वैर होने से कन्या और वर की योनियों में परस्पर शत्रुता की योनि नहीं होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में गुण मेलापक शून्य होता है। वैर रहित साधारण योनि विचार में गुण मेलापक १, २, ३, ४ तक मिल जाता है।

वर कन्या के अतिरिक्त, दो व्यक्तियों, दो महिलाओं, पृथक् २ दो में एक व्यक्ति और एक महिला—आदि सांसारिक व्यवहार में भी इस योनि ज्ञान के अनुसार परस्पर में सहयोग या खटपट आदि का भी भविष्य जाना जा सकता है ॥ ३ ॥

भेशा मं शु बु चं र बु शु म गु शा शो गुः क्रियात्स्यू रवे-
र्मित्राणीज्यकुजेन्दवः शनिसितौ शत्रू विधोर्नो रिपुः।
मित्रे सूर्यबुधौ कुजस्य विदरिः सूर्येन्दुजीवा हिता
ज्ञस्यार्कौ स्फुजितौ हितौ विधुररिः सूरेः सितज्ञावरी ॥ ४ ॥
मित्राण्यर्ककुजेन्दवोऽथ भृगुजस्यारी रवीन्दू हितौ
मन्दज्ञौ च शनेः कुजेन्दुरवयो नेष्टाः सितज्ञौ हितौ।
पूर्वाद्रन्तिककोत्तरं नरि सुरेऽर्कान्त्यादिती ज्यानिले-
न्दुश्रुत्यश्विनि मित्रमन्यदसुरे दैत्यैर्नृणां स्यान्मृतिः ॥ ५ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ ग्रहवैरावैरं विवक्षुस्तावद्राशिनाथानाह—क्रियान्मेषाद्यानां राशीनामीशाः भेशाः एते क्रमेण स्युः। मं मंगलो मेषस्य शु शुक्रो वृषभस्येत्यादि स्पष्टम्। रवेः सूर्यस्य ईज्यकुजेन्दवो मित्राणि ईज्यो गुरुः कुजो भौमः इन्दुश्चन्द्रः एते रवेर्मित्राणि सुहृदः स्युः। शनिसितौ शत्रू शनिः प्रसिद्धः सितः शुक्रः एतौ शत्रू

वैरिणौ अर्थादन्ये उदासीनाः। विधोर्नो रिपुः विधोश्चन्द्रस्य रिपुर्नास्ति सूर्यबुधौ मित्रे अन्ये सर्वे उदासीनाः। कुजस्य भौमस्य वित् बुधः अरिः। सूर्येन्दुजीवाः हिताः मित्राणि अन्यौ समौ। ज्ञस्य बुधस्य अर्कास्फुजितौ रविशुक्रौ हितौ मित्रे विधुश्चन्द्रः अरिः वैरी अन्ये समाः। सूरेः गुरोः सितज्ञौ शुक्रबुधौ अरी वैरिणौ ॥ ४ ॥

अर्ककुजेन्दवः रविभौमचन्द्राः मित्राणि अन्ये समाः। भृगोः जातः भृगुजः तस्य भृगुजस्य शुक्रस्य रवीन्दू सूर्यचन्द्रौ शत्रू मन्दज्ञौ शनिबुधौ हितौ मित्रे अन्ये समाः। शनेः कुजेन्दुरवयः अरयः सितज्ञौ मित्रे अन्ये समाः। अथ गणमाह— पूर्वार्द्रान्तकेति। पूर्वास्तिस्रः आर्द्रा प्रसिद्धा अन्तको भरणी कः रोहिणी उत्तरास्तिस्रः एतन्नक्षत्रनवकं नरि भवति। नृगणमित्यर्थः। अर्को हस्तः अन्त्यं रेवती अदितिः पुनर्वसुः ईज्यः पुष्यः अनिलः स्वाती इन्दुर्मृगः श्रुतिः श्रवणः अश्विनी प्रसिद्धा मैत्रमनुराधा एतन्नक्षत्रनवकं सुरे देवे भवति। देवगणमित्यर्थः। अन्यत् कृत्तिका आश्लेषा मघा चित्रा विशाखा ज्येष्ठा मूलं धनिष्ठा शततारका एतन्नक्षत्रनवकमसुरे भवति। रक्षोगणमित्यर्थः। दैत्यैर्नृणां मृतिर्भवति ॥ ५ ॥

वागीश्वरी—मेषादि १२ राशियों के अधिपति ग्रहों के साथ सूर्यादि शनि पर्यन्त सात ग्रहों के परस्पर के स्वाभाविक मित्र, शत्रु और सम बताये जा रहे हैं—मेष राशि का मंगल, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, कन्या का बुध, तुला का शुक्र, वृश्चिक का मंगल, धनु का वृहस्पति, मकर का शनि, कुम्भ का शनि और मीन का अधिपति वृहस्पति ग्रह होता है। बारह राशियों में प्रबल राशि सिंह का स्वामी सूर्य, पीछे की कर्क राशि का स्वामी चन्द्रमा है। अर्थात् राशिवृत्त (क्रान्तिवृत्त) के सिंह से आगे मकर तक और कर्क से पीछे कुम्भ तक की एक एक राशि, सूर्य और चन्द्रमा ने मंगल' बुध, वृहस्पति और शुक्र को दी हैं। जैसे सिंह का सूर्य, कर्क का चन्द्रमा। सिंह आगे कन्या कर्क के पीछे मिथुन इस प्रकार मिथुन और कन्या राशियों का स्वामी बुध, वृष तुला का शुक्र, मेष वृश्चिक का मंगल, धनु मीन का गुरु और कुम्भ मकर का स्वामी शनि होते हैं।

सातों ग्रहों में, परस्पर में कौन ग्रह किसका मित्र और कौन ग्रह किस ग्रह का शत्रु है, बताया जा रहा है। सूर्य ग्रह के, वृ० मं० और चन्द्रमा मित्र, शनि-शुक्र शत्रु और बुध सम है। चन्द्रमा–सूर्य बुध मित्र और मंगल गुरु शुक्र और शनि सम, शत्रु कोई नहीं है। मंगल के–बुध शत्रु, सू० चं० वृ० मित्र और शुक्र शनि सम हैं। बुध के–सूर्य शुक्र मित्र, चन्द्र शत्रु, मंगल वृ० और शनि सम हैं। वृहस्पति के–शु० बु० शत्रु, सू० मं० च० मित्र और शनि सम है। शुक्र के–सू० चं० शत्रु, शनि बुध मित्र और मं० वृ० सम है। शनि के–मं० सू० च० शत्रु, शुक्र बुध मित्र और वृ० सम है। विवाह मेलापक विचार में वर कन्या के राशीश्वर ग्रहों में परस्पर मैत्री आदि होने से गुणमेलापक ५ हो जाता है। षडष्टक दोष में भी ग्रह राशीश्वर ग्रहों की परस्पर मैत्री से षडष्टक दोष परिहार से मित्रता परिणत होने से विवाह सम्बन्ध करने से विवाह शुभद हो जाता है ॥ ४ ॥

जन्म नक्षत्र से गण विचार किया जा रहा है—तीनों पूर्वा, आर्द्रा, भरणी, रोहिणी और तीनों उत्तरा, इस प्रकार इन ९ नक्षत्रों का गण नर या मनुष्य गण है। हस्त, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाती, मृगशिरा, श्रवण, अश्विनी और अनुराधा ये ९ नक्षत्र देव गण में आते हैं। कृतिका, आश्लेषा, मघा, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा और शतभिषा ये नक्षत्र राक्षस गण में होते हैं। वर कन्या दोनों का यदि एक ही गण हो तो वैवाहिक जोवन उत्तम सुखद होता है। राक्षस और मनुष्य गण के वर कन्याओं के विवाह से वर मरण, देवता और राक्षस गण के वर कन्या के विवाह से स्त्री पुरुष में परस्पर कलह होता है। नर और देव गण के वर कन्या का विवाह सामान्यतया अच्छा रहता है ॥ ५ ॥

स्याद्देवासुरयोः कलिर्नृसुरयोर्मध्यं स्वयोः सौहृदं
नैःस्व्यं द्विव्ययके षडष्टसु विपद्वैपुत्र्यमर्थाङ्कके।
शेषेऽर्था विविधा विभैकचरणे भिन्नर्क्षराश्यैककं
भिन्नाङ्घ्र्यैकभमेतयोर्गणखगौ नाडी नृदूरं न च ॥ ६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—देवासुरयोर्देवदैत्ययोः कलिः स्यात्। नृसुरयोर्नृदेवयोर्मध्यं स्यात्। स्वयोर्मेलने सौहृद स्यात्। अथ कूटमाह—नैःस्व्यमिति। द्विव्ययके द्विर्द्वादशे नैःस्व्यं निःस्वस्य भावो नैःस्व्यं निर्धनत्वं स्यात्। षडष्टसु विपत् मरणं स्यात्। वैपुत्र्यमर्थाङ्कके अर्थाङ्कके पञ्चमे नवमे वैपुत्र्यमनपत्यत्वं स्यात्। शेषे उर्वरिते तृतीयैकादशे चतुर्थदशमे उभयसप्तमे एकर्क्षे विविधार्थाः धनपुत्रपश्वादयः स्युः। कथंभूते शेषे विभैकचरणे विगतं भैकचरण नक्षत्रैकचरणं यस्मात् तथा तस्मिन्नक्षत्रैकचरणे कूटे अनिष्टं फलं श्रूयते "एकराशौ शुभोद्वाह एकभांशे मृतिप्रदः" इति। एकरिक्षस्य चत्वारो भेदाः एकराशिर्भिन्नर्क्षमेकर्क्षं भिन्नराशिः एकराशिनक्षत्रभिन्नचरणम् एकराशिनक्षत्रचरणं चेति चत्वारो भेदाः तत्र एकराशिनक्षत्रचरणं निन्दितम्। विभैकचरण इति। अथ शुभकूटे यद्भिन्नर्क्षराश्यैककं राश्यैकत्वं यच्च भिन्नाङ्घ्र्यैकभमेतयोर्गणखगौ नाडीनृदूरं च न अत्र किमपि नावलोक्यम्, शुभमित्यर्थः। नृदूरं वक्ष्यमाणम्। भिन्नाङ्घ्र्यैकभमित्यत्र भेदद्वयमागतं भवति। एकर्क्षभिन्नराशिकम् अपरमेकराशिनक्षत्रभिन्नचरण तस्मात् एकराशिनक्षत्रचरणं त्यक्त्वा त्रिषु भेदेषु गणादिकं न चिन्तयेत् तत्र गणादिदोषे सत्यपि शुभं स्यादित्यर्थः। उक्तं च बृहस्पतिना "एकराशौ पृथग्धिष्ण्ये पृथग्राशौ तथैकभे। गणं नाडो नृदूरं च ग्रहवैरं न चिन्तयेत् ॥" कालनिर्णये "दम्पत्योरेकनक्षत्रे भिन्नपादे शुभावहम्। दम्पत्योरेकपादं तु वर्षान्ते मरणं ध्रुवम् ॥" इति ॥ ६ ॥

वागीश्वरी—छठे श्लोक के प्रथम पाद का विचार पूर्व में गण विचार में हो गया है अब कूट अर्थात् वर से कन्या, और कन्या से वर की राशियों की संख्या का शुभाशुभ फल बताया जा रहा है—

वर से कन्या की राशि यदि दूसरी है तो कन्या से वर की राशि १२वीं होगी। इसी प्रकार, परस्पर में राशि सम्बन्ध तीसरी तो ११वीं, चौथी तो १०वीं, ५वीं तो नवमी, ६ठी तो आठवीं और सातवीं तो सातवीं एक दूसरे से उक्त प्रकार राशि संख्याएँ होती हैं। दोनों का राशि सम्बन्ध २।१२ हो तो दरिद्रता, ६।८ हो तो मरण, ५।९ हो तो सन्तान अभाव होता है। शेष, ३।११; ४।१० और ७।७ अथवा दोनों की राशि एक ही हो तो दोनों का जीवन धन धान्य सौभाग्य सुखवर्द्धक होता है।

तथा वर कन्या दोनों का एक ही नक्षत्र किन्तु चरण भेद (भिन्न-भिन्न) हो, राशि एक हो किन्तु नक्षत्र भिन्न अर्थात् नक्षत्र दो हो, अथवा राशि एक, नक्षत्र चरणों में भेद हो, या नक्षत्र एक ही हो और राशि भिन्न-भिन्न हों तो ग्रह मेलापक, नाडी और गण आदि दोष नहीं होता, ग्रहमैत्री नाडी और नृदूर दोष (लड़की के नक्षत्र का पहिले के नक्षत्र यदि लड़के का है) नहीं होते हैं। अर्थात् उक्त स्थितियों में नक्षत्रमेलापक उत्तम हो जाता है ॥ ६ ॥

षट्काष्टे समभं च षष्ठसहितं चेच्छोभनं स्यात्समं
भं द्विर्द्वादशके द्वितीयसहितं श्रेष्ठं स्त्रिया युग्घरिः ।
मूलेन्द्रार्कभपाश्यजैकचरणादित्यार्यमे शाश्विभै-
र्याम्येन्द्वीज्यभमित्रभाग्यवसुभत्वाष्ट्राम्बुवहिर्बुध्न्यभैः ॥ ७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ ग्राह्यषट्काष्टकं द्विर्द्वादशं चाह। षट्काष्टे इति। समभं कर्कन्यादि चेद्यदि षष्ठसहितं स्यात्तदा शोभनं स्यात् ग्राह्यं स्यादित्यर्थः। तद्यथा। वृषः समभं तस्मात्सकाशात् षष्ठेन तुलाधारेण सहितं यदि भवति तदा ग्राह्यं स्यादित्यर्थः। तत्स्वामिनो मैत्र्यभावात् समभं अष्टमे न समं न ग्राह्यम्। एवमेव ग्राह्याग्राह्यं विलोकयेत्। अथ ग्राह्यं द्विर्द्वादशं चाह। द्विर्द्वादशके समभं द्वितीयसहितं यदा भवति तदा श्रेष्ठं शोभनं स्यात् विपरीतमसत्। अत्र सिंहे विशेषमाह—स्त्रिया युग्घरिरिति। विषमोऽपि सिंहः स्त्रिया कन्यया युग् युक्तः श्रेष्ठः। अथ नाडीमाह—मूलेति। अत्र श्लोके तृतीयान्तैस्त्रिभिः पदैः तिस्रो नाड्यः सूचिताः। मूलं प्रसिद्धम् इन्द्रो ज्येष्ठा अर्कभं हस्तः पाशी शततारका अजैकचरणं पूर्वाभाद्रपदा आदित्यं पुनर्वसुः अर्यमा उत्तराफाल्गुनी ईश आर्द्रा अश्विभमश्विनी एभिर्नव नक्षत्रैरेकनाडी भवति। याम्यं भरणी इन्दुर्मृगः इज्यभं पुष्यः मित्रमनुराधा भाग्यभं पूर्वाफाल्गुनी वसुभं धनिष्ठा त्वाष्ट्रं चित्रा अम्बु पूर्वाषाढा आहिर्बुध्न्यमुत्तराभाद्रपदा एभिर्नवनक्षत्रैरेकनाडी भवति ॥ ७ ॥

वागीश्वरी—अशुभ अर्थात् अग्राह्य भकूट परिहार विचार के साथ नाड़ी विचार बताया जा रहा है—समराशियों में, वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियों से छठी राशि क्रमशः तुला, धनु, कुम्भ, मेष, मिथुन और सिंह होती है। ये राशियाँ क्रमशः सम से विषम छठी, और विषम से आठवीं सम राशियों में षडष्टक दोष नहीं होता है,

क्योंकि दोनों का राशीश्वर एक ही ग्रह या मित्र ग्रह होने से षडष्टक दोष नहीं होने से यहाँ पर सामान्य शास्त्र से गुणमेलापक में गुण संख्या जो ० शून्य, वह न रहकर गुण संख्या ८ हो जाती है। तथा प्रत्येक सम राशि अपनी अग्रिम विषम राशि से, द्विर्द्वादश सम्बन्धी दोष युक्त सामान्य शास्त्र से है किन्तु विशेष विचार से वृष राशि का स्वामी शुक्र का मिथुन राशि स्वामी बुध से मित्रता एवं कर्क राशीश चन्द्रमा से सिंह राशीश सूर्य...इत्यादि ग्रह परस्पर में मित्र हो जाने से ऐसी स्थिति में द्विर्द्वादश सम्बन्धी गुणमेलापक शून्य नहीं कहा जावेगा यहाँ पर भी गुणमेलापक ८ हो जाना ही चाहिए। यतः इसी प्रकार विषम राशियाँ अपनी द्वितीय समराशियों के सम्बन्ध से शुभ नहीं हैं। यतः सिंह राशीश सूर्य कन्या राशीश बुध का मित्र ग्रह है।। ७।।

अन्यैर्नाड्य इहैकनाडिनवके स्यातां द्विभे चेन्मृति-
र्गोदादक्षिणतः क्वचिन्नृपमुखे पार्श्वैकनाडी हिता।
मैत्र्या द्विव्ययमर्थनन्दमपि सत् षट्काष्टकं वश्यतः
षड्भिः स्त्री नृगणा वरोऽस्रपगणः सत्कूटमैत्र्योस्तदा ।। ८ ।।

मार्तण्डवल्लभा—अन्यैरुर्वरितैर्नक्षत्रैरेकनाडी एवं तिस्रो नाड्यो भवन्ति। इह विवाहविषये यदा एकनाडीनवके द्विभे वधूवरयोर्भे नक्षत्रे चेत्स्यातां तदा मृतिर्मरणं स्यात्। अथ गौतम्यादिदक्षिणे देशे क्षत्रियादीनां च अन्यवध्वा अलाभे गतिमाह—गोदादक्षिणतः गोदा गौतमी तस्याः दक्षिणतः दक्षिणे देशे सर्ववर्णे नृपमुखे क्षत्रियादौ सर्वदेशस्थे क्वचित् अन्यकन्याया अलाभे सति पार्श्वैकनाडी हिता शुभा स्यान्न मध्यनाडी। उक्तं च रत्नकोशे—"अग्रनाडीव्यधे भर्ता मध्यनाडीव्यधे द्वयम्। पृष्ठनाडी-व्यधे कन्या म्रियते नात्र संशयः। समासन्ने व्यधे शीघ्रं दूरवेधे चिरेण तु। व्यधान्तरभ-मानेन वर्षे दुष्टं प्रजायते" इति। ब्राह्मणविषयम्। जठर निर्धनत्वं च गर्भे मरणमेव च। पृष्ठे दौर्भाग्यमाप्नोति तस्मात्तां परिवर्जयेत्" इति। ज्योतिःप्रकाशे "निधनं मध्यनाड्यां च दम्पत्योर्नैव पार्श्वयोः"। अथ व्यवस्था तत्रैवोक्ता—"करग्रहे पृष्ठनाड्यौ न निन्द्ये इति यद्वचः। तत्क्षत्रियादिविषयं गौतमीयाम्यतस्तथा" इति।। अथ पूर्वोक्तानां द्विर्द्वादशानां शुभत्वमाह—मैत्र्येति। मैत्र्या ग्रहमैत्र्या द्विव्ययं द्विर्द्वादशं अर्थनन्दं पंचम-नवमं सत् शुभं स्यात् वश्यादिषड्भिः षट्काष्टकं शुभं स्यात्। वश्यभयोनिखेचरगण-नाडीभिः षडष्टकं शुभं स्यादित्यर्थः। अथ यदा स्त्री नृगणा वरोऽस्रपगणो रक्षोगणः स्यात्तदा तन्मेलनं सत्कूटमैत्र्योः सत्योः शुभं स्यात्।। ८।।

अनन्तर नाडी दोष विचार किया जा रहा है—

वागीश्वरी—मूल, ज्येष्ठा, हस्त, शतभिषा, पूर्वभाद्र, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, आर्द्रा और अश्विनी—इन ९ नक्षत्रों में किसी भी एक में उत्पन्न वर या कन्या की आदि नाड़ी

कही गई है। भरणी, मृग, पुष्य, अनुराधा, पू० फा०, धनिष्ठा, चित्रा, पूर्वाषाढ़, उत्तरभाद्र इन ९ नक्षत्रों की मध्यानाडी होती है।

इसी प्रकार कृतिका रोहिणी, आश्लेषा, मघा, स्वाती, विशाखा, उत्तराषाढा श्रवण और रेवती इन ९ नक्षत्रों की नाडी अन्त्या कही गई है। वर और कन्या की यदि एक ही नाड़ी आदि-आदि, मध्या-मध्या या अन्त्या-अन्त्या हो तो विवाह सम्बन्ध अशुभ भविष्य सूचक (मृत्युप्रद किसी एक की) कहा गया है। वर कन्या की एक नाडी दोषप्रबल में भी मध्या नाडी दोनों की हो तो अत्यन्त अनिष्ट भविष्य की सूचक कही गई है। कुछ शास्त्रज्ञों के मत से नाडी दोष से (यदि क्षत्रियादि वर्णों के लिए कम) जन्मना ब्राह्मण वर्ग मुक्त नहीं हो सकता। "नाडोदोषस्तु विप्राणाम्" शेष वर कन्या की राशीश्वरों में मैत्री हो तो द्विर्द्वादश (२।१२) और नवपञ्चम (५।९) दोषों का परिहार हो जाता है, अर्थात् मित्रराशि के २।१२, ९।५ शुभ हो जाते हैं। वर्णादि गण मैत्र विचार यदि सर्व शुद्ध हो तो षडष्टक दोष का भी परिहार हो जाता है। मनुष्य गण की कन्या, राक्षस गण का वर होने पर भकूट शुद्धि, राशीश्वरों की परस्पर मैत्री होने से विवाह सम्बन्ध किया जाना चाहिए अशुभ भकूट ग्रह मैत्री का अभाव रहने पर नर और राक्षस गण के वर कन्या का विवाह सम्बन्ध अशुभ होता है।

(१) वर्ण, (२) वश्य, (३) तारा, (४) योनि, (५) ग्रहमैत्र, (६) गणमैत्र, (७) भकूट और (८) नाडी में गुण संख्या समझने की विधि का विस्तार से वर्णन किये जाते हुए भी प्रत्येक को स्पष्ट समझने के लिए नीचे चक्र भी दिये जा रहे हैं जो सर्वसाधारण के उपयोग में भी आ सकते हैं॥ ८॥

१ वर्णगुणबोधकचक्रम्—

१	वरस्य—				
	वर्ण	वि.	क्ष	वै	शू०
कन्यायाः—	वि.	१	०	०	०
	क्ष	१	१	०	०
	वै	१	१	१	०
	शू०	१	१	१	१

२ वश्यगुणबोधकचक्रम्—

२	वरस्य—					
	वश्यं	चतु०	नर	वन्य	जल	कीट
कन्याः—	चतु	२	१	०	१	१
	नर	१	२	०	०	१
	वन्य	०	०	२	१	०
	जल०	१	०	१	२	१
	कीट	१	१	०	१	२

३ तारागुणबोधकचक्रम्—

३ — वरस्य— / कन्यायाः—

ता.	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

४ योनिगुणबोधकचक्रम्—

४ — वरस्य— / कन्यायाः—

गो.	अ	ग.	मे	स.	श्वा	मा	मू.	गौ	म.	व्या	मृ	वा	न	सि
अ	४	२	३	२	२	३	३	३	१	१	३	२	२	१
ग	२	४	३	२	२	३	३	३	३	२	२	२	२	०
मे	३	३	४	२	२	३	१	३	३	१	३	०	३	१
स	२	२	२	४	२	२	१	१	२	२	२	२	०	२
श्वा	२	२	२	२	४	१	१	२	२	१	०	२	२	१
मा	२	२	३	२	१	४	०	२	२	१	२	२	२	२
मू०	२	२	२	१	१	०	४	२	२	२	२	२	२	१
गौ	३	२	३	१	२	२	२	४	३	०	३	२	३	१
म	१	३	३	२	२	२	२	३	४	१	२	२	२	३
व्या	१	२	१	२	१	१	२	०	१	४	२	१	२	२
मृ०	३	२	३	२	०	२	२	३	२	१	४	२	२	२
वा	२	३	०	२	२	२	२	२	२	१	२	४	२	३
न	२	२	३	०	२	२	२	३	२	२	२	२	४	२
सि	१	०	१	२	१	२	१	१	३	२	२	२	२	४

५ ग्रहगुणबोधकचक्रम्—

५ । वरस्य— (कन्यायाः—)

ग्रह	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०
सू०	५	५	५	४	५	०	०
चं०	५	५	४	१	४	॥	॥
मं०	५	४	५	॥	५	३	॥
बु०	४	१	॥	५	॥	५	४
बृ०	५	४	५	॥	५	॥	३
शु०	०	॥	३	५	॥	५	५
श०	०	॥	॥	४	३	५	५

६ ग्रहगुणबोधकचक्रम्—

६ । वरस्य— (कन्यायाः—)

गण	दे	नर	रा.
दे	६	५	१
नर	६	६	१
रा	०	०	६

७ भकुटगुणबोधकचक्रम्—

७ । ७ वरस्य— (कन्यायाः—)

भ.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
मे.	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
वृ.	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
मि.	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
क.	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सिं.	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
कं.	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
तु.	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृ.	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
ध.	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
म.	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
कुं.	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
मी.	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७

८ नाड़ीगुणबोधकचक्रम्—

८ । वरस्य— (कन्यायाः—)

नाड़ी	आ.	म.	अं.
आ.	०	८	८
म.	८	०	८
अं.	८	८	०

रक्षःस्त्री नृपुमान्यदावशमुखैः षड्भिर्युतं शोभनं
स्त्रीभान्ना निकटे नृदूरमशुभं खेटोडुमैत्र्योः शुभम् ।
द्व्यर्के ताम्रसुवर्णमष्टरिपुके गोयुग्ममर्थाङ्कके
रौप्यं कांस्यमथैकनाडियुजि गोस्वर्णादिदत्त्वोद्वहेत् ॥ ९ ॥

मार्त्तण्डवल्लभा—अथ यदा रक्षःस्त्री रक्षोगणा स्त्री नृपुमान् नृगणः पुरुषः स्यात् तदा वशमुखैः षड्भिः वश्यभयोनिखेचरकूटनाडीत्येतैः षड्भिर्युतं तन्मेलनं शुभं स्यात्। अथ नृदूरं सापवादमाह। स्त्रीभात्स्त्रीनक्षत्रात् ना इति नृनक्षत्रं यदि

निकटे समीपे भवति तदा नृदूरं स्यात्। कथंभूतं नृदूरम् अशुभम् अशुभफलदम्। इदं नृदूरं खेटोडुमैत्र्योः सत्योः शुभं स्यात् उडुमैत्री नक्षत्रमैत्री योनिमैत्रीतियावत्। अथ संकटे दुष्टकूटादौ दानमाह। द्व्यर्के इति। द्व्यर्के द्विर्द्वादशे ताम्रसुवर्णादि दत्त्वा उद्वहेत्। अष्टारिपुके षडष्टके गोयुग्मं मिथुनं दत्त्वा उद्वहेत् अर्थात्के पञ्चमनवमे रौप्यं कांस्यं च दत्त्वोद्वहेत्। अथ एकनाड्यां दानमाह। एकनाडीयुजि गोस्वर्णादिदत्त्वोद्वहेत् एकनाडीयोगे गोस्वर्णान्नवस्त्राणि बहूनि दत्त्वोद्वहेत्। राजमार्तण्डे "षडष्टके गोमिथुनं प्रदद्यात्कांस्यं सरौप्यं नवपञ्चमे च। नाड्यां तु धेन्वन्नसुवर्णवस्त्रं द्विर्द्वादशे ब्राह्मणतर्पणं च"॥ उद्वाहतत्त्वे "ताम्रं हेमधनव्यये रजतयुक्कांस्यं शराङ्के वृषं गो दद्याच्च षडष्टके द्विजभुजि स्वर्णं च नाडीयुतौ" इति ॥ ९ ॥

वागीश्वरी—राक्षस गण की कन्या और मनुष्य गण का वर (लड़का) हो और १-वश्य, २-तारा, ३-योनि, ४-ग्रहमैत्र, ५-गणमैत्र ये ६ गुणों का मेलापक शुभ होने पर विवाह शुभ होता है। अर्थात् १८ गुण या अधिक गुण मेलापक होने से विवाह सम्बन्ध ठीक होता है। नृदूर दोष—अर्थात् क्रम गणना से वर नक्षत्र से अन्तिम कन्या नक्षत्र २७ वाँ हो जाने से अर्थात् कन्या नक्षत्र से वर का नक्षत्र दूसरा होने से इसे नृदूर दोष कहा गया है। ऐसी स्थिति में वर कन्या दोनों की ग्रह मैत्री और योनि मैत्रीठीक हो रही है तो उक्त नृदूर दोष शुभ हो जाता है। परिहार न मिलने से नृदूर दोष में विवाह सम्बन्ध नहीं किया जा सकता।

वित्तानुसार दान करने से दोषों का परिहार—

द्विर्द्वादश (२।१२) दोष में, ताँबा और सुवर्ण (सोना) दान कराकर, षडष्टक दोष में, (सवत्सा पयस्विनी गाय) दो गोदान कराकर, नवपञ्चम दोष में रूप्यक (चाँदी) और काँसा का दान कराकर तथा यथाशक्ति सोना, अन्न, वस्त्र आदि का वर कन्या के हाथों दान कराकर तब विवाह संस्कार करना चाहिए ॥ ९ ॥

भूर्वर्णैक्यवरोत्तमेऽथ वशभक्ष्येऽर्द्धं द्वयं मित्रयोः
खं वैराशनके धरारिवशकेऽथो सद्भयोरग्नयः।
मिश्रे तच्छकलं त्वथातिसुहृदोर्वेदास्त्रयोर्मित्रयो-
रेकः स्याद्द्विषतः स्वभावगुणयोर्द्वौ खं महद्वैरिणोः ॥ १० ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ गुणविचारं त्रिभिर्वृत्तैराह—तत्रादौ वर्णगुणविचारमाह। वर्णैक्यवरोत्तमे भूरेको गुणो ज्ञेयः वर्णयोरैक्यं यस्मिन्घटिते तद्वर्णैक्यं वर उत्तमो यस्मिंस्तद्वरोत्तमं च उभयत्रापि एकैको गुणो ज्ञेयः अर्थाद्धीनवरे गुणाभावः। उक्तं च ज्योतिर्निबन्धे "एको गुणः समे वर्णे तथा वर्णोत्तमे वरे॥ हीनवर्णे गुणः शून्यं केऽप्याहुः सदृशे दलम्" इति। अथ वश्यगुणविचारमाह—वशभक्ष्ये अर्द्धमेकस्यार्द्धं गुणः। वशभक्ष्यं यथा मनुष्याणां जलजा वशा भक्ष्याश्च, तत्र अर्द्धगुणो ग्राह्यः। एतत्तु द्विजादौ ज्ञेयं द्विजातयस्तु कदाचिच्छ्राद्धे पाठीनजातीयमत्स्यभक्षका भवन्ति।

न सर्वेषाम् । तस्माद्वधूवरजातिं विचार्यं योजनीयम् । हीनजातौ शून्यं यतः खं वैराशनके इत्यस्मिन्नेव श्लोके उक्तत्वात् । एवमेव सिंहस्य सर्वे वश्याः भक्ष्याश्च भवन्ति । तत्र मनुष्याः वैरभक्ष्यं वृश्चिकस्तु वैरी अन्ये वशभक्ष्यम् । अथ मित्रयोः परस्परं सुहृदोः द्वयं गुणद्वयं ज्ञेयम् । तत्र विचारः । स्वजातौ मित्रत्वं प्रकटं मनुष्याणां मेषवृषाश्वमृगैः सह मित्रत्वं तत्र हीनजातीयानां पशवो वशभक्ष्यं तत्रार्द्धगुणः अन्यत्र द्वयम् । अथ अरिवशके धरा एको गुणः अरिवशकं यथा मनुष्याणां वृश्चिकः सिंहवृश्चिकयोर्नित्यं वैरम् वृश्चिकदष्टः सिंहो मरणमाप्नोतीति लोके प्रसिद्धम् तस्मादत्र गुणाभावः । प्रथमं वशभक्षणे अन्यज्जनादित्युक्तम् तस्मात्सुबुद्धिभिर्विचार्य वक्तव्यम् । ममात्र वश्यविचारणे बुद्धिरेवं स्फुरिता अत्र यद्द्विरुक्तं तद्बुधैः शोधनीयम् । ननु वश्यभक्षणे कौर्प्यो न वश्यो हरेरित्येवोक्तम् । त्वया कथमुक्तं सिंहस्य मनुष्या वैरिभक्ष्यमिति । सत्यम् । तच्छ्लोकोक्तलक्षण सर्वसामान्यमस्ति । अतएवोक्तं ग्रन्थकर्त्रा अन्यज्जनादिति । सिंहस्तु नरगजादिप्रतापिमारणेऽत्युत्सुकः अन्येषां मारणे उदासीन असदृशत्वात् । उक्तं च "वैरवश्ये गुणाभावो द्वयोः सख्ये गुणद्वयम् । वशवैरे गुणश्चैको वशभक्ष्ये गुणार्द्धकम्" इति । अथ तारागुणविचारमाह—सद्भयोः उभयतः सत्तारयोः सतोः अगनयः त्रयो गुणाः । एतदुक्तं भवति । भे गण्येऽङ्कहृते इत्यनेन प्रकारेण उभयतोऽपि यदि सत्तारे भवतस्तदा त्रयो गुणा इत्यर्थः । मिश्रे सति तच्छकलं तेषां त्रयाणां शकलं सार्द्धको गुण इत्यर्थः । अन्यथा गुणाभाव इत्यर्थात्सिद्धम् । उक्तं च "एकता लभ्यते तारा शुभा चैवाशुभान्यतः ॥ तदा सार्द्धो गुणश्चैकस्ताराशुद्धौ मिथस्त्रयः ॥ उभयोर्न शुभा तारा तदा शून्यं समादिशेत्" ॥ अथ योनिगुणविचारमाह । अतिसुहृदोर्वेदाश्चत्वारो गुणाः मित्रयोस्त्रयः द्विपतोर्वैरिणोरेकः स्वभावगुणयोर्द्वौ महद्वैरिणोः खं शून्यं गुणः स्यात् । एव पञ्चप्रकारेण योनिगुणाः । अस्य विवेकः अष्टाविंशतिनक्षत्राणाम् अश्वादयः सर्वाश्चतुर्दशयोनयः तत्र सिंहेभे महिषाश्वमित्यादि यदुक्तं तन्महद्वैरं तत्रापि महद्वैरे महिषाश्वं वानरमेषकम् एतद्द्वयमुदासीनं स्वभावगुण परस्परघाताभावात् । अथैकयोनिषु अतिमित्रत्वं ज्ञेयम् एकयोनिष्वपि गजयोः श्वानयोः मार्जारयोः व्याघ्रयोः सिंहयोः एकयोनित्वेऽपि न मित्रत्वं परस्परकलहकारणात् एतद्युग्मपञ्चकं स्वभावगुणम् एतद्युग्मपञ्चकं तु महद्वैरस्थं महिषाश्वं वानरमेषम् एतद्द्वयमित्येतद्युग्मसप्तकं स्वभावगुणम् । व्याघ्रस्तु सर्पोन्दुरुनकुलेषु उदासीनः सिंहोऽप्येवमेव उदासीनः तथा एतौ व्याघ्रसिंहौ अन्येषां वैरिणौ सर्पमार्जारयोर्वैरं श्वमेषयोः मैत्रं गोमहिष्योर्मैत्रमुन्दुरुसर्पयोर्वैरम् एवं शत्रुमित्रादिकम् उदासीनत्वं च विचार्य उक्तवद्गुणा ज्ञातव्याः । औदासीन्ये स्वभावगुणवत् गुणग्रहम् उदासीनानां गुणा यद्यपि नोक्तास्तथापि स्वभावगुणे महिषाश्वे मेषवानरे च औदासीन्यं दृश्यते तस्मादेतद्द्वयम् उदासीने गुणग्रहणं कर्तव्यमित्यर्थाज्ज्ञायते । उक्तं च "महावैरे च वैरे च स्वभावे च यथाक्रमम् ॥ मैत्रे चैवातिमैत्रे च खेन्दुद्वित्रिचतुर्गुणाः" इति ॥ १० ॥

वागीश्वरी—वर्ण, वश्य, तारा और योनि की गुण संख्या बताई जा रही है—
वर्ण गुण = १

वर-कन्या का वर्ण समान (ब्राह्मण + ब्राह्मण, क्षत्रिय+क्षत्रिय आदि) हो अथवा वर के वर्ण से कन्या का वर्ण निम्न हो, ब्राह्मण + क्षत्रिय, क्षत्रिय + वैश्य, वैश्य + शूद्र, या ब्राह्मण + क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में कोई एक होने से गुणमेलापक में वर्ण की गुण संख्या १ हो जाती है। यदि वर के वर्ण से कन्या का वर्ण ऊँचा (श्रेष्ठ) हो तो वर्ण का गुण ० शून्य हो जाता है।

वश्य गुण संख्या = २

वर कन्या की राशियों में परस्पर में वश्यता या भक्षता से गुण मेलापक = $\frac{1}{2}$, जैसे नर राशि और जलचर राशि। वर कन्या दोनों की राशियों में परस्पर यदि मित्रता है, या समान हैं मनुष्य + मनुष्य, जलचर + जलचर इत्यादि या नर+मृग''''हो तो गुण मेलापक संख्या २ हो जाती है। भक्ष्य और वैर में, नर+वन्य, चतुष्पद + वन्य'''' इत्यादि में गुण मेलापक ० शून्य होता है। वैर वश्य में गुण एक १ होता है। तारा—तारा के परस्पर में पूर्ण गुण ३, शुभ + अशुभ में $1\frac{1}{2}$ अथवा गुण ० शून्य होता है।

योनि की गुण संख्या ४। वर-कन्या की योनियों में परस्पर विशेष मित्रता से गुण संख्या ४, सामान्य मित्रता से गुण संख्या ३, योनियों में परस्पर शत्रुता से (सर्प-मूषक-मार्जार) में गुण १ एक, दोनों की योनियों में उदासीनता से गुण संख्या २, परस्पर महावैर होने से योनि का गुण मेलापक ० शून्य होता है॥ १०॥

एकेशोभयमित्रयोः शरमिता अर्द्धं समारातिके
चत्वारः सममित्रके रिपुहिते भूमिर्द्व्युदासे त्रयः।
ना देवो मनुजा वधूरिह रसास्तद्वैपरीत्ये शराः
षट् साम्येऽस्त्रपपूरुषः सुरवधूरत्रैकको‍ऽन्यत्र खम्॥ ११॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ खेचरगुणविचारमाह एकः ईशो यस्मिन् तदेकेशम् उभयत्र मित्रे यस्मिन् तदुभयमित्रम् एकेशं च उभयमित्रं च एकेशोभयमित्रे तयोः शरमिताः पञ्चगुणा ग्राह्याः उभयत्रापि पञ्च पञ्च ग्राह्या इत्यर्थः। अर्द्धं समारातिके समः उदासीनः अरातिः शत्रुः एवं यस्मिन् मेलने तत्समारातिकं तत्र अर्द्धमेकस्यार्द्धं गुणाः स्युः। रिपुहिते अरिसुहृदि भूमिः एकः द्व्युदासे त्रयः द्वौ उदासीनौ यस्मिन् तत्र त्रयो गुणाः अनुक्ते गुणाभावः। उक्तं च "यत्रैकाधिपतित्वे च मित्रत्वे गुण-पञ्चकम्। चत्वारः सममित्रे च द्वयोः साम्ये त्रयो गुणाः॥ मित्रवैरे गुणश्चैकः समवैरे गुणार्द्धकम्। परस्परं खेटवैरे गुणः शून्यं समादिशेत्॥" इति। अथ गुण विचारमाह—ना देव इति। यत्र नरो देवगणः वधूर्मनुजा मनुष्यगणा भवति। इह रसाः षट्गुणा ग्राह्याः तद्वैपरीत्ये तयोर्वैपरीत्यं तद्वैपरीत्यं तस्मिन् शरमिताः पञ्च-गुणा ग्राह्याः। एतदुक्तं भवति यत्र नरो मनुष्यगणः वधूर्देवगणा अत्र पञ्चगुणा ग्राह्या

इत्यर्थः । षट्साम्ये गणसाम्ये षड्गुणा ग्राह्याः । यत्र असुरपः पुरुषः दैत्यगणः पुरुषः सुरवधूर्देवगणा स्त्री भवति तत्रैकः एकगुणो ग्राह्यः अन्यत्र उक्तादन्यत्र खं शून्यं स्यात् ॥ ११ ॥

वागीश्वरी—ग्रह मेलापक और गण मेलापक विचार—

वर कन्या के राशीश्वर ग्रह एक हों अथवा दो हों तो दोनों में परस्पर मित्रता होने से गुण मेलापक ५ होता है। परस्पर में सम-शत्रु हों तो गुण ½ मिलता है। सम और मित्र में गुण ४, शत्रु मित्र में गुण १, दोनों परस्पर सम हों तो गुण ३ और दोनों परस्पर शत्रु होते हैं तो गुण मेलापक ० शून्य होता है।

देव मनुष्य और राक्षस गण विचार में गुण संख्या विचार--

वर—(लड़के) का देवगण, और कन्या (लड़की) का मनुष्यगण होने से गुणैक्य ६, इससे विपरीत अर्थात् वर का गण मनुष्य और लड़की का देवगण होने से गुण मेलापक ५ होता है। दोनों वर कन्या का एक ही गण, मनुष्य–मनुष्य, देव–देव और राक्षस–राक्षस हो तो गुण मेलापक ६ होता है। राक्षस गण का वर और देवगण की कन्या की गुण मेलापक संख्या १ होती है। मनुष्य–राक्षस में गुण संख्या शून्य ० होती है ॥ ११ ॥

दुष्कूटे यदि योनिमैत्रमबलादूरं तदाम्भोधयो
नो चेत्खं त्वनयोर्यदेकमिह भूर्भाङ्घ्र्यैक्यके खं गुणः ।
सत्कूटे वरदूरता भरिपुता षड्भिन्नराश्यैकभे
पञ्चान्यत्र सुकूटके च गिरयोऽथो नाडिभेदे गजाः ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमुहूर्तमार्तण्डे विवाहप्रकरणे घटितं समाप्तम् ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ कूटे गुणविचारमाह--दुष्कूटे द्विर्द्वादशादौ सति यदि योनिमैत्रमबलादूरं स्त्रीदूरं स्यात् तदाम्भोधयश्चत्वारो गुणा ग्राह्याः। नो चेद्यदि योनिमैत्रमबलादूरं न स्यात्तदा खं शून्यं गुणः स्यात्। अनयोर्योनिमैत्रस्त्रीदूरयोर्मध्ये यत्र एकं स्यात् इह भूरेको गुणः भाङ्घ्र्यैक्यके नक्षत्रैक्यचरणे खं शून्यं गुणो ग्राह्यः। अथ सत्कूटे सति यदि वरदूरता भरिपुता उभयोर्वैरं योनिवैरं च स्यात् तदा रसाः षड्गुणा ग्राह्याः। भिन्नराश्यैकभे पञ्च भिन्नराशिश्च एकभता च अत्र पञ्च गुणा ग्राह्याः। उर्वरिते सुकूटे गिरयः सप्त गुणा ग्राह्याः। अथ नाडीविचारमाह—अथो नाडीति। नाडिभेदे गजाः अष्टौ गुणा ग्राह्याः। अनुक्ते गुणाभावः॥

इति मुहूर्तमार्तण्डे घटितम् ॥ १२ ॥

वागीश्वरी —कूट और नाडी की गुण मेलापक संख्या विचार—

यदि वर कन्या की योनियों में मैत्री हो और स्त्रीदूर योग हो तो गुण मेलापक संख्या ४ होती है। इसके विपरीत में गुण मेलापक शून्य ० होगा। स्त्रीदूर या योनि

मैत्री, योनि मैत्री या स्त्री दूर होने पर गुण संख्या १ होती है। वर कन्या दोनों का नक्षत्र एक ही और चरण (पाद) भी एक हो तो गुण मेलापक संख्या भी शून्य ० होती है। शुभ भकूट, ७।७, ३।११, ४।१९ और १।१ में तृदूर और योनि वैर के होते हुए भी गुण मेलापक संख्या ६ होती है। वर कन्या की पृथक् पृथक् दो राशियों के बावजूद यदि नक्षत्र एक ही हो तो ५ गुण मिलते हैं। और यथोक्त शुभ कूट के गुण मेलापक संख्या ७ होती है। नाडी विचार में वर कन्या दोनों की आदि-मध्य, अन्त्य = मध्य… भिन्न नाडी होने पर गुण मेलापक ८ होते हैं। आदि आदि = ० मध्य मध्य = ०, और अन्त्य अन्त्य में गुण मेलापक ० शून्य होता है ॥ १२ ॥

वागीश्वरी व्याख्यान में विवाह में मेलापक विचार सम्पन्न।

स्त्रीणामष्टमवर्षतस्त्रिषु नृणां चीर्णव्रतानामयु-
क्ष्वब्देष्वत्र च राधमाघयुगयोर्मार्गे विवाहः शुभः।
ज्येष्ठं पूर्वजयोस्त्यजेद्धिमरुचिं ज्ञेज्योनखेटान्वितं
यन्मासादि जनुर्भवं प्रथमके गर्भे त्यजेन्नानुजे ॥ १३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ स्त्रीणां विवाहकालमाह—**स्त्रीणामष्टमवर्षतः** सकाशात् त्रिषु वर्षेषु विवाहः शुभः स्यात्। अष्टमनवमदशमेषु शुभः स्यादित्यर्थः। तथा च संवर्तः "अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या द्वादशे वृषली मता ॥ गौरीदानान्नाकलोके वैकुण्ठे रोहिणीं ददत्। कन्यादानाद्ब्रह्मलोके रौरवं तु रजस्वलाम् ॥" इति। रजस्वलेति वृषलीपर्यायः। तथा च कारिकायामुक्तम् "षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्षद्वयं यतः। सोमो भुङ्क्ते ततस्तद्वद्गन्धर्वश्च तथाऽनलः ॥" इति। अस्य वाक्यस्य सहायिनी श्रुतिरपि "सोमः प्रथमो विविदे" इत्युपक्रम्य "सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽददग्नये" इत्यन्ता। नन्वस्य विरोधो ब्रह्मपुराणे गौतमीमाहात्म्ये भानुतीर्थवर्णने विष्टभानुसंवादे दृश्यते। विष्टभानुरुवाच "चतुर्थाद्वत्सराद्ध्र्वं यावन्न दशमात्ययः। तावद्विवाहः कन्यायाः पित्रा कार्यः प्रयत्नतः ॥" इति। सत्यम्। अत्र पुराणवाक्यं शूद्रादिविषयं श्रौतस्मार्तं ब्राह्मणादिविषयमित्यविरोधः। सप्तमवर्षे विषमत्वान्नारदादिभिः स्त्रीविवाहे नाङ्गीकृतम्। तस्माच्छास्त्रतत्त्ववेदिना आचार्येण सर्ववर्णानामविरुद्धमेवोक्तम्—**स्त्रीणामष्टमवर्षतस्त्रिष्विति।** कथितकालादूर्ध्वं कदाचिद्वरालाभनिमित्तादौ समवर्षेषु द्वादशचतुर्दशषोडशेषु विवाहो ग्रन्थान्तरे उक्तः। कालनिर्णयदीपिकाविवरणे स्वयंवरार्थं कालद्वयमुक्तम्। जीवत्पितृकाया ऋतौ वर्षत्रयानन्तरं स्वयंवरकालः। अदातृकाया अपि ऋतौ वर्षत्रयानन्तरं स्वयंवरकालः। अदातृकाया इत्येतत् सर्ववर्णसाधारणम्। कन्याप्रदातारः कालनिर्णयदीपिकायामुक्ताः "पिता पितामहो भ्राता माता बन्धुर्यदा नहि। ऋतौ वर्षत्रयादूर्ध्वं कन्या कुर्यात्स्वयंवरम् ॥" इति। बौधायनोऽप्याह—"दर्शाणि त्रीण्यृतुमती कांक्षेत पितृशासनम् ॥ ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम्" इति। अथ पुंसां

विवाहकालमाह—नृणां चीर्णव्रतानां कृतविसर्गाणां अयुग्मेषु विषमेषु अब्देषु वर्षेषु विवाहः शुभः स्यात्। विशेषत उक्तवर्षेषु कर्तव्य इत्याह। अत्र राधमाघयुगयोः अत्र विषमवर्षेषु राधो वैशाखः माघः प्रसिद्धः अनयोर्युगे युगले राधयुगं वैशाखज्येष्ठौ माघयुगं माघफाल्गुनावित्यर्थः। मार्गे मार्गशीर्षे विवाहः शुभः स्यात्। एते पञ्च मासाः बहुसंमताः एषु ज्येष्ठे ज्येष्ठमासं पूर्वजयोः प्रथमजातयोः द्वयोस्त्यजेत्। अर्थादेकतरे ज्येष्ठे सति न त्यजेत्। दोषान्तरमाह—हिमरुचिं चन्द्रं ज्ञेज्योनखेटान्वितं बुधगुरुरहितान्यग्रहयुक्तं पापग्रहयुक्तं शूद्राणाम् अन्यतमयुक्तं त्यजेत् अनिष्टफलश्रवणात् "मासाद्यं जनिसंभवम्" इति त्याज्यप्रकरणोक्तं यत्तस्य विशेषनिर्णयमाह—यन्मासादिति स्पष्टार्थम्। नारदः "न जन्ममासे नक्षत्रे न जन्मदिवसेऽपि वा। आद्यगर्भे सुतस्यापि दुहितुर्वा करग्रहः" इति॥ १३॥

वागीश्वरी—कन्या की विवाह अवस्था विचार—

८वें वर्ष से १०वें वर्ष तक की अवस्था में कन्याओं का, और ब्रह्मचर्य व्रत की समाप्ति के पश्चात् समावर्त्तन संस्कार के अनन्तर (गुरुकुल में गुरु सान्निध्य में वेद शास्त्रादि का सम्यक् अध्ययन के पश्चात् समावर्त्तन संस्कार के अनन्तर गृहस्थ धर्म धारण करने की गुरु की आज्ञा लेकर) लड़कों (वर) का विषम वर्षों १७, १९, २१, २३, २५ (यथास्थिति अनुसार) में विवाह संस्कार करना चाहिए।

विवाह के शुभ मास—वैशाख, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन और मार्गशीर्ष मासों में विवाह संस्कार करना शुभावह है। यदि वर और कन्या दोनों अपने माता-पिता की ज्येष्ठ सन्तान हों तो उनका ज्येष्ठ मास में विवाह न करें यह (त्रिज्येष्ठ) शुभ नहीं होता।

विवाह लग्न में बुध और बृहस्पति ग्रह से युक्त चन्द्रमा शुभ और अन्य ग्रहों से युक्त चन्द्रमा-अशुभ कहा गया है। पाप ग्रह और शुक्र ग्रह युक्त चन्द्रमा अनुकूल नहीं होता है। त्याज्य प्रकरण में शुभ संस्कार में जन्ममासादि का त्याग केवल प्रथम सन्तान प्रथम गर्भ (से उत्पन्न वर और कन्या) के लिये कहा गया है।

यदि प्रथम गर्भ की सन्तान की हानि हुई हो तो द्वितीय गर्भज सन्तान को ज्येष्ठ गर्भज नहीं कहा जाता है। गर्भज में द्वितीय गर्भज वर कन्या के लिये जन्मासादि दोष नहीं होता है॥ १३॥

66549

मूलान्त्यार्कमघास्थिरेन्द्वनिलयुङ्मैत्रं विवाहे शुभं
पापत्यक्तमनिन्दुभुक्खलयुतं भोग्यं च विद्धं च भम्।
विश्वेन्द्वोर्यमसित्रयोर्द्विकभयोः पैत्र्यर्क्षहर्योर्मिथोऽ-
न्त्यार्यम्णोः पुनरस्त्रपोर्वरुणभस्वात्योरुभाहस्तयोः॥ १४॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ विवाहनक्षत्राणि सवेधान्याह—**मूलान्त्यार्केति**। मूलं प्रसिद्धम् अन्त्यं रेवती अर्को हस्तः मघा प्रसिद्धा स्थिराणि रोहिण्युत्तरात्रयम् इन्दुर्मृगः अनिलं स्वाती एभिः सहितं मैत्रमनुराधा विवाहे शुभं शुभफलदम्। अथ एतेषूक्तेषु

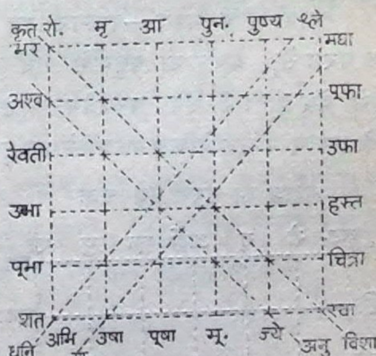
निन्द्यमाह—पापत्यक्तमसत् अनिन्दुभुक् चन्द्रभुक्तं न शुभम्। एतदुक्तं भवति पापग्रहत्यक्तं नक्षत्रं चन्द्रभुक्तिरहितं न शुभं स्यात्। खलयुक्तं पापग्रहयुक्तं भोग्यं विद्धं न शुभं स्यात्। अथ वेधमाह—विश्वेन्द्रोः उत्तरामृगयोः यममित्रयोः भरण्यनुराधयोः द्विकभयोः कस्य भे कभे द्रे च ते कभे च द्विकभे रोहिण्यभिजितौ तयोः पैत्र्यर्क्षहर्योः मघाश्रवणयोः मिथः परस्परम् अन्त्यार्यम्णः रेवत्युत्तराफाल्गुन्योः पुनरस्त्रपोः पुनर्वसुमूलयोः वरुणभस्वात्योः शततारकास्वात्योः उभाहस्तयोः उत्तराभाद्रपदाहस्तयोः मिथः परस्परं वेधः स्यादित्युत्तरश्लोकेनान्वयः॥ १४॥

वागीश्वरी—विवाह करने के योग्य नक्षत्रों के साथ उसमें वेध करने वाले नक्षत्रों का उल्लेख—मूल, रेवती, हस्त, मघा, स्थिर संज्ञक नक्षत्र (तीनों उत्तरा और रोहिणी) मृगशिरा, स्वाती और अनुराधा ये ११ ग्यारह नक्षत्र विवाह संस्कार के लिये उत्तम (श्रेष्ठ) कहे गये हैं। विवाह कर्म में उक्त नक्षत्रों में भी जो नक्षत्र समीप काल में किसी पापग्रह से भुक्त होकर यदि चन्द्र से भुक्त न हुआ है तो उस नक्षत्र को, जिस नक्षत्र पर पापग्रह का योग नहीं हुआ है किन्तु समीप काल में उसपर पाप ग्रह की स्थिति होने वाली है उसको और जिस विवाह के नक्षत्र पर किसी ग्रह का वेध हो तो ऐसे नक्षत्र सम्बन्धी दिन में विवाह संस्कार नहीं करना चाहिए।

नक्षत्रों पर ग्रह वेध विचार--

सूर्यादिक नव ग्रह कौन किस नक्षत्र में है इसका सम्यक् ज्ञान कर ग्रह वेध विचारना चाहिए। उत्तराषाढ़ा नक्षत्रस्थ ग्रह का मृगशीर्ष नक्षत्र पर और मृगशीर्षस्थ ग्रह का उत्तराषाढ़ा पर इसी प्रकार भरणी-अनुराधा, रोहिणी और अभिजित्, मघा और श्रवण, रेवती और उत्तराफा., पुनर्वसु और मूल, शतभिषा और स्वाती तथा उत्तराभा. और हस्त नक्षत्र पर स्थित ग्रहों का परस्पर वेध होता है।

ग्रह वेध विचार में पञ्चशलाका चक्र



पारस्कर गृह्यसूत्रानुसार—अश्विनी चित्रा श्रवण और धनिष्ठा भी, इस प्रकार ११+४=१५ नक्षत्र वेध रहित, तथा पाप ग्रह भोग रहित इन १५ नक्षत्रों में ही विवाह संस्कार करने की समीचीन शास्त्राज्ञा है॥ १४॥

वेधोऽयं करपीडने निगदितो नान्येषु तेषु स्मृतो
वेधः सप्तशलाकके शिवदिशः काशानिवाद्यैर्युते।
वेधोऽन्त्यादिमयोर्द्विकत्रिमितयोरङ्घ्र्योर्मिथः सद्ग्रहै-
र्विद्धे भे चरणं त्यजेत्खलखगैः सर्वे त्विहाङ्घ्रि क्वचित्॥ १५॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ कर्मविशेषेण वेधनिर्णयमाह—**वेधोऽयमिति**। अयं वेधः करपीडने विवाहे पूर्वं मुनिभिर्निगदितः। नान्येषु अन्येषु शुभकर्मसु अयं वेधो नोक्त इत्यर्थः। तेषु विवाहान्यकर्मसु सप्तशलाकके स्मृतः किंभूते सप्तशलाकके चक्रे शिवदिशः ईशान्याः सकाशात् कार्शानवाद्यैर्युते कृशानुर्देवता यस्येति कार्शानवं कृत्तिका सा आद्या येषां तानि तैर्युते ईशान्यादिप्रदक्षिणं कृत्तिकादिनक्षत्रयुक्त इत्यर्थः। विवाहादृते सर्वकर्मसु सप्तशलाकाचक्रे वेधोऽत्रलोकनीय इति। अथ पादवेधमाह—वेधोऽन्त्यादिमयोरिति। अन्त्यादिमयोः चतुर्थप्रथमयोः द्विकत्रिमितयोः द्वितीयतृतीययोः अङ्घ्र्योश्चरणयोः मिथः परस्परं वेधः स्यात्। अथास्य निर्णयमाह—सत्खगैः शुभग्रहैः भे नक्षत्रे विद्धे सति चरणं त्यजेत् खलखगैः पापग्रहैः विद्धे सति सर्वं नक्षत्रं त्यजेदित्यर्थः। इहास्मिन्पापविद्धे क्वचिदन्यमुहूर्तालाभे सति अङ्घ्रि चरणं विद्धं त्यजेदित्यर्थः। उक्तं च माण्डव्येन "धिष्ण्यं सौम्यग्रहैर्विद्धं पादमात्रं परित्यजेत्। क्रूरैस्तु सकलं त्याज्यमिति वेधविनिश्चय.॥" इति। वैद्यनाथः "वेधमाद्यन्तयोरङ्घ्र्योरन्यान्यद्वितृतीययोः। क्रूरैरपि त्यजेत्पादं केचिदूचुर्महर्षयः।" इति॥ १५॥

वागीश्वरी—सप्तशलाका वेध बताया जा रहा है—पूर्व श्लोक १४ में पञ्चशलाका वेध विचार केवल विवाह संस्कार में विचारा जाता है। इसी पञ्चशलाका की तरह विवाह से अन्यत्र सभी शुभ कार्यों में जिस वेध का विचार किया जाता है इसका नाम सप्तशलाका वेध चक्र कहा गया है। ईशान कोण से कृतिकादि नक्षत्रों को प्रदक्षिण क्रम से स्थापित करने से सप्तशलाका वेधचक्र बनता है जो चक्र देखने से स्वयं स्पष्ट हो जाता है।

नक्षत्रों में चरणवेध—परस्पर विद्ध नक्षत्रों में आवश्यकता वश, चतुर्थ चरण का प्रथम चरण से, प्रथम का चतुर्थ से एवं दूसरे का तीसरे चरण तीसरे चरण का द्वितीय पाद से वेध होता है इसे चरणवेध कहते हैं। नक्षत्रवेध के बाद आवश्यकता वश चरण वेध के अभाव में उन वेधित नक्षत्रों में भी शुभ कर्म किये जा सकते हैं यही तात्पर्य है।

नक्षत्र का चरण वेध चक्र



१	२	३	४
|	|	|	|
४	३	२	१

प्रथम चतुर्थ एवं द्वितीय तृतीय चरणों में एक ही रेखा होने से यह चरण वेध चक्र स्पष्ट है।

जैसे मृगशीर्षस्थ ग्रह का उत्तराषाढ़ा पर एवं उत्तराषाढ़ा का मृगशीर्ष पर ग्रहवेध है। इसी प्रकार मृगशीर्ष नक्षत्र के प्रथम पाद पर उत्तराषाढ़स्थ चतुर्थपादस्थ ग्रह का एवं

द्वितीय पादस्थ पर तृतीयस्थ ग्रह का चरण-वेध प्रत्यक्ष है। नक्षत्र वेध के साथ यदि चरण-वेध भी हो तो मेलापक ठीक नहीं होता ॥ १५ ॥

लग्नेशे भवगेऽथवा शशिनि सद्दृष्टे शुभे वाऽङ्गगे
होरायां च शुभस्य वा व्यधभयं नास्तीति पूर्वे जगुः।
भौमात्त्र्याकृतिषड्जिनाष्टनखभं हन्त्यग्रतो लत्तया
खेटोऽर्कोऽर्कमितं शशी मुनिमितं पूर्णो न सन्मालवे ॥ १६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वेधभङ्गमाह—**लग्नेश इति**। लग्नस्वामिनि भवगे एकादशगे सति वेधस्य दोषो नास्तीति एको भङ्गः। अथवा शशिनि सद्दृष्टे सति द्वितीयो भङ्गः वा इत्यथवा शुभे शुभग्रहे चन्द्रवर्जिते अङ्गे सति तृतीयो भङ्गः। शुभस्य होरायां चेति चतुर्थो भङ्गः। एषामन्यतमे सति व्यधो नास्तीति पूर्वे मुनयो जगुः आहुः। तथा च वसिष्ठः "लग्ने शुभे सौम्ययुतेक्षिते वा लग्नादिनाथो भवगस्तथा वा। कालाख्यहोरा च तथा शुभस्य भवेद्धि दोषस्य तथा विभङ्गः॥" इति। उद्वाहतत्त्वेऽपि 'सद्युग्दृक्तनुगे शुभे व्यधभयं नो वाऽऽयगे लग्नपे होरायां च शुभस्य वा शशिनि सद्दृष्टेऽपि चार्येरुडोः।" इति। अथ लत्तामाह—**भौमादिति**। भौमात्सकाशात् खेटो ग्रहो राह्वन्तः क्रमात्त्र्याकृत्यादिभं नक्षत्रमग्रतो लत्तया हन्ति। भौमस्तृतीयं बुधः आकृतिर्द्वाविंशतिमितं गुरुः षष्ठं शुक्रः जिनमितं चतुर्विंशं शनिरष्टमं राहुर्नखमितं विंशं लत्तया हन्ति। अर्कः सूर्यः अर्कमितं द्वादशं शशी पूर्णचन्द्रमाः मुनिमितं सप्तमम् अग्रतो लत्तया हन्ति। तद् हतं नक्षत्रं मालवे मालवदेशे न सत् न शुभं स्यात्। उक्तं च "लत्ता मालवके देशे पातं कौशलके तथा। एकार्गलं तु काश्मीरे वेधं सर्वत्र वर्जयेत्" ॥ १६ ॥

वागीश्वरी—वेध दोष के परिहार और लत्ता दोष बताया जा रहा है।

प्राचीन आचार्यों ने विवाह में ग्रहवेध जैसे प्रबल दोष के परिहार के लिये (१) विवाह लग्न स्वामी यदि ११वें हों, (२) चन्द्रमा पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो, (३) चन्द्रमा को छोड़ कर शेष शुभ ग्रहों में कोई भी शुभ ग्रह यदि लग्न में हो, (४) अथवा विवाह लग्न में किसी भी शुभ ग्रह की होरा हो तो उक्त स्थितियों में ग्रह वेध दोष नहीं होता है।

लत्ता दोष—ग्रह जिस नक्षत्र पर हैं वहाँ से आगे के और पीछे के नक्षत्रों पर लात देने से इसे लत्ता दोष (सार्थक) कहा गया है—

मंगल जिस नक्षत्र पर है वहाँ से अपने अग्रिम तीसरे नक्षत्र को, बुध २२वें को, बृहस्पति छठें, शुक्र २४वें, शनि ८वें, राहु २०वें, सूर्य १२वें और पूर्णचन्द्रमा ७वें नक्षत्र को लत्तित करते हैं। लत्ता दोष विशेषकर मालव देश में त्याज्य है, जैसे मार्तण्डवल्लभा में आचार्य ने "लत्ता मालवके देशे पातं कौशलके तथा" लत्ता दोष मालव देश में पात दोष कौशल देश में, एकार्गल दोष काश्मीर में ही त्याज्य हैं किन्तु वेध दोष भारत के समग्र देशों में त्याज्य है ॥ १६ ॥

षण्मासं ग्रहणोडुचन्द्रतनुगं विद्धर्क्षजन्मर्क्षके
त्याज्ये जन्मभलग्नके तनुगते सूर्यान्मनूडु त्यजेत् ।
दन्तद्व्यङ्कदृशोऽर्कतो युगगजास्तर्काः खबाणेन्दवो
नाडीः संक्रमणे त्यजेद्द्विविषदां प्रायो रवेर्दूषिताः ॥ १७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ दोषान्तराण्याह—षण्मासमिति । षण्मासं षण्मासपर्यन्तं ग्रहणोडु ग्रहणनक्षत्र चन्द्रतनुगं चन्द्रगतं लग्नगतं च त्याज्यम् । चन्द्रगतमिति यस्मिन् दिने चन्द्रमसा युक्तं भवति तच्चन्द्रगतं दिननक्षत्रमिति यावत् । तनुग यथा अश्विन्यां ग्रहणे जाते तत्त्र्यंशत्रयोदशभागान्तमेषलग्ने सति अश्विनी लग्नस्था स्यात् । एवं भरण्याद्यपि, ग्रहणोडु इत्यनेनैव अन्यान्यपि उडूनि दुष्टानि त्याज्यानि । विद्धर्क्षं विद्धनक्षत्रं जन्मनक्षत्रमेते उभे तनुगे त्याज्ये । भं च लग्नं च भलग्नं जन्मनि भलग्ने जन्मभलग्ने त एव जन्मभलग्नके जन्मराशिजन्मलग्ने तनुगे त्याज्ये । लग्नान्तर्गतनक्षत्रज्ञानाय स्वकल्पितसूत्रम् "नवघ्नं तनुवेदाप्तं सैकं स्यात्तारकं तनौ" अर्कनक्षत्रात्सूर्यनक्षत्रात् मनूडु चतुर्दशनक्षत्रं त्यजेत् । अथ सूर्यादीना राशिसंक्रमणे त्याज्यघटिका आह—त्याज्या इति । रविचन्द्रकुजसौम्यगुरुशुक्रमन्दानां संक्रमणे रदद्व्यङ्कदृङ्नाड्यस्त्याज्याः । तद्यथा रविसंक्रमणे रदनाड्यो द्वात्रिंशद्धटिका वर्ज्याः संक्रमणकालात् पूर्वतः षोडशघटिकाः परतः षोडशघटिकाः एवं द्वात्रिंशद्घटिकास्त्याज्या इत्यर्थः । तथा च । चन्द्रसंक्रमणे द्व नाड्यौ भौमसंक्रमणे नव घटिकाः बुधसंक्रमणे द्व घटिके त्याज्ये गुरोः संक्रमणे अङ्कग्रष्टौ ८४ चतुरशीतिघटिकाः शुक्रस्य षट्घटिकाः शनेः संक्रमणे खतिथयः १५० पञ्चाशदधिकशतं घटिकाः त्याज्या इत्यर्थः । अत्र बाहुल्येन सर्वापेक्षया रवेः संक्रमणनाड्यो बहुभिराचार्यैर्दूषिता इत्यर्थः ॥ १७ ॥

वागीश्वरी--सूर्य-चन्द्र ग्रहण जिन नक्षत्रों में लगे हैं उन नक्षत्रों को ६ मास तक शुभ कर्म में त्याग देना चाहिए। किसी भी विवाह लग्न में चन्द्रमा लग्न गत नहीं होना चाहिए। जिस नक्षत्र में ग्रहण लगा है उस नक्षत्र का त्याग या उस नक्षत्र के नवांश में शुभ कर्म को नहीं करना चाहिए। जैसे रोहिणी नक्षत्र में ग्रहणादि होने से वृष राशि के चन्द्र में शुभ कर्म किया जाना चाहिए किन्तु कृतिका के ३ पाद ०।१०° चन्द्रमा ०।२३° स्प. चं. तक रोहिणी के अंश होने से ६ महीने तक यह नक्षत्र शुभ कर्म में भी त्याज्य होगा। ग्रहणादि नक्षत्र के अंशों का त्याग तत्सम्बन्धी तत्तुल्य राशि के नवांश का समय त्याज्य कहा गया है।

पाप या शुभ ग्रहों से वेधित नक्षत्र और जन्म नक्षत्र में भी विवाहादि शुभ कर्म में त्याज्य हैं। सूर्यस्थित राशि नक्षत्र से १४वाँ नक्षत्र भी शुभ विवाह आदि कर्म में त्याज्य है।

सभी ग्रहों की संक्रान्तियों त्याज्य समय--

सूर्य की संक्रान्ति में ३२ घटी (अर्थात् संक्रान्ति काल से पूर्व की १६ और पर की १६ घटी), चन्द्रसंक्रान्ति काल की २ घटी, मंगल की ९ घटी, बुध की २ घटिका, गुरु की

८४ घटी, शनि की ७५ घटी पूर्व और ७५ घटिका पर की और शुक्र ग्रह की ६ घटिका विवाह समय में त्याज्य कही गई हैं। संक्रान्ति काल से पूर्वापर घटिकाओं का त्याग, प्रायः सूर्य संक्रमण के लिये विशेष कहा गया है ॥ १७ ॥

षट्षष्टिर्ऋतुसन्धितस्तिथिभयुक्सन्धौ द्विनाड्यौ ग्रहात्
तत्पादैर्दिवसांस्त्रिवेदषडिभान्प्रागर्द्धितान्सन्त्यजेत् ।
उत्पातेऽद्र्यहमुद्गमं च शिखिनोराकाष्टमीप्राग्दले
विट्प्रान्त्ये कृतरुद्रयोरबहुले कृष्णे निरेकेष्विह ॥ १८ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ संधिदोषमाह—**षडिति**। ऋतुसंधितः वसन्तादिऋतुप्रवृत्तेः षट्षष्टिः षड्भिरधिका षष्टिः ६६ घटीनां षट्षष्टिस्त्याज्येत्यर्थः। ऋतुप्रवृत्तिलक्षणं रत्नमालायाम् "मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् षडर्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः। ग्रीष्मश्च वर्षा च शरच्च तद्वद्धेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः ॥" इति। तिथिभयुक्सन्धौ तिथिनक्षत्रयोगानां सन्धौ द्विनाड्यौ पृथक् द्वे द्वे घटिके त्याज्ये। अथ पूर्वमुक्तं ग्रहजनिप्रान्तोद्भव सूतकमिति तत्र ग्रहणसूतकलक्षणमाह— ग्रहादिति। ग्रहात् ग्रहणतः सकाशात् उपरि तत्पादैस्तच्चरणैः ग्रहपादैः त्रिवेदषडिभान् ३।४।६।८ दिवसान् त्यजेत्। एतदुक्तं भवति "पादैकमात्रग्रहणे त्रीन् दिवसान् त्यजेत् अर्धग्रहणे चतुरो दिवसान् त्यजेत् त्रिपादग्रहणे षट्दिवसान् त्यजेत् सर्वग्रहणे अष्टदिवसान् त्यजेत्" प्राग्ग्रहणात् प्राक् प्रथमः अर्द्धितान् त्रिवेदादीन् दिवसान् त्यजेत् एतदुक्तं भवति। पादग्रहणे त्रयाणामर्द्धं तद्यथा पादग्रहणे ग्रहणात्पूर्वं सार्द्धैकदिवसं ९० नवतिघटिकास्त्याज्याः अर्द्धं ग्रहणे चतुर्णामर्द्धम् द्वौ दिवसौ पादत्रयग्रहणे षण्णामर्द्धं त्रीन् दिवसान् सर्वग्रहणे अष्टानामर्द्धं चतुरो दिवसान् ग्रहणात्पूर्वं त्यजेत् "उपरागो ग्रहो राहुग्रस्ते त्विन्दौ च पूष्णि च" इत्यमरः। शार्ङ्गीयविवाहपटले "सर्वग्रासे दिनान्यष्टौ शुभकार्येषु वर्जयेत्। त्रिभागोने षट्दिवसानर्द्धग्रासे चतुर्दिनम् ॥ चतुर्थांशे त्रिरात्रं तु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।" इति। अत्राप्यन्तराले तु पातो ज्ञेयः। तथा चार्ष्टिषेणः "ग्रहणात्त्रिदिनं पूर्वं परतो दिनसप्तकम्" इति सर्वग्रहणविषयम्। ज्योतिःप्रकाशेऽपि "खग्रासे सर्वपादोनं खण्डाध्यल्पे तु वासराः। गजाश्वेष्वब्धिरामाब्जे नेष्टाः स्युः प्राग्दले गृहाः ॥" इति। अथोत्पाते वर्ज्यकालमाह—उत्पातेऽद्र्यहमिति। उत्पाते भूकम्पनिर्घातमहोल्कानिपातादिके अद्र्यहमद्रिमितानामह्नां समाहारः अद्र्यहं सप्ताहमित्यर्थः। उत्पाते जाते सति सप्ताहं शुभकर्माणि त्यजेदित्यर्थः। दोषान्तरमाह—उद्गमं च शिखिनः। शिखिनः केतोः उद्गममुदयं त्यजेत्, यावत्केतूदयस्तावन्मङ्गलं न कुर्यादित्यर्थः। तथा चार्ष्टिषेणः "परं सप्ताहमुत्पाते त्यजेत्केतूदये शुभम्" इति। भद्राकालमाह—राकाष्टमीप्राग्दले विट्स्यात्। राका पौर्णिमा अष्टमी प्रसिद्धा अनयोस्तिथ्योः प्राग्दले पूर्वार्द्धे विट् विष्टिः स्यात्। कृतरुद्रयोः प्रान्त्ये कृत चतुर्थी रुद्र एकादशी अनयोः प्रान्त्ये विट् स्यात्। एतद्भद्राचतुष्टयमबहुले शुक्लपक्षे स्यात्। कृष्णे निरेकेष्विह उक्तेषु तिथिषु निरेकेष

एकरहितेषु कृष्णे कृष्णपक्षे विट् स्यात् । भद्रापवाद: शार्ङ्गीयविवाहपटले दूषितोऽत: कारणान्नोक्त: ॥ १८ ॥

वागीश्वरी--(१) शिशिर (२) वसन्त (३) ग्रीष्म (४) वर्षा (५) शरद और (६) हेमन्त, ये ६ ऋतुएँ, (मकरादि दो दो राशि में सूर्य रहने पर) होती हैं । ऋतु सन्धि से ६६ घटी काल त्याज्य कहा गया है । तिथि नक्षत्र और योग में प्रत्येक की सन्धि की दो दो घटी का समय शुभ कर्म में त्याज्य है । कथित काल जैसे ऋतु सन्धि ६६ घटी ÷ २ = ३३ घटी मकर संक्रान्ति समय से पूर्व और ३३ घटी बाद तक त्याज्य समझिये । इसी प्रकार सर्वत्र सूर्य चन्द्र ग्रहण में यदि ग्रहबिम्ब $\frac{१}{४}$ अर्थात् चतुर्थांश छाया सूर्य या चन्द्रग्रहण में ३ दिन, अर्द्धग्रहण में ४ दिन, त्रिपाद = $\frac{३}{४}$ ग्रहण में ६ दिन और समग्र ग्रहण में ४ दिनों (ग्रहण से पूर्व के दिन) में शुभ कर्म नहीं हो सकने से त्याज्य कहे गये हैं ।

भूमिकम्प (भूचाल), उल्कापात, वज्रपात, आंधी, अतिवृष्टि आदि के (दैवी प्रकोप के) दिनों में तथा केतूदय दिन में भी शुभ कार्य वर्जित कहे गये हैं ।

विट्(भद्रा) शुक्लपक्षीय पौर्णमासी और अष्टमी के पूर्वार्द्ध समय में, चतुर्थी और एकादशी के उत्तरार्द्ध समय में, एवम् कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और सप्तमी तिथियों के पूर्वार्द्ध में और तृतीया-दशमी के परार्ध अर्थात् उत्तरार्द्ध में भद्रा नामक करण की स्थिति होती है । तिथि के सम्पूर्ण मान के आधे समय तक तिथि आरम्भ से पूर्वार्द्ध और तिथि मान का आधा समय पूर्वार्द्ध से अन्त तक परार्ध संज्ञा से समझा जाना चाहिए । तिथि आ० + $\frac{\text{तिथिमान}}{२}$ = तिथि आरम्भ से मध्य तक तथा मध्य तिथि समय में + $\frac{\text{तिथिमान}}{२}$ = परार्ध । "तिथ्यर्धं करणं स्मृतम्" । सम्पूर्ण तिथि के पहिले के आधे समय को पूर्वार्द्ध और पूर्वार्द्ध के आधे से तिथि के अन्त तक परार्द्ध या उत्तरार्द्ध संज्ञा से उच्चारित किया जाता है । इस प्रकार एक चान्द्रमास की ३० तिथियों में पूर्वार्द्ध परार्ध से ६० संख्या में ववादिक करणों शकुनि चतुष्पद नाग और किंस्तुघ्न ये ४ स्थिर संज्ञक और शेष ६० − ४ =

करण ज्ञान के लिये चक्र

	तिथि.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५ या ३०
पूर्वार्ध	शुक्ल	कि	चौ.	तै.	भद्रा	ब.	कौ	ग.	भद्रा	बा.	तै.	व.	व.	कौ.	ग.	भद्रा
परार्ध	पक्ष	ब.	कौ.	ग.	भद्रा	वा.	तै.	वणि	बव	कौ.	ग.	भद्रा	बा.	तै.	व.	व.
पू०	कृष्ण	वा.	तै.	ब.	व.	कौ.	ग.	भ.	वा.	तै.	व.	व.	कौ.	ग.	भ.	चतु.
प०	पक्ष	कौ.	ग.	भद्रा	बा.	तै.	व.	व.	कौ.	ग.	भ.	वा.	तै.	व.	श.	नाग

५६ तिथ्यर्द्धों में १. बव, २. बालव, ३. कौलव, ४. तैतिल, ५. गर ६. वणिज और ७वाँ विष्टि के ७ चल करणों में प्रत्येक करण ५६/७ = ८ का आधा ८/२ = ४ तिथियों में प्रत्येक करण की स्थिति एक पक्ष १५ तिथियों में होती है जो चक्र से सुस्पष्ट है। १…१५ शुक्ल पक्ष तथा १६ से ३० तक कृष्णपक्ष ॥ १८ ॥

सार्पेन्द्रान्तिमभात्ततोऽब्धिघटिकं पूर्णा ततोऽब्ध्यर्द्धकं
कीटान्त्यालिविरामतः कुघटिकं गण्डान्तमूर्ध्वाधरम् ।
सावैशूव्यहगाख्ययोगविरतौ भं तत्र चण्डायुधं
दुर्योगो दिनभाच्च साभिजिदयुग्भेऽर्कस्तदैकार्गलः ॥ १९ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ गण्डान्तलक्षणमाह—**सार्पेन्द्रान्तिमभेति**। सार्पमाश्लेषा इन्द्रो ज्येष्ठा अन्तिमभं रेवती एषामन्तः तस्मात्कालात्प्राक् परं पूर्वापरतः अब्धिघटिकं गण्डान्तकं स्यात्। अब्धयश्चतस्रो घटिका यस्मिन्नित्यब्धिघटिकं चतुर्घटिकमित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। उक्तनक्षत्रात्पूर्वतो घटिकाद्वयं परतो घटिकाद्वयं एवं घटिकाचतुष्टयं नक्षत्रगण्डान्तम्। अथ तिथिगण्डान्तमाह—पूर्णा ततोऽब्ध्यर्द्धकम् पूर्णा पञ्चमीदशमीपूर्णिमा तासामन्ततः अब्ध्यर्द्धकं द्विघटिकं गण्डान्तं पूर्वापरतः स्यात्। अथ लग्नगण्डान्तमाह—कीटान्त्यालिविरामतः कुघटिकं कीटः कर्कटकः अन्त्यो मीनः अलिर्वृश्चिकः एषां विरामोऽवसानं तस्मात् कुघटिकं प्रागर्द्धघटिका परतोर्द्धघटिका एवमेकघटिकं लग्नगण्डान्तं स्यात्। अथ चण्डायुधमाह—सा वै इति। सा सांध्ययोगः वै वैधृतिः शू शूलः व्य व्यतीपातः ह हर्षणः ग गण्डः एतदाख्ययोगानां विरतिरवसानं तत्र यद्भं नक्षत्रं तस्माच्चण्डायुधं स्यात्। चण्डं प्रचण्डं महत् एवं विधमायुधं स्यात्। आयुधं घातकं स्यात्। तस्मात्तन्नक्षत्रं वर्ज्यमित्यर्थः। अथैकार्गलमाह—दुर्योगो दिनभादिति। विष्कम्भातिगण्डशूलगण्डव्याघातवज्रव्यतीपातपरिघवैधृतयो नव दुर्योगाः एषामन्यतमे सति दिनभाद्दिननक्षत्रात् साभिजिदयुग्मे विषमनक्षत्रे यदार्कः सूर्यो भवति तदा एकार्गलः स्यात्। एका अर्गला शुभावरोधिनो यस्मिन्नित्येकार्गलः शुभफलावरोधक इत्यर्थः ॥ १९ ॥

वागीश्वरी--गण्डान्त। तिथि नक्षत्र और लग्नों की सन्धियाँ (सदोष) बताई जा रही हैं—

यद्यपि गण्ड नाम कपोल का है जो गले के समीप शिर और उदर की सन्धि भी कही जा सकती है। यहाँ पर सन्धि सम्बन्धेन सीमा-एक स्थल की समाप्ति दूसरे स्थान का आरम्भ, दिन समाप्ति रात्रि प्रारम्भ की सन्धियाँ सन्ध्या से भी स्पष्ट है। यहाँ पर भी इसी अभिप्राय से तीनों गण्डान्त, तिथि, नक्षत्र और राशियों की सन्धि के साथ साथ चण्डायुध और एकार्गल नामक दोष कहे जाते हैं—

(१) नक्षत्र गण्डान्त से (१) आश्लेषा की समाप्ति मघा का प्रारम्भ (२) ज्येष्ठा समाप्ति मूल का आरम्भ, (३) रेवती की समाप्ति और अश्विनी के प्रारम्भ काल की प्रत्येक की २ घटी २ घटी एवं ४ घटी यह नक्षत्र गण्डान्त काल कहा गया है।

(२) तिथि गण्डान्त—पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा, अमावास्या की अन्तिम एक घटी, षष्ठी, एकादशी और प्रतिपदा की प्रारम्भ की १, १ घटी (पूर्णा तिथि का अन्त नन्दा का प्रारम्भ की) तिथि गण्डान्त कही जाती है।

(३) इसी प्रकार कर्क, वृश्चिक और मीन लग्नों की समाप्ति और मेष, सिंह एवं धनुर्धर लग्नों की प्रारम्भ की आधी आधी घटी एवं १ घटी (अर्थात् २४ मिनिट) के समय को लग्न या राशि गण्डान्त कहा जाता है, तीनों गण्डान्तों की समय की अवधि में शुभ कर्म का निषेध कहा गया है।

चण्डायुध—साध्य, वैधृति, शूल, व्यतीपात, हर्षण और गण्ड नाम के योगों की समाप्ति समय में जिस नक्षत्र का समय आ जाता है वह काल चण्डायुध (अशुभ) अर्थात् शुभ कर्म में त्याज्य है।

एकार्गल दोष—दुष्ट योगों विष्कम्भ, अतिगण्ड, वैधृति, शूल, गण्ड, व्याघात, व्यतीपात, वज्र, परिघ और वैधृति योगज दिनों में, दिन के नक्षत्र (चान्द्रर्क्ष) से सूर्य नक्षत्र तक की गिनती से यदि विषम, १, ३, ५ इत्यादि संख्या हो तो एकार्गल दोष होता है जो शुभ कर्म में त्याज्य है। चन्द्र नक्षत्र से सूर्य नक्षत्र तक की गणना में अभिजित् नक्षत्र को भी गृहीत किया गया है ध्यान रहै ॥ १९ ॥

सूर्याद्यामदलं दिवैव निगमद्वयश्वीषुनागत्रिषट्
संख्याकं कुलिकं दिवेन्द्ररविदिङ्नागर्तवेदद्विकम् ।
व्येकं तन्निशि षोडशांशमपरे तिथ्यंशमुज्झन्ति तैः
कालं कण्टकमैनिघण्टममरेज्यज्ञास्फुजिद्भ्यः क्रमात् ॥ २० ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वारदोषमाह—**सूर्यादिति**। सूर्यात्सकाशाद्वारेषु क्रमेण निगमादिकं यामदलं यामार्द्धमुज्झन्ति त्यजन्ति मुनय इति शेषः। निगममितं रवौ सप्तमितं सोमे अश्विनौ द्वौ तन्मितं भौमे इषुमितं बुधे नागाष्टौ तन्मितं गुरौ त्रिमितं शुक्रे षण्मितं शनौ एतद्यामदलं दिवैव उज्झन्ति न रात्रौ। अथ कुलिकादीनाह—इनादौ सूर्यादौ वारे दिवा इन्द्रादिकं षोडशांशं दिनमानस्य षोडशांशो ग्राह्यः तेन गण्यास्ते षोडशांशा ग्राह्या इत्यर्थः। तं कुलिकमुज्झन्ति। अपरे तिथ्यंशं पञ्चदशांशं कुलिकमुज्झन्ति तन्निशि तद्रात्रौ च व्येकमेकरहितचन्द्रादिकं षोडशांशं पञ्चदशांशमुज्झन्ति। तद्यथा "रवौ दिवा इन्द्रमितं चतुर्दशं तद्रात्रौ त्रयोदशं सोमे दिवा द्वादशं तद्रात्रौ एकादशम्" इत्यादि। अथ तैरेव इन्द्रादिभिर्मुहूर्तैः अमरज्यज्ञास्फुजिद्भ्यः सकाशात् क्रमात् कालं कण्टकम् ऐनिर्घटम् इनस्यापत्य पुमानैनिः

यमः तस्य घण्टो यमघण्ट इत्यर्थः । तमुज्झन्ति । एतदुक्तं भवति । अमरेज्यो गुरुः तस्मात्सकाशात् तैरेव इन्द्रादिभिर्मुहूर्तैः कालमुज्झन्ति ज्ञाद्बुधात् तैरेवेन्द्रादिभिः कण्टकम् आस्फुजिच्छुक्रः तस्मात्सकाशात् तैरेवेन्द्रादिभिर्मुहूर्तैरेनिघण्टं यमघण्टमुज्झन्ति ॥ २० ॥

बागीश्वरी—अर्ध प्रहर आदि दोष बताये जा रहे हैं—

रविवार के दिन चतुर्थ, सोम को सप्तम, मंगल को द्वितीय, बुध के दिन पाँचवाँ, गुरुवार को आठवाँ, शुक्रवार को तीसरा और शनिवार के दिन छठा यामार्ध (दिनमान का आठवाँ भाग) शुभ कर्म में त्याज्य है। यह अर्द्धप्रहर दोष केवल दिन में त्याज्य है, रात्रि में नहीं। दिन और रात्रिमान के १६वें भाग के तुल्य समय को कुलिक कहा गया है। यह रविवार के दिन १४वाँ, सोमवार को १२वाँ, मंगलवार के दिन १०वाँ, बुध के दिन ८वाँ, बृहस्पति में ६ छठा, शुक्र में चतुर्थ ४ और और शनि में २ दूसरा खण्ड कुलिक दोष कहा गया है। जो शुभ कर्म में त्याज्य है। रात्रि के लिये दिन की कुलिक खण्ड संख्या में १ कम कर देने से रात्रि रविवार से क्रमशः १३, ११, ९, ७, ५, ३, और १ खण्ड कुलिक दोष होता है।

दिनमान ÷ १६, एवं रात्रिमान ÷ १६ के तुल्य काल समय का नाम कुलिक कहा गया है। मतान्तर से $\frac{\text{दिनमान}}{१५}$ और $\frac{\text{रात्रिमान}}{१५}$ भी कुलिक खण्ड समय कहा गया है।

कालवेला—गुरुवार को १४वाँ, शुक्र को १२वाँ, शनि को १०वाँ, रविवार को ८वाँ, सोम को ६ छठा, मंगल को चौथा और बुधवार को दूसरा मुहूर्त्त काल संज्ञक कहा गया है।

कण्टक—बुध को १४वाँ, गुरु को १२वाँ, शुक्र को १०वाँ, शनि को ८वाँ, रवि को छठा, सोम को चौथा और मंगल को दूसरा मुहूर्त्त कण्टक होता है।

यमघण्ट—शुक्रवार को १४वाँ, रात्रि को १२वाँ, रवि को १०वाँ, सोम को ८वाँ, मंगल को छठा, बुध को चौथा और गुरुवार को दूसरा मुहूर्त यमघण्ट कहलाता है। उक्त सभी वारदोष शुभ कर्म में त्याज्य हैं ॥२०॥

शुक्रेन्द्वीज्ययमेषु गोऽङ्करविभूतुल्या मुहूर्ता दिवा
दुष्टाः स्युः कुजनिश्यगो य इतरे सन्त्यर्द्धयामादिषु ।
प्रेक्ष्यः संप्रति वृद्धितुर्यचरणे ब्रह्मद्वितीयेऽपमः
सूर्याद्या अनुविश्वपाशियमलेन्द्वह्यर्कभैर्मृत्युदाः ॥ २१ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ मुहूर्तानाह—शुक्रेन्द्वीज्येति । शुक्रः प्रसिद्धः इन्दुश्चन्द्रः ईज्यो गुरुः यमः शनिः एषु क्रमेण गोऽङ्करविभूतुल्या मुहूर्ता दिवा दुष्टाः स्युः । दुर्मुहूर्ता इत्यर्थः । कुजनिशि अगः सप्तमो मुहूर्तो दुर्मुहूर्तः । ग्रन्थान्तरे "अर्यम्णोऽर्के तुहिनकिरणे राक्षसब्राह्म्यसंज्ञौ" इत्यादि बहवो दुर्मुहूर्ता उक्ताः । अत्र स्वल्पा उक्तास्तेषां परिहारमाह—य इतरे दुर्मुहूर्ता ग्रन्थान्तरे पठितास्ते सर्वे अर्द्धयामादिषु सन्ति अतोऽत्र मया नोक्ताः यत अर्द्धयामादीनां त्यागे तेऽपि त्यक्ताः स्युः । किं ग्रन्थविस्तरणेति भावः । एतत्तु सुज्ञा ज्ञास्यन्ति यथा रवौ चतुर्दशो मुहूर्तो दुर्मुहूर्तः कुलिकोऽपि

चतुर्दशो मुहूर्तः तयोरेकत्र सद्भाव इत्यन्येऽपि विचारगम्याः। नन्वेवं चेत्तर्हि पूर्वं व्यर्थं पठितमेवं तैस्त्वनधिकाधिकदोषविवक्षयोक्तमिति न दोषः। अथ पातसंभवकालमाह—प्रेक्ष्य इति। संप्रति सांप्रतं वृद्धितुर्यचरणे वृद्धियोगस्य चतुर्थचरणे तथा ब्रह्मद्वितीये ब्रह्मयोगस्य द्वितीयचरणे अपमः क्रांतिः पातो विलोक्यः ब्रह्मसिद्धान्ताद्युक्तप्रकारेण विलोक्य इत्यर्थः। अथ मृत्युं सर्वत्र वर्जयेदित्युक्त्वा-मृत्युयोगमाह—सूर्याद्या इति। सूर्याद्या अर्कादयः क्रमेणान्वादिभिर्नक्षत्रैः सह मृत्युदाः स्युः। अनु अनुराधा विश्वे उत्तराषाढा पाशी शततारका यमलौ अश्विनी इन्दुर्मृगः अहिराश्लेषा अर्कभं हस्तः। एतदुक्तं भवति। अर्कः अनुराधया सह युक्तो मृत्युदः सोम उत्तराषाढया भौमः शततारकया बुधः अश्विन्या गुरुर्मृगेण शुक्रः आश्लेषया शनिर्हस्तेन सहितो मृत्युदः स्यादित्यर्थः। मृत्युयोगापवादमाह—"विरुद्धयोगास्तिथिवारजाता नक्षत्रयोगप्रभवाश्च यत्र। हूणेषु वङ्गेषु खसेषु वर्ज्याः सर्वेषु देशेषु न ते निषिद्धाः॥" इतिरत्नमालायाम् ॥ २१ ॥

वागीश्वरी—दुर्मुहूर्त्तादि बताये जा रहे हैं—

शुक्र, सोम, गुरु और शनिवार के दिन क्रमशः ९वाँ, ९वाँ, १२वाँ और १ पहिला मुहूर्त्त दुर्मुहूर्त्त होते हैं। मंगलवार की रात्रि का ७वाँ मुहूर्त्त दुष्ट मुहूर्त्त कहा गया है। पूर्वोक्त अन्य दुर्मुहूर्त्तादिक अर्द्धयाम आदिक दोष के अन्तर्गत हो जाने से उनका यहां उल्लेख नहीं किया गया है।

पात का संभव काल—कार्यकाल वर्त्तमान में वृद्धियोग के चतुर्थ चरण के समय की सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति समझ कर यदि दोनों की क्रान्तियाँ बराबर हों तो जिस समय समान (तुल्य) क्रान्ति हो रही है उस समय क्रान्ति साम्यकाल अर्थात् पात काल होने से पात दोष का समय भी शुभ कार्य में त्याज्य है।

रविवार को अनुराधा, सोम को उत्तराषाढ़ा, मंगल को शतभिषा, बुध को अश्विनी, वृहस्पति को मृगशिरा, शुक्रवार को आश्लेषा और शनिवार को हस्त नक्षत्र की स्थिति होने से उन उन दिनों में मृत्यु योग होते हैं जो सभी देशों में सदा त्याज्य कहे गये हैं॥ २१॥

पञ्चाशत् ५०जिन२४खाग्नय३०श्च खकृता ४०

आखण्डला १४ मूर्च्छनाः २१

त्रिंशद्३०विंश२०रदाः३२खराम३०नख२०धृति

१८ एकाश्विनौ २१ विंशतिः २०।

शक्रेन्द्रौ १४-१४ दश १० वासवा १४ रसशराः ५६

सिद्धा २४ नखा २० आशा १० दिशो १०

धृति १८ अष्टी १६ जिन २४ खाग्नयोऽ ३०

श्वित इमाभ्योऽग्रेऽब्धिनाड्यो विषम् ॥ २२ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ विषघटिका आह। **पञ्चाशदिति।** अश्वितः सकाशात् नक्षत्रेषु इमाभ्यः पञ्चाशज्जिनेत्यादिभ्यो घटिकाभ्यो अग्रे परतोऽब्धिनाड्यश्चतुर्नाड्यो विषं स्यात्। एतदुक्तं भवति। अश्विन्याः पञ्चाशत् घटिकाभ्योऽनन्तरं चतुर्नाड्यो विषम् एवमन्यत्। अत्राङ्कन्यास एव व्याख्यानम्॥ २२॥

वागीश्वरी--प्रत्येक नक्षत्र की विष घटिका कही जा रही है—

अमृत और विष सभी शरीरों में विद्यमान हैं अमृत के आधिक्य से जीवन, विष के आधिक्य से मरण स्वाभाविक है—उसी प्रकार २७ नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्र के गणितागत घट्यात्मक सम्पूर्ण समय में—

अश्विनी नक्षत्र के ५० घटी बीतने पर ५१, ५२, ५३, ५४ घटी अर्थात् ४ घटी तक

भरणी	२४	,,	२५ से २८	,,	,,
कृतिका	३०	,,	३१ — ३४	,,	,,
रोहिणी	४०	,,	४१ — ४४	,,	,,
मृग	१४	,,	१५ — १८	,,	,,
आर्द्रा	२१	,,	२२ — २५	,,	,,
पुनर्वसु	३०	,,	३१ — ३४	,,	,,
पुष्य	२०	,,	२१ — २४	,,	,,
आश्लेषा	३२	,,	३३ — ३६	,,	,,
मघा	३०	,,	३१ — ३४	,,	,,
पू. फा.	२०	,,	२१ — २४	,,	,,
उ. फा.	१८	,,	१९ — २२	,,	,,
ह.	२१	,,	२२ — २५	,,	,,
चि.	२०	,,	२१ — २४	,,	,,
स्वा.	१४	,,	१५ — १८	,,	,,
विषा.	१४	,,	१५ — १८	,,	,,
अनु.	१०	,,	११ — १४	,,	,,
ज्ये.	१४	,,	१५ — १८	,,	,,
मू.	५६	,,	५७ — ६०	,,	,,
पू. षा.	२४	,,	२५ — २८	,,	,,
उ. षा.	२०	,,	२१ — २४	,,	,,
श्रवण	१०	,,	११ — १४	,,	,,
धनिष्ठा	१०	,,	११ — १४	,,	,,
शतभिषा	१८	,,	१९ — २२	,,	,,
पू. भा.	१६	,,	१७ — २०	,,	,,
उ. भा.	२४	,,	२५ — २८	,,	,,
रेवती	३०	,,	३१ — ३४	,,	,,

अर्थात् दी हुई प्रारम्भ की घटी संख्या से ४ घटी आगे तक दी हुई घटी संख्या तक प्रत्येक नक्षत्र का विषघटी काल कहा गया है जो शुभ कार्यों में त्याज्य है। यह काल नक्षत्र के मध्यम मान ६० घटी काल में कहा गया है। स्पष्ट नक्षत्र काल आगे कहा जायेगा ॥ २२ ॥

नक्षत्रस्य गतैष्ययोगगुणितः स्वस्वध्रुवः षष्टिहृत्
स्पष्टः स्यादत ऊर्ध्वमब्धिघटिकाः स्पष्टाः स्युरेवं कृताः ।
चन्द्रः सौम्यभगोऽथवा शुभसुहृद्दृष्टोऽथवा स्वांशगः
कोण ५, ९ अस्त ७ अभ्र १० सुखेषु ४ वा विषभयं
हन्तीह साङ्गेऽङ्गपः ॥ २३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथैषां ध्रुवकानां स्पष्टीकरणमाह—**नक्षत्रस्येति**। नक्षत्रस्य गतैष्ययोगेन गुणितः स्वस्वध्रुवः षष्टिहृत् स्पष्टः स्यात्। अत ऊर्ध्वं स्पष्टध्रुवानन्तरम् अब्धिघटिकाश्चतुर्नाड्यो विषं स्यात्। एतदुक्तप्रकारेण कृताः सत्यः स्पष्टाः स्युः। एतदुक्तं भवति। ध्रुववच्चतुर्नाड्योऽपि नक्षत्रगतैष्ययोगगुणिताः कार्याः षष्टिहृताः कार्याः ताः स्पष्टाः स्युः। स्पष्टानन्तरं चतुर्नाड्यो विषाख्या ज्ञेयाः। अथ विषघटीनामपवादमाह—चन्द्र इति। चन्द्रः सौम्यभगः शुभग्रहराशिगः सन् विषभयं हन्ति अथवा शुभसुहृद्दृष्टः शुभश्चासौ सुहृच्च तेन दृष्टः सन् विषभयं हन्ति अथवा स्वांशगः स्वनवांशे वर्तमानः सन् विषभयं हन्ति। वा इत्यथवा कोणास्ताभ्रसुखगोऽपि चन्द्रो विषभयं हन्तीत्यर्थः। अत्रास्मिन्कोणादिस्थाने साङ्गे लग्ने वर्तमानोऽङ्गपो लग्नपो विषभयं हन्तीत्यर्थः। एवं पञ्चभङ्गाः सन्ति। ननु सप्तमः खेटो विवाहे निन्दितः कथमत्र चन्द्रो गृहीतः। सत्यम्। इदं वाक्यं सर्वकर्मसाधारणं तस्मान्निन्दितं स्थानं वर्जयित्वाऽन्यत्र ग्राह्यः। तथा च बृहस्पतिः "चन्द्रो विषघटीदोषं हन्ति केन्द्रत्रिकोणगः। लग्नं विना शुभैर्दृष्टः केन्द्रे वा लग्नपे तथा"। फलप्रदीपे "विषनाड्युत्थितं दोष हन्ति सौम्यर्क्षगः शशी। मित्रदृष्टोऽथवा स्वीयवर्गस्थो लग्नपोऽपि च" ॥ २३ ॥

वागीश्वरी—विषघटी का स्पष्ट मान ज्ञात किया जा रहा है—

जिस नक्षत्र की विषघटी का स्पष्ट मान ज्ञात करना है उस नक्षत्र के इष्ट कालिक भयात, और भभोग का स्पष्ट ज्ञान करते हुए यदि ६० घटी भभोग काल में विष घटी का मान ४ घटी तुल्य है तो ६५।० भभोग में या ५५।० भभोग में विषघटी मान क्या होगा ? जैसे—

$\frac{४ \times ६५}{६०} = \frac{२६०}{६०} =$ ४ घटी २० पल के तुल्य यहाँ पर विषघटी का मान होगा।

इसी प्रकार $\frac{४ \times ५५}{६०} = \frac{२२०}{६०} =$ ३ घटी ४० पल यह ५५ भभोग पर विषघटी का मान होगा ?

इसी प्रकार नक्षत्र के मान ६० में 'पञ्चाशज्जिन' अश्विनी के ५० घटी के बाद ४ घटी विषघटी कहा गया है। यदि

$$\frac{\text{पचासघटीवाद} = ५० \times ६५ \text{ (६५ घटीमान में)}}{\text{अश्विनी के मान ६० घटी}}$$

$$\frac{५० \times ६५}{६०} = \frac{३२५}{६} = ५० \text{ घटी } २५ \text{ पलके बाद } ५० \text{ घ } २५ + ४।२० = ५४$$

घटी ४५ पल तक अश्विनी नक्षत्र के समय तक स्पष्ट मान से यही स्पष्ट का विषघटीमान होगा।

विषघटिका परिहार—शुभग्रह राशि स्थित चन्द्रमा हो अथवा मित्र शुभ ग्रह से चन्द्रमा देखा जाता हो अथवा चन्द्रमा अपने नवांश (कर्क) में हो अथवा लग्न से ९, ५, ७, ४ स्थानों में बैठा हो तो विषघटी दोष को दूर कर देता है। इसी प्रकार यदि लग्न स्वामी ग्रह ९, ५, ७, ४ और लग्न में हो तो भी विषघटी दोष नगण्य हो जाता है। इन पाँच प्रकारों में किसी भी एक प्रकार से विषघटी दोष दूर हो जाता है। ध्यान देने की बात है विवाह लग्न से सप्तम में कोई भी ग्रह शुभ नहीं होता। सप्तम में शुभ या अशुभ ग्रह स्थिति से जामित्र नामक प्रबल दोष होता है इसलिये विषघटी दोष निवारण में चन्द्रमा की जो ९।५।७।४ स्थानों की स्थिति कही गई है वह विवाह में तो ७वें चन्द्रमा का जामित्र नामक दोष होगा ही अन्य कार्यों में चन्द्रमा ७वाँ ठीक है किन्तु विवाह में ऊपर चन्द्रमा की स्थिति जो ९।५।७।४ कही गई है उस जगह ९।५।४ ही कहना उचित होगा। ७वाँ चन्द्रमा विवाह लग्न में सर्वथा त्याज्य ही कहा जायेगा ॥ २३ ॥

लग्ने चन्द्रखला रिपौ शशिसितौ सर्वे द्युने खे बुधोऽ-
ब्जोऽन्त्येऽगुः सुखगोऽष्टमाः कुजशुभाः शुक्रस्तृतीयः शुचे।
लाभे सर्वखगाः शुभा अखिलगास्त्र्यष्टारिगाः स्युः खला-
श्चन्द्रस्त्र्यम्बुधने श्रियेंऽशभदृगेट् स्यान्मृत्यवेऽष्टारिगः ॥ २४ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ विवाहलग्ने इष्टानिष्टग्रहानाह—**लग्ने चन्द्रखला इति।** चन्द्रश्च खलाश्च ते चन्द्रखलाः लग्ने वर्तमानाः शुचे शोकाय भवन्ति। तथा रिपौ षष्ठे विधुसितौ चन्द्रशुक्रौ तथा सर्वे द्युने सर्वे क्रूरसौम्याः द्युने सप्तमे तथा खे दशमे बुधः तथा अब्जश्चन्द्रोऽन्त्ये अगुः राहुः सुखगश्चतुर्थगः न विद्यन्ते गावः किरणाः यस्ये-त्यगुः राहुः "तमोऽगुरसुरश्च" इतिबृहज्जातके राहुनामानि। तथा अष्टमाः कुजशुभाः कुजश्च शुभाश्च ते तथा शुक्रस्तृतीय इति स्पष्टार्थः। एते प्रत्येकमुक्तस्थानगाः शुचे शोकाय भवन्ति। अथ इष्टानाह—लाभ इति। लाभे एकादशे सर्वखगाः तथा सौम्याः शुभग्रहाः अखिलगा निन्द्यं विना सर्वस्थानगाः तथा खलाः क्रूरास्त्र्यष्टारिगास्तृतीयाष्ट-षष्ठगाः तत्र अष्टमे भौमो निन्दितः तं विना पापा अष्टमा ग्राह्याः चन्द्रस्त्र्यम्बुधने तृतीय चतुर्थद्वितीये चन्द्रः एते प्रत्येकं श्रियै लक्ष्म्यै भवन्ति। श्रीकारका इत्यर्थः। एवं

शुभाशुभग्रहानुक्त्वा तत्र विशेषमाह—अंशभदृगेट् अष्टारिगः सन् मृत्यवे स्यात् अंशो नवांशः भं लग्नं दृक्को दृक्काणः एषामिट् स्वामी नवांशस्वामी लग्नस्वामी दृक्काणस्वामी एते प्रत्येकमष्टषष्टगाः मृत्युहेतवो भवन्तीत्यर्थः ॥ २४ ॥

वागीश्वरी—विवाह लग्न में शुभाशुभ ग्रह स्थिति विचार—

लग्न से तृतीय चन्द्र और पापग्रह, षष्ठस्थानस्थ चन्द्रमा और शुक्र, सप्तम स्थान में शुभ या अशुभ कोई भी ग्रह (जामित्र दोष), दशमस्थ बुध, द्वादशस्थ चन्द्रमा, चतुर्थस्थ, राहु, अष्टमस्थान स्थित मंगल तथा कोई भी शुभ ग्रह और तृतीयस्थ शुक्र होने से पति पत्नी दोनों या एक के लिये शोक कारक कहे गये हैं।

लग्न से कोई भी ग्रह ११वें शुभफलद होता है। उक्त निन्दित स्थानों को छोड़कर अन्य शेष स्थानों में पापग्रह लग्न से, ३, ६, ८ स्थानों और चन्द्रमा ३, ६, २ में यदि हों तो श्रीवृद्धि प्रद (लक्ष्मी प्राप्तिकर) होते हैं।

मंगल ग्रह की अष्टमस्थान की स्थिति विशेष अशुभ भविष्य सूचक होते हुए अन्य पाप ग्रहों की अष्टम स्थान की स्थिति शुभ फलप्रद कही गई है।

इसी प्रकार लग्नस्थ नवांश स्वामी जो कोई ग्रह हो तथा लग्न का स्वामी ग्रह, और लग्न के द्रेष्काण का स्वामी जो कोई भी ग्रह है वह भी विवाह लग्न से छठे और आठवें स्थान में मृत्युप्रद अशुभ कहा गया है ॥ २४ ॥

कन्यातौक्षिकशत्रुगेहगभृगुः षष्ठोऽपि नो भङ्गकृद्
भौमो मृत्युगतोऽपि शत्रुशशिनोर्गेहस्थितो वाऽर्कगः ।
शुक्लेऽन्त्यारिविधुः सुवर्गदृगितः स्वोजो युजीज्ये तनौ
शुक्रे वा शुभदोऽथ कण्टकनिजांशेज्येक्षितः सग्रहः ॥ २५ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ कतिचिद्दोषाणामपवादमाह। तत्र प्रथमं भृगुषष्ठापवादमाह—**कन्यातौक्षिकेति**। कन्या प्रसिद्धा शुक्रस्य नीचं तौक्षिको धनुर्धरः शत्रुगेहं पूर्वोक्तं "भृगुभुवः शशूरवीन्दू" इति, तत्र रवेर्गृहं सिंहः इन्दोर्गृहं कर्कः एषां कन्यादीनामन्यतमगेहगतो भृगुः षष्ठोऽपि नो भंगकृत् स्यात्। लग्नभङ्गकरो न भवतीत्यर्थः। तथा च कश्यपः—"नोचगे तु तुरीये वा शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा। भृगुषष्ठोद्भवो दोषो नास्तीत्यत्र न संशयः।" अथ कुजाष्टमदोषापवादमाह—भौमो मृत्युगतोऽपि शत्रुशशिनोर्गेहस्थितो यदि भवति वा इत्यथवा अर्कगः अस्तं गतोऽपि यदि भवति तदा नो भङ्गकृत् स्यात्। अस्य शत्रुर्बुधः। कुजस्य विदरिरिति प्रागुक्तस्तस्य गृहं कन्या मिथुनं च। शशिगृहं कर्कटस्तस्य नीचं एषामन्यतमस्थोऽस्तं गतो वा अष्टमगतोऽपि वा लग्नभङ्गकरो न भवतीत्यर्थः। "अस्तगेनोच्चगे भौमे शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा। कुजाष्टमोद्भवो दोषो न किंचिदवशिष्यते" इति। अथ द्वादशषष्ठचन्द्रापवादमाह—शुक्लेति। शुक्ले शुक्लपक्षे अन्त्यारिविधुः द्वादशः षष्ठश्चन्द्रः सुवर्गदृगितः वर्गाश्च दृशश्च वर्गदृशः शोभ-

नानां वर्गदृशः सुवर्गदृशः ता इतः प्राप्तः सुवर्गदृगितः शुभवर्गशुभदृष्टियुक्त इत्यर्थः। एवंविधो विधुः शुभदः स्यात्। कस्मिन् सति इज्ये गुरौ शुक्रे वा तनौ लग्ने सति। कथंभूते गुरौ स्वोजोयुजि सुतराम् ओजः स्वोजः उत्कृष्टबलं तेन युनक्तीति स्वोजोयुक् तस्मिन् स्वोजोयुजि अतिबलिष्ठे सतीत्यर्थः। शुक्रस्याप्येतद्विशेषणम्। एतदुक्तं भवति। बलिष्ठे गुरौ शुक्रे वा लग्नस्थे सति शुक्लपक्षे चन्द्रमा सुवर्गदृष्टि-सहितः यदि भवति तदा द्वादशषष्ठगोऽपि शुभद इति भङ्गकरो न स्यात् अन्यथा न। मुहूर्तदर्पणे "कवौ गुरौ वा बलिनि स्थिते तनौ शुभेन दृष्टः शुभवर्गगः शशी। विवर्धमानः शुभकृच्च नाशुभं करोति तिष्ठन्नपि रिःफषष्ठयोः" इति। अथ सग्रहचन्द्र-दोषापवादमाह—सग्रहः ग्रहेण ग्रहाभ्यां ग्रहैर्वा सह वर्तमानः सग्रहः बुधगुरुवर्ज्या-न्यग्रहयुक्त इत्यर्थः। यतः पूर्वमुक्तम् "हिमरुचिर्ज्ञेज्यो न खेटान्वितम्" इति। एवंविधः सग्रहो विधुः केन्द्रनिजवर्गेज्येक्षितः सन् शुभदः स्यात्। केन्द्रं प्रसिद्धं निजवर्गो निजांश-स्तत्र वर्तमानः इज्यः तेन ईक्षितः अवलोकितः सग्रहः चन्द्रमाः शुभदः भङ्गकरो न स्यात्। उक्तं च "गुरुः स्वकीयवर्गस्थो बलवान् कण्टकाश्रितः। पश्यन् सग्रहशीतांशुं तद्दोषं विलयं नयेत्" इति ॥ २५ ॥

वागीश्वरी—अनिष्टस्थान स्थित ग्रहदोष परिहार बताया जा रहा है—

शुक्र ग्रह की लग्न से छठे स्थान की स्थिति अशुभ कहते हुए, कन्या, धनु कर्क और सिंह इत्यादि किसी भी एक राशि में शुक्र के होने से वैवाहिक लग्न में दोष नहीं आता। क्योंकि, कन्या का शुक्र नीच राशि का और धनु कर्क सिंह राशियाँ शुक्र के शत्रु घर की राशियाँ होने से ऐसी स्थिति में शुक्रग्रह बल हीन हो जाने से उसके दोष सामान्य हो जाते हैं।

मंगल ग्रह भी अपने शत्रु ग्रह बुध की राशि मिथुन कन्या में, और अपनी नीच राशि कर्क में तथा सूर्य के साथ अस्त होने से भी विवाह लग्न से अष्टम स्थान गत मंगल का दोष नहीं होता। निर्बलता कारण है।

इसी प्रकार विवाह लग्न से छठा (षष्ठस्थ) और द्वादशस्थ (१२वाँ) चन्द्रमा की अनिष्ट फलप्रद स्थिति समाप्त हो जाती है, जब कि शुक्ल पक्ष की वैवाहिक लग्न में बलवान् गुरु और शुक्र बैठे हों और चन्द्रमा शुभ वर्ग शुभग्रह से देखा जा रहा हो, यहाँ पर बलवान गुरु और शुक्र दोनों ग्रह लग्नगत चन्द्र दोष को समाप्त कर देते हैं।

केन्द्रस्थ व अपने वर्गस्थ गुरु ग्रह की दृष्टि यदि चन्द्रमा पर हो और ऐसे विशेषण विशिष्ट किसी भी ग्रह के साथ रहने पर भी चन्द्रमा दोष कारक नहीं होता।

बुध और गुरु को छोड़कर अन्य किसी भी ग्रह के साथ रहने वाला चन्द्रमा, विवाह लग्न में अशुभ फल प्रद कहा गया है। बल से परिपूर्ण वृहस्पति ग्रह की चन्द्रमा पर दृष्टि होने से चन्द्र ग्रह शुभ फल ही देता है॥ २५॥

दोषाणां शतमिन्दुजः शतयुगं शुक्रो गुरुर्घातये-
ल्लक्षं कण्टककोणगोऽङ्गमिनचन्द्रौजस्विपातादिकान् ।
भङ्गा ये विबला न तेऽत्र सफलाः संध्यंशतुल्यो फलः
स्याद्भावांशसमो ग्रहोऽखिलफलः संध्यूर्ध्वगः स्यात्परः ॥ २६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ सामान्यदोषापवादमाह—दोषाणामिति । कण्टककोणगः इन्दुजो बुधो दोषाणां शतं घातयेत्, तत्स्थः १, ४, ५, ७, ९, १०, शुक्रः दोषाणां शतयुगं द्विशतं घातयेत् तत्स्थः १, ४, ५, ७, ९, १०, बृहस्पतिः दोषाणां लक्षं घातयेत् । अपवादान्तरमाह—अङ्गं लग्नमिनचन्द्रौजस्विपातादिकान् घातयेत् इनचन्द्रयोः सूर्यचन्द्रयोः ओजो बलमस्यास्तीति इनचन्द्रौजस्वि एवंविधं लग्नं पातादिकान् घातयेत् । उक्तं च वसिष्ठेन "एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्तर्युदयादिदोषाः । नश्यन्ति चन्द्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथार्काभ्युदयेऽन्धकारः" इति । अथ दोषापवादभङ्गमाह । भङ्गा इति । ये भङ्गा दोषभङ्गा विबला गतबला निर्बलास्तेऽत्र दोषभङ्गविषये सफला न भवन्ति । दोषभङ्गसमर्था न भवन्तीत्यर्थः । तस्माद्दोषभङ्गकृतां बलं विचार्य दोषभङ्गमादिशेदिति भावः । उक्तं च "सामान्येनोदिता दोषा भङ्गास्तेषां तु तद्विदैः । यदि ते बलहीनाः स्युः प्रध्वंसाभावतां ययुः" । अथ भावशुद्धिमाह—संध्यंशतुल्यो फल इति । संध्यंशतुल्यः संधिभागसमानो ग्रहोऽफलः स्यात् सदसत्फलदो न भवति । भावांशतुल्यो ग्रहोऽखिलफलदः स्यात् संपूर्णफलदो भवति । अर्थान्मध्ये अनुपातात्फलं वेद्यम् । विशेषफलमाह—संध्यूर्ध्वगः स्यात्पर इति । संध्यूर्ध्वगः संध्यंशाधिको ग्रहः परः स्यात् । परभावफलदः स्यादित्यर्थः ॥ २६ ॥

वागीश्वरी—सामान्यतया अनेक दोषों का परिहार बताया जा रहा है—

विवाह लग्न से बुध ग्रह की स्थिति यदि १।४।७।१०।५।९वें स्थानों (भावों) में होने से दो सौ (२००) संख्या तक के वैवाहिक लग्न के दोषों को समाप्त कर देता है। इसी प्रकार शुक्र की स्थिति भी समझिये । ठीक उक्त ऐसी ही स्थिति (लग्न से १।४।७।१०।९।५) यदि बृहस्पति ग्रह की हो तो दो लाख २००००० संख्या दोषों की भी जड़ ही उखड़ जाती है । फलतः बुध शुक्र और गुरु की स्थिति वैवाहिक लग्न की केन्द्रत्रिकोणस्थ में जैसी हो उसी लग्न के स्पष्ट समय में कन्यादान होना चाहिए ।

सूर्य और चन्द्रमा से पूर्ण बली विवाह लग्न से पात आदिक दोषों की भी समाप्ति हो जाती है ।

विवाह लग्न में उत्पन्न ग्रहादिक दोषों के परिहार कारक (बुध–शुक्र–गुरु) ग्रह योग निर्बल होने से लत्तापातादिक दोषों का परिहार (दोष भङ्ग) नहीं होता अत एव दोषभंग कारक ग्रह योग भी प्रवल होना चाहिए ।

द्वादश भाव चक्र में, भाव की सन्धि के तुल्य अंश के ग्रह, अपना शुभाशुभ फल देने में असमर्थ होते हैं ।

भाव के अंश तुल्य जिस ग्रह के अंश हों वह ग्रह पूर्णफलप्रद होता है। और जो ग्रह सन्धि से अधिक हो जाता है वह ग्रह जिस भाव में बैठा है उस भाव से अग्रिम भाव का शुभाशुभ फल देता है ॥ २६ ॥

भागाः स्युर्नतनाडिकारसहतास्तद्धीनयुक्प्राक्परे
सूर्यः खं सरसं सुखं कथितवल्लग्नं सषड्भं मदः ।
व्यस्ताभ्रत्रिलवोऽथ दृक्च्युत उभौ योज्यौ कुदृग्घ्नौ पृथग्
लग्ने चाम्बुनि ते सषट्तनुमुखाः संधिर्द्वियोगोऽर्धितः ॥
(पाठान्तरम्-व्यस्ताभ्रारिलवोऽथभूच्युत इमौ भूयोऽङ्गपातालयोः ।
क्षेप्यौ षट्तनुतः ससंधय इमे षड्भान्विताः स्युः परे) ॥ २७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—संध्यंशतुल्य इत्याद्युक्तम् । तत्र के ते भावा इत्यपेक्षायां तत्साधनं किंचित्स्थूलमेकेन वृत्तेनाह—**भागाः स्युरिति** । नतनाडिकारसहता भागाः स्युः । नतसाधनं जातकपद्धतावुक्तम् "रात्रेः शेषमितं युतं दिनदलेनाह्नो गतं शेषकं विश्लेष्यं खलु पूर्वपश्चिमनतं त्रिंशच्च्युतं चोन्नतम्" इति । एतदुक्तं भवति सूर्येष्टकालाभ्यामिष्टकालं साधयित्वा नतं च साधयित्वा तदिष्टकालभवं नतं षड्गुणं नतभागाः स्युरित्यर्थः । प्राक्पश्चिमेन तेन क्रमेण तद्धीनयुक् सूर्यः तैर्भागैर्न्यूनयुक्पूर्वनते सति न्यूनः पश्चिमनते सति युक् युक्तः तत्कालिकः सूर्यः खं स्यात् । दशमभावः स्यादित्यर्थः । तत् खं दशमभावं सरसं षड्राशियुक्तं सत् सुखं चतुर्थभावः स्यात् । कथितवल्लग्नं प्रोक्तवल्लग्नं ज्ञेयम् । तत्सषड्भं षड्राशियुक्तं सत् मदः सप्तमभावः स्यात् । एवं भावचतुष्टयं साधयित्वा अन्तर्भावसाधनमाह—व्यस्ताभ्रत्रिलव इति । विगतः अस्तः सप्तमभावो यस्मात् तत् व्यस्तं तच्च तदभ्रं च व्यस्ताभ्रं सप्तमभावरहितदशमभाव इत्यर्थः । तस्य त्रिलवो राश्यादिको ग्राह्यः । अथ दृक्च्युतः द्विपतितः कार्यः, एतौ उभौ केवलत्रिलवदृक्च्युतत्रिलवौ पृथक् पृथक् कुदृग्घ्नौ सन्तौ पृथक् पृथक् लग्ने अम्बुनि च योज्यौ । अयमर्थः—कुघ्नः त्रिलवो लग्ने योज्यः स द्वितीयभावो भवति । दृग्घ्नो लग्ने योजितः तृतीयभावो भवति । अथ दृक्च्युतः त्रिलवः कुघ्नः अम्बुनि पूर्वसाधिते चतुर्थभावे योजितः पञ्चमभावो भवति । तत्रैव दृग्घ्नोऽम्बुनि योजितः षष्ठभावो भवति । ते षडनन्तरसाधिता भावाः षड्राशिसहिताः कार्याः ते तु सप्तमा ज्ञेयाः । लग्नं षड्भं मद इतियावत् । ते तु लग्नमुखा लग्नादयो भावाः स्युः । अथ संधिसाधनमाह—संधिर्द्वियोगोऽर्द्धित इति । द्वयोर्भावयोर्योगः अर्धितः संधिः स्यादिति स्पष्टम् । अथ पाठान्तरस्य व्याख्या । व्यस्तेति । सप्तमभावरहितस्य दशमभावस्य अरिलवः षड्भावा राश्यादिकः स पृथक् पृथक् भूच्युतः एकस्मात्पतितः इमौ उभौ भूयः वारं वारं अङ्गपातालयोः प्रथमचतुर्थभावयोः क्षेप्यौ तनुतः लग्नात् ससंधयः संधिसहिताः षड्भावाः स्युः । इमे भावाः षड्भावान्विताः परे ससंधयो भावाः स्युः ।

एवं भावसन्धिसाधनं कृत्वा सन्ध्यंशतुल्योऽफल इति प्रागुक्तं ग्रहफलं विचार्यम्। अन्तरे अनुपातः "भावसंध्यन्तरेणाप्तं खेटसंध्यन्तरात् फलम्" इति जातकपद्धतेः। इति। एतत्स्थूलभावानयनं सूक्ष्मं तु जातकपद्धतावववगन्तव्यम् ॥ २७ ॥

वागीश्वरी——लग्नादिक बारह भाव और उनकी सन्धियाँ बताई जा रही हैं—

(१) सूर्योदयादिष्टकाल, स्पष्ट सायन रवि आदि से सायन लग्न साधन कर निरयण लग्न के साथ दिन रात्रि के पूर्वापर नतकाल ज्ञान से दशम लग्न का साधन कर द्वादश भाव चक्र बनाया जाता है। उसके साधन के लिए घटिकात्मक गत काल को ६ से गुणा कर अंशादिक फल होता है। इस फल को पूर्वनत में स्पष्ट सायन सूर्य में जोड़ने पर दशम लग्न होती है। दशम लग्न में ६ राशि जोड़ने से चतुर्थ भाव हो जाता है। लग्न में ६ राशि जोड़ने से सप्तम भाव हो जाता है। दशम भाव में सप्तम भाव की राश्यादिक को घटा देने से शेष में ३ का भाग देने से (त्रिलव = तृतीयांश) जो आवे उसे २ राशि में घटाकर (१) शेष और (२) त्रिलव को क्रमशः १, और २ से गुणा कर दोनों को पृथक् पृथक् लग्न और चतुर्थभाव में जोड़ने से अर्थात् १ × त्रिलव को लग्न में जोड़ने से द्वितीय भाव और २ × त्रिलव को लग्न में जोड़ने से तृतीय भाव बन जाते हैं। इसी प्रकार २ राशि में घटाये हुए त्रिलव को १, और २ से गुणाकर, चतुर्थभाव में जोड़ने से पञ्चम भाव एवम् पञ्चम में जोड़ने से षष्ठ भाव हो जाते हैं। इस प्रकार लग्नादिक ६ भाव पूरे होते हुए लग्नभाव में + ६ = सप्तम, द्वितीय भाव में + ६ = अष्टम···इत्यादि द्वादश भाव हो जाते हैं।

सन्निहित दो भावों के योग में दो से भाग देने पर लब्ध राश्यादिक सन्धि हो जाती है। भाव साधन में अनेक मत मतान्तर आदि के बावजूद गणितागत लग्न में ···१······११···राशियाँ जोड़ने से १२ भाव और लग्न में १५° अंश जोड़ने से लग्न की सन्धि तथा लग्नसन्धि में १५° जोड़ने से द्वितीय भाव हो जाता है। यही शुद्ध भावगणित आर्षगणित है। जैसे यदि लग्नमान = १।१२।३०।४८ तो लग्न की विराम सन्धि = १।१२। ३०।४८ + ०।१५।०।० = १।२७।३०।४८ तथा १।२७।३०।४८ + १५ = २।१२।३०।३० यह द्वितीय भाव की आरम्भ सन्धि हो जाती है यही भावचक्र शुद्ध और मान्य होना चाहिए ॥ २७ ॥

इन्दोर्वा हरिजाद्व्ययस्वगतयोः स्यात्क्रूरयोः कर्तरी
स्वे वक्रयन्त्यऋजुर्महत्यथ गुरौ रिःफे शुभे वा तनौ।
स्वेऽब्जे सौम्यखगेऽपि वा गुरुभृगुज्ञैः केन्द्रकोणेषु वा
चेत्स्तः कर्तरिकारको दिविचरौ नीचस्थितौ सा न हि ॥ २८ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ कर्तरीदोषलक्षणं सापवादं वृत्तेकेनाह—इन्दोर्वेति। इन्दोश्चन्द्रात्सकाशात् वा इत्यथवा हरिजाल्लग्नात् सकाशात् व्ययस्वगतयोः व्ययो

द्वादशं स्वं द्वितीयं तदुभयत्र गतयोः क्रूरयोः पापग्रहयोः सतोः कर्तरी स्यात्। अथ महाकर्तरीलक्षणमाह—स्वे द्वितीये स्थितः क्रूरः यदि वक्री स्यात्, अन्त्ये द्वादशे स्थितः क्रूरो ऋजुर्मार्गगामी स्यात् तदा महती कर्तरी स्यात्। एवं कर्तरीलक्षणमुक्त्वा तद्भङ्गमाह—गुरौ रिःफे प्रान्त्ये सति सा कर्तरी न स्यादेवेत्येको भङ्गः। वा इत्यथवा शुभे गृहे बुधगुरुशुक्राणामन्यतमे तनौ लग्ने सति सा नेति द्वितीयो भङ्गः। स्वे द्वितीये अब्जे चन्द्रे सति सा नेति तृतीयो भङ्गः। वा इत्यथवा सौम्यखगे द्वितीये सति सा नेति चतुर्थो भङ्गः। वा इत्यथवा केन्द्र १, ४, ७, १० त्रिकोणेषु ५, ९ भृगुविदोज्यैः शुक्रबुध-गुरवः तैः सद्भिः। कालाच्चेति सप्तम्यर्थे तृतीया। सा कर्तरी न स्यादेवेति पञ्चमो भङ्गः। वा इत्यथवा कर्तरिकारकौ क्रूरौ दिविचरौ नीचस्थितौ यदा स्यातां तदा सा न स्यादिति षष्ठो भङ्गः। हि अवधारणे॥ २८॥

वागीश्वरी—कर्तरी नाम का महादोष बताया जा रहा है—

कर्तरी नाम कैंची का है। कैंची से कपड़ा कागज-आदि काटा जाता है यहां पर लग्न बीच में १२वें में लग्न की तरफ आनेवाला कोई पाप ग्रह और लग्न से दूसरे स्थान स्थित पाप ग्रह के वक्री होने से उल्टे लग्न की तरफ आ जाने से लग्न की ही (कर्त्तन) काट हो जाने से विवाह लग्न पर कर्त्तरी दोष होने से ऐसे लग्न के समय के विवाह में वरवधू दोनों या एक के लिये अनिष्ट भविष्य की सूचना होती है।

श्लोकानुसार व्याख्या—विवाह कालिक लग्न या चन्द्रमा २ दूसरे और १२वें स्थानों में स्थित पापग्रहों के होने से कर्त्तरी दोष होता है। यदि १२वें स्थान का पाप ग्रह मार्गी हो और दूसरे स्थान का पाप ग्रह वक्री हो तो यह महाकर्त्तरी दोष कहा जाता है। फलतः यह कर्त्तरी (कैंची) लग्न रूप शरीर को काट देती हैं अत एव शुभ कार्यों में कर्त्तरी दोष त्याज्य है।

कर्त्तरी दोष का परिहार—(१) बृहस्पति ग्रह लग्न से १२वाँ हो (२) कोई भी शुभ ग्रह लग्न में हो (३) तृतीय स्थान में चन्द्रमा हो (४) कोई भी शुभ ग्रह द्वितीय स्थान में हो, (५) बुध-शुक्र गुरु केन्द्र १।४।७।१० या कोण ९।५ में हों, (६) कर्त्तरी योगकारक दोनों ग्रह यदि अपनी नीच राशि में हों तो किसी भी एक योग से कर्त्तरी दोष का परिहार हो जाता है॥ २८॥

लग्नं सेततिथिग्रहैर्हृदि भदृग्वेदर्तुभूशेषकै
रोगाग्नीनहरात्ययास्त्यजरुजं रात्र्यर्कमौञ्जीषु च।
अग्नि भौसगृहद्युषु द्युशनिसेवेन्दुष्विनं हारभो-
ज्यारोतिष्वपरं विवाहसितविस्संध्यासु हीने तनौ॥ २९॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ पञ्चकदोषं सापवादमाह—लग्नमिति। लग्नमिष्टलग्नं सेततिथि इता चासौ तिथिश्च इततिथिः गततिथिः तया सह वर्तमानं सेततिथि ग्रहैर्हृत

नवभक्तं कार्यं इभदृग्वेदर्तुभूशेषकैः इभा अष्टौ दृशौ द्वे वेदाश्चत्वारः ऋतवः षट् भूरेकः एतन्मितैः शेषकैः कृत्वा क्रमेण रोगाग्नीनहृरात्यया: स्युः। रोगः प्रसिद्धः अग्निः प्रसिद्धः इनो राजा "राजाधिपः पतिः स्वामी नाथः परिवृढः प्रभुः। ईश्वरो विभुरीशानो भर्तेन्द्र इन ईशिता" इति धनञ्जयः। हृरश्चौरः अत्ययो मृत्युः एते पञ्चकाः स्युरित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। लग्नं शुक्लप्रतिपदादिगततिथियुक्तं कृत्वा नवभिर्हृत्वा अष्टशेषे रोगः द्विशेषे अग्निः चतुःशेषे राजा षट्शेषे चौरः एकशेषे मृत्युः। अथैते कुत्र वर्ज्या इत्याह। रात्र्यर्कमौञ्जीषु रुजं त्यज रात्रौ अर्के आदित्यवारे मौञ्ज्यां रुजं त्यज। भौमादयः प्रसिद्धास्तेषु द्युशनिसेवेन्दुषु इनं त्यज द्युर्दिवा शनिः शनिवारः सेवा स्वामिसेवनं इन्दुः सोमवारः एषु इनं राजानं राजपञ्चकं त्यज। ईज्यारेतिषु हरं त्यज चौरं त्यज ईज्यो गुरुवारः आरो भौमवारः इतिर्गतिर्यात्रेतियावत् आसु चौरं त्यजेत्यर्थः। विवाहसितवित्सन्ध्यासु अपरमुर्वरितं मृत्युमित्यर्थः। विवाहः प्रसिद्धः सितः शुक्रवारः वित् बुधवारः, संध्या संध्याकालः आसु मृत्युं त्यजेति। अस्यापवादमाह—कस्मिन्सति तनौ लग्ने हीने हीनबले सति बलिष्ठे लग्ने सति एषां किमपि न बाधा इत्यर्थः। तथा च ज्योतिःप्रकाशे "रोगं चौरं त्यजेद्रात्रौ दिवा राजाग्निपञ्चकम्। उभयोः संध्ययोर्मृत्युमन्यकाले न निन्दितम्" इति। "तत्रापि यत्र लग्नं चेद् बलाढ्यं तच्च निष्फलम्" इति। बलं जातकाज्ज्ञेयम्। लघुजातके 'अधिपयुतो दृष्टो वा बुधगुरुनिरीक्षितश्च यो राशिः। स भवति बलवान्न यदा युक्तो दृष्टोऽपि वा शेषैः" इत्यादि ॥ २९ ॥

वागीश्वरी—बाण दोष बताया जा रहा है—

शुक्ल पक्ष की प्रतिपद से बीती हुई तिथियों को लग्न राशि में जोड़कर ९ से भाग देने से, शेष ८ में रोगवाण, २ शेष में अग्निबाण, ४ शेष में राजबाण, ६ शेष में चोर बाण और १ शेष में मृत्युबाण होता है।

रात्रि रविवार और उपनयन संस्कार में रोगबाण त्याज्य है, मंगलवार, घर गृहस्थी के कार्यों और दिन में अग्निबाण त्याज्य है। दिन में, शनिवार को आजीविका (नौकरी) और सोमवार को राजबाण का त्याग, गुरु और मंगल वारों, यात्रा में चोर बाण का त्याग और विवाह संस्कार में शुक्र और बुध बुधवारों में तथा सन्ध्या समयों में मृत्यु बाण का त्याग करना चाहिए।

उक्त कथित समयों में कार्य विशेष में जिस बाण विशेष को त्याज्य कहा गया है उसमें शुभ कार्य नहीं करने चाहिए।

साथ ही बाण दोषों का परिहार भी—निर्बल लग्न की स्थिति में बाणों का त्याग कहा गया है। लग्न के बलशाली होने से बाण दोष नहीं के बराबर कहा गया है।

जिस लग्न पर उस लग्नपति ग्रह और उस लग्नपर शुभग्रहों की दृष्टि या योग होने से वह लग्न विशेष बली कही जाती है।

श्री "रामाचार्य" "मुहूर्त्तचिन्तामणि" नामक प्रसिद्ध मुहूर्त्त ग्रन्थ प्रणेता ने बाण व्याख्यान में "दाक्षिणात्यप्रसिद्धः" वाण दोष दक्षिणभारत में ही विशेष प्रचलित कहा है उत्तर भारत अर्थात् हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये आर्यावर्त्त देश में यह बाण दोष की चर्चा नहीं है ॥ २९ ॥

जन्मर्क्षोदयतो मृती तदधिपौ तद्गाश्च ये तद्भव-
स्तद्भं चाङ्गगमन्तकृत्खलु न चेत्तत्स्वामिमित्रैकता ।
शस्तोऽशो घटभीरुयुग्मधनुषां विज्ञास्तभांशौ तथा
चन्द्रापुण्ययुतौ मृतिं वितनुतो दैन्यं च हीनौजसः ॥ ३० ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ भवनांशयोः शुद्धिं सापवादमाह—**जन्मर्क्षेति ।** जन्मर्क्षोदयतः जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यां सकाशात् तृतीये अष्टमभवने यौ तदधिपौ तयोर्मृत्युभवनयोः स्वामिनौ ये च तद्गाः मृत्युभवनगताः स्युः तेषाम् अंशो नवांशः अङ्गगो लग्नगतः च परं तेषां भं राशिः अङ्गगं लग्नगतं सत्तदा खलु निश्चयेन अन्तकृत् मरणकृत् स्यात् । तदा कदा चेद्यदि तत्स्वामिमित्रैकता न स्यात् । तयोर्जन्ममृत्युभवनयोः स्वामिनौ तत्स्वामिनौ तयोः । अथवाऽयमर्थः । तयोर्जन्मनिन्द्यभयोः स्वामिनौ तत्स्वामिनौ तयोर्यदि मित्रैकता न स्यात् । मित्रं च एकश्च मित्रैकौ मित्रैकयोर्भावो मित्रैकता सा चेन्न स्यात् । अनेन सर्वस्योक्तस्य सार्थकता भवति । यदि तयोर्मित्रता स्यात्, अथवा एकता स्यात्तदा नायं दोष इत्यर्थसिद्धम् । वसिष्ठः "यस्याष्टलग्ने तदधीश्वरे वा राशौ तदीशेऽथ विलग्नगे वा । स मृत्युमाप्नोति तदा मनोजस्त्रिनेत्रभालाम्बकवह्निनेव" इति । अन्यच्च "जन्मर्क्षजन्मलग्नाभ्यां रन्ध्रेशावष्टमौ च यौ । विलग्नसंस्थितानेतांस्तद्राश्यंशानपि त्यजेत्" इति । चूडामणौ "लग्नं व्यलिवृषत्याज्यमष्टमं सर्वकर्मसु । तत्राप्येकेशवास्त्येव ततस्तन्नैव दोषकृत् । न दोषोऽष्टमलग्नस्य यदि जन्मेशरन्ध्रपौ । सुहृदौ चेत्तदा कार्यं मङ्गलं मुनयो विदुः" इति । चतुर्थद्वादशभवनयोः दोषो नात्रोक्तः । यत् "चतुर्थं द्वादशं लग्नं शस्तं यदि गुणान्वितम्" इति । पूर्वाचार्यमतं हृदि धृत्वा सगुणमेवाङ्गीकृतं तत्पुरस्ताद्वक्ष्यति । न च तनुं पञ्चेष्टखेटोनितां तनुं लग्नमिष्टाश्च ते खेटाश्च इष्टखेटाः पञ्च च ते इष्टखेटाश्च पञ्चेष्टखेटाः इष्टग्रहैः पञ्चभिः शुभदैः इष्टैरूनितं हीनं लग्नं चेद्वेदवर्गोनितमिति सगुणस्यैवाङ्गीकारात् किं व्यर्थविस्तरेणेतिभावः । अंशशुद्धिमाह—शस्तोऽश इति । घटयुग्मभीरुधनुषा अंशः शस्तः स्यात् घटस्तुला युग्मं मिथुनं भीरुः कन्या धनुः प्रसिद्धम् एषामंशो नवांशः प्रशस्तः स्यात् । तत्रापि विशेषमाह—विज्ञास्तभांशाविति । विगतः ज्ञो बुधो येभ्यस्ते विज्ञाः ते च ते अस्ताश्च तेषां भांशौ राशिनवांशौ मृतिं वितनुतः । अर्थादस्तमितस्यापि बुधस्य भांशौ दोषकरौ न भवतः । तथा चन्द्रापुण्ययुतौ चन्द्रेण पापग्रहेण वा युक्तौ भांशौ मृतिं मरणं वितनुतः कुरुतः वधूवरयोरितिशेषः । हीनौजसो निर्बलस्य भांशौ दैन्यं दीनतां बितनुतः ॥ ३० ॥

वागीश्वरी—दूषित लग्न नवांश के विवाह में मृत्यु योग बताया जा रहा है—

जन्म लग्न, जन्म राशि से आठवीं ८ राशि स्वामी ग्रह और इस स्वामी ग्रह के नवांश राशि यदि विवाह लग्न हो तो ऐसी लग्न की स्थिति के वैवाहिक सम्बन्ध से मृत्यु होती है। यदि जन्म राशि का अधिपति ग्रह और अष्टम राशि के स्वामी ग्रहों में परस्पर मित्रता हो या दोनों एक हों तो मृत्यु दोष दूर हो जाता है।

तुला कन्या धनु और मीन राशियों के नवांश विवाह लग्न में शुभ फलद कहे गये हैं। फलतः अष्टम में होने पर भी इनका नवांश अशुभ नहीं होता।

बुध ग्रह को छोड़कर अन्य ग्रह यदि अस्त हो गये हैं तो इनके नवांशों का भी विवाह मृत्यु कारक कहा गया है।

अस्तंगत होते हुए भी बुध ग्रह के लग्न नवांश शुभफलद होते हैं। चन्द्रमा और पाप ग्रह से युत लग्न नवांशों का भी विवाह लग्न मृत्युप्रद होता है। फलतः लग्न और लग्नगत नवांश राशि पर बैठे हुए चन्द्रमा या कोई पाप ग्रह शुभ फलद नहीं कहे गये हैं। दुर्बलग्रह के लग्न और नवांश की स्थिति यदि लग्न में होती है तो ऐसे लग्न या नवांश के विवाह में दरिद्रता होती है। इसलिये विवाह लग्न में उक्त दोष कारक लग्न नवांश की स्थितियों से रहित शुभ लग्न नवांश के समय विवाह सम्बन्ध उत्तम होगा अर्थतः सब स्पष्ट है॥ ३०॥

नो वर्गोत्तमतो विनान्तिमलवं दद्याच्चरर्क्षे चरं
चन्द्रे तौलिमृगास्यगे न च तनुं पञ्चेष्टखेटोनिताम्।
मेषादिष्वजनक्रतौलिककुलीराद्या नवांशाः क्रमा-
दिष्टात्पूर्वनवांशका दशहतास्त्र्याप्ता लवाद्या तनुः॥ ३१॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ विशेषान्तरमाह—**नो वर्गोत्तमत इति**। वर्गोत्तमतः वर्गोत्तमेन विना अन्तिमलवं चरमनवांशं नो दद्यात् यल्लग्नं स एव नवांशो वर्गोत्तमः। तथा चरर्क्षे चरलग्ने चरं नवांशं नो दद्यात् कस्मिन् सति चन्द्रे तौलिमृगास्यगे तुलामकरगे सति एतच्चरत्रययोगं नो दद्यादित्यर्थः। अत्र चरचतुष्टयमध्ये चन्द्रे तौलिमृगास्यगे इत्येवोक्तं तन्मेषकर्कटयोर्विवाहनक्षत्राभावात्, तथा तनुं लग्नं पञ्चेष्ट-खेटोनितां नो दद्यात् यत्र लग्ने पञ्च इष्टग्रहाः न भवन्ति तल्लग्नं न देयमित्यर्थः। अथेष्टनवांशाल्लग्नसाधनमाह—तत्र तावन्मेषादिषु आद्यांशानाह—मेषादिष्विति। मेषादिषु अजनक्रतौलिककुलीराद्या नवांशाः क्रमेणोक्ताः। तद्यथा मेषे अजाद्याः वृषे नक्राद्या मकराद्याः मिथुने तौलिकाद्याः तुलाद्याः कर्कटे कुलीराद्याः कर्कटाद्याः एवं पुनः सिंहे मेषाद्याः कन्यायां मकराद्याः तुलायां तुलाद्याः वृश्चिके कर्काद्याः पुनर्धनुषि मेषाद्याः मकरे मकराद्याः कुम्भे तुलाद्याः मीने कर्काद्याः नवांशा उक्ता इत्यर्थः। इष्टादंशात्पूर्वनवांशकाः गतांशाः दशहताः दशगुणिताः त्र्याप्ताः

त्रिभिर्हृताः लवाद्या भागाद्याः तनुः लग्नं स्यात्। अत्रोदाहरणम्। इष्टलग्नं मेषः तत्र मेषादिका अंशाः प्रवर्तन्ते इष्टांशः कन्यांशः आद्यात्षष्ठः पूर्वनवांशकः पञ्च५ एते दशहताः ५० त्र्याप्ताः लवादि फलं लब्धं १६, ४० इष्टलग्नसहितं राश्यादि १६, ४० ॥ ३१ ॥

वागीश्वरी—विवाह लग्न में अन्तिम नवांश त्याज्य कहा है—

विवाह संस्कार लग्न में किसी भी लग्न का अन्तिम नवमांश त्याग देना चाहिए। यदि लग्न और नवांश राशियों का स्वामी एक ही ग्रह हो उस वर्गोत्तम संज्ञक लग्न नवांश में अन्तिम नवांश भी ठीक होता है। मिथुन कन्या धनु और मीन···आदि लग्नों के और अन्तिम नवांशों का स्वामी एक ही ग्रह होने से ये वर्गोत्तम लग्न नवांश होने से ये लग्न नवांश का विवाह संस्कार शुभ होता है। यदि चन्द्रमा तुला और मकर राशि का तो चर राशियों में चर नवांश वर्गोत्तम नवांश होने के बावजूद चर-चल होने से यहां ऐसा वर्गोत्तम नवांश ग्राह्य नहीं होता है। तुला और मकर के अतिरिक्त मेष और कर्क के चन्द्रमा में भी चर नवांश शुभ कहा गया है। जिस लग्न से शुभ फलद ग्रहों की संख्या ५ तक नहीं है उस लग्न का भी विवाह शुभद नहीं होता।

नवांश ज्ञान विधि—३६० अंशों में राशियाँ १२ होती हैं। अतः ३६० ÷ १२=३० अंश की एक राशि तथा ३० ÷ ९ = ३ अंश २० कला का एक नवांश होता है।

जिस राशि में अभीष्ट नवांश का ज्ञान आवश्यक हो तो उस राशि की गत नवांश संख्या को १० से गुणा कर ३ से भाग देने से लब्धि उस राशि के गत अंश होते हैं। प्रत्येक राशि में नवांशों के अंश (१) ३।२०। (२) ६।४० (३) १०।० (४) १३।२० (५) १६।४० (६) २०।०, (७) २३।२०, (८) २६।४० और नव नवांश २६ अंश ४० कला + ३।२० = ३० अंश = १ राशि होती है। यदि हमें मेष राशि के वृश्चिक नवांश की अंशादि संख्या ज्ञात करनी है तो वृश्चिक राशि संख्या ८वीं गत संख्या ७ को १० से गुणा कर ७० में ३ से भाग देने से २३।२० फलतः २३ अंश २० कला में ३ अंश २० कला जोड़ने से २६ अंश ४० कला तक मेष राशि में वृश्चिक राशि का नवांश सुखेन ज्ञात हो जाता है ॥ ३१ ॥

लग्नांशौ स्वपदृग्युतौ नृसुखदौ वाऽन्योन्यपाढ्येक्षितौ
ताभ्यां सप्तमकौ तथैव युवतेर्नो चेत्तयोर्मृत्युदौ।
द्विघ्नेऽर्कोनविलग्नके रविसितज्ञेन्द्वार्किजीवासृजो
होरेशा द्युपतेः खलेऽह्नि खलजा नेष्टा शुभे मध्यमा ॥ ३२ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथोदयास्तशुद्धिमाह—लग्नांशाविति। लग्नांशौ लग्ननवांशौ स्वपदृग्युतौ स्वस्वपतिना दृष्टौ युतौ वा सन्तौ नृसुखदौ वरस्य सुखदौ स्याताम्। वा इत्यथवा अन्योन्यपाढ्येक्षितौ अन्योन्यपतिना आढ्यौ ईक्षितौ वा सन्तौ नृसुखदौ स्याताम्। इत्युदयशुद्धिमुक्त्वा अस्तशुद्धिमाह—ताभ्यां सप्तमकौ तथैवेति। ताभ्यां

लग्नांशाभ्यां सकाशात्सप्तमकौ सप्तमलग्नतदंशौ तथैवेति पूर्ववत्स्वपदृग्युतौ युवतेः कन्यायाः सुखदौ स्याताम् वा इत्यथवा तौ सप्तमलग्नसप्तांशकौ अन्योन्यपाद्ध्येक्षितौ युवतेः सुखदौ स्याताम्, नो चेत् एवं चेत्तन्न स्यात् तदा तयोर्मृत्युदौ स्यातां क्रमेण। अथेष्टकाले होरासाधनमाह—द्विघ्ने इति। अर्कोनविलग्नके द्विघ्ने कृते सति द्युपतेः सकाशात् होरेशा भवन्ति। तेषां गणनाक्रममाह। ते के होरेशाः रविसितज्ञेन्द्वार्कि-जीवासृजः रविः प्रसिद्धः सितः शुक्रः ज्ञो बुधः इन्दुश्चन्द्रः आर्किः शनिः जीवो गुरुः असृङ्मङ्गलः। खलेऽह्नि पापवारे खलजा होरा नेष्टा शुभे मध्यमा स्यात्। अर्थाच्छुभ-होरा शुभवारे शुभतरा पापवारे मध्यमा स्यात्। अत्रोदाहरणम् गुरुवारे इष्टार्कः १, २५, ८ इष्टं लग्नं ४, १०, ०, इदम् अर्कोनं २, १४, ५२ इदं द्विघ्नं ४, २९, ४४ ऊर्ध्वाङ्कमाना गता होराश्चतस्रः वर्तमाना पञ्चमी होरा सा गणनाक्रमेण द्युपतेर्गुरोः सकाशाद् गणनीया जीवासृजादिगणनया बुधहोरावर्तना ॥ ३२ ॥

वागीश्वरी—लग्न सप्तम शुद्धि के साथ होरा ज्ञान—

विवाह लग्न और नवांश दोनों अपने अपने स्वामी ग्रहों से युत हों या उनसे देखे जाते हैं, या लग्न नवांशेश से और नवांशेश लग्नेश से युत दृष्ट लग्न का विवाह वर के लिये शुभ भविष्य सूचक, एवं लग्न और लग्न नवांश से सप्तमभाव, तथा सप्तमेश का नवांश, ये दोनों अपने अधीश ग्रहों से युत दृष्ट हों या परस्पर पति से युत दृष्ट हों तो कन्या के भविष्य गृहस्थ जीवन को सुखदायी करते हैं। विपरीत उक्त ग्रह स्थितियों में वर-कन्या दोनों के अनिष्ट भविष्य सूचक कहे गये हैं।

होरा साधन—स्कन्धत्रय ज्यौतिष के मर्मज्ञ आचार्य बराहमिहिर ने होरा शब्द की व्युत्पत्ति के प्रसंग में अहोरात्र ६० घटी = २४ घण्टा अर्थात् २ घटी ३० पल या १ घण्टे की एक होरा कहते हुये अहोरात्र शब्द के प्रथम वर्ण अ और अन्तिम वर्ण त्र के लोप से होरा शब्द की मौलिकता बताई है। यहाँ पर होरा शब्द से सातों वारों का सम्बन्ध पहिले होरा साधन गणित बताते हुए किसदिन कब कौन ग्रह होरा होगी जिसे ग्रन्थकर्त्ता आचार्य ने भी बताया है कि उदय कालीन स्पष्ट सूर्य का लग्न की राश्यादि में घटाकर शेष जो बचे उसे दो (२) से गुणा कर राशि संख्या तुल्य गत होरा स्वामी और गत में १ जोड़ने से वर्त्तमान होरा स्वामी उस दिन होता है। जातक का जन्म किस होरा में ? यहां यह समय सम्बन्धी प्रत्येक दिन का काल होरा समझनी चाहिए। दिनपति से क्रमशः सू. शु. बु. सोम. श वृ. और मंगल क्रमशः ये होरा के स्वामी होते हैं।

अर्थात्—रविवार के दिन—सू. शु. बु. चं. श. वृ. और मं

सोमवार के दिन—चं. श. वृ. मं. सू, शु. बु.

बुध ,, ,,—बु. चं. श. वृ. म. सू. शु.

बृहस्पति ,, ,,—वृ मं. र. शु. बु. चं. श.

शुक्र के दिन—शु. बु. चं श. बृ. मं. सू.

शनिवार के दिन—श. वृ. मं सू. शु. बु. चं.

उदाहरण—जैसे रविवार के दिन औदयिक सूर्यस्पष्ट ०।१५–लग्न = १।२५ अतः १।२५––१५ = १।१० = शेष। अतः शेष × २ = १।१०। × २ = २।२० तीसरी गत होरा और वर्तमान चौथी होरा अर्थात् रविवार के दिन चन्द्रमा की होती है। गत होरा तीसरे बुध की स्पष्ट है ॥ ३२ ॥

लग्नेन्द्वोः स्मरगे शुभाशुभखगे स्तश्चाधिमृत्यू ततोऽ-
ब्जाङ्गोनात्कृतमौर्विकात्खखयमैर्लब्धं यदाब्धीषवः।
सन् स्विष्टोच्चनिजांशभेऽस्तमखिलं पश्येदरित्र्यायगे
सूर्ये वा ख १० जल ४ आद्य १ कोणग ९, ५ शुभो
वाऽब्जं प्रपश्येन्न तत् ॥ ३३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ लग्नेन्द्वोः परमजामित्रग्रहज्ञानार्थमुपायमाह। तावत्तस्य फलमाह—**लग्नेन्द्वोरिति।** लग्नेन्द्वोः स्मरगे सप्तमगे शुभाशुभखगे सति तदा आधिमृत्यू स्तः शुभे सति आधिर्मनस्तापोऽस्ति अशुभे सति मृत्युरस्ति, तदा कदा यदा ततः स्मरगाद् ग्रहात् अब्जाङ्गोनात् चन्द्रलग्नोनात् चन्द्रात् सप्तमस्थश्चन्द्रोनः लग्नात्सप्तमस्थो लग्नोन इत्यर्थः। तस्मात् कृतमौर्विकात् कृतकलिकात् खखयमैर्द्विशतया लब्धम् अब्धीषवः चतुःपञ्चाशत्स्यात् तदैव आधिमृत्यू स्तः अन्यथा नेत्यर्थः। तत्रोदाहरणम् पूर्वकल्पितमिदं लग्नं ४, १०, ७ तत्सप्तमगोऽयं कश्चिद्ग्रहः १०, ११. ७ अयं लग्नोनः २६, १७ अयं कृतमौर्विकः १०, ८, १७ अस्मात् खखयमैः २०० लब्धं ५४। अथास्य भङ्गमाह—सन्निति। सन् सद्ग्रहः स्विष्टोच्चनिजांशभे वर्तमानः अस्तं सप्तमभवनम् खिलं पूर्णं यदि पश्येत्तदा तज्जामित्रं न स्यात्। शोभनश्चासौ इष्टश्च स्विष्टः शुभमित्रं स्विष्टश्च उच्चं च निजश्च स्विष्टोच्चनिजाः अंशश्च भं च अंशभं स्विष्टोच्चनिजानामंशभं तस्मिन् स्विष्टोच्चनिजांशभे स्विष्टस्य शुभमित्रस्य अंशे नवांशे भे राशौ वा वर्तमानः अथवा उच्चस्यांशे भे वा वर्तमानः अथवा निजस्य स्वस्य अंशे भे वा वर्तमानः अस्तमखिलं पश्येत्तदा तन्नेति षड्भङ्गाः। वा इत्यथवा अर्के रवौ अरित्र्यायगे सति षष्ठतृतीयैकादशगे सति तन्नेति त्रयो भङ्गाः। वा इत्यथवा खजलाद्यकोणगः शुभः अब्जं चन्द्रमसम्पूर्णं यथास्यात्तथा ईक्षेत् तदा तन्न खं दशमं जलं चतुर्थं आद्यं लग्नं कोणे नवपञ्चमे एषामन्यतमं गतोऽन्यतमः शुभग्रहश्चन्द्रमसं निखिलदृष्टया यदि पश्येत्तदा जामित्र न स्यादित्यर्थः। एते पञ्चभङ्गाः सर्वे मिलिताश्चतुर्दश भङ्गाः संपद्यन्ते ॥ ३३ ॥

वागीश्वरी—परिहार पूर्वक जामित्र दोष बताये जा रहे हैं––

लग्न और चन्द्रमा से सप्तम में शुभ ग्रह के रहने से मनस्ताप और पापग्रह से मृत्यु होती है। सूक्ष्मता के लिये, सप्तम स्थान स्थित ग्रहस्पष्ट में लग्न और चन्द्रस्पष्ट को घटाकर २०० से भाग देने पर ही ५४ संख्या तुल्य यदि लब्धि हो तो ५५वाँ नवांश

जामित्र होता है। अर्थात् लग्न चन्द्रमा के नवांश से ५५ वें नवांशस्थ शुभ व पाप ग्रह की स्थिति से प्रबल जामित्र दोष होता है अन्यथा--दोष नहीं। यदि लग्न = ४।१५।०।० और से सप्तम = १०।१५।०।० = सप्तम भाव अतः १०।१५।०।०--४।१५।०।० = ६।०।०।० की कलाओं में वर्तमान २०० का भाग देने से $\frac{१८\cancel{०} \times ६\cancel{०}}{२\cancel{०}\cancel{०}} = \frac{१०८}{२}$ = ५४ लब्धि में वर्तमान जामित्र दोष प्रबल होता है।

जामित्र भङ्ग--कोई भी शुभ ग्रह, शुभ ग्रह की राशि में, मित्र, अपने, उच्च अपने नवांश, या अपनी राशि में स्थित होकर लग्न या चन्द्रमा से सप्तम भाव को पूर्ण दृष्टि से देख रहा हो तो जामित्र दोष नहीं होता। अथवा सूर्य से तृतीय, षष्ठ, एकादश में हो अथवा कोई भी शुभ ग्रह १०।४।९।५।१ स्थान में होकर पूर्ण दृष्टि से चन्द्रमा को देख रहा हो तो भी जामित्र दोष का भंग हो जाता है॥ ३३॥

त्र्यश्रं कोणमबायुरैनिगुरुभूपुत्राः क्रमात्पूर्णया
दृष्टयाऽन्ये चरणोत्तरं च सकलाः पश्यन्ति पूर्णं द्युनम्।
भं होरा त्रिलवो नवांशक इनांशस्त्रिंशदंशः क्रमा-
द्वर्गाः सन् शुभजः परैस्तु सुहृदो नाब्ध्यूनवर्गा तनुः॥ ३४॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ दृष्टिलक्षणमाह—**त्र्यश्रमिति**। त्र्यश्रं तृतीयदशमं कोणं नवपञ्चमम् अबायुश्चतुर्थाष्टमं एतद्युग्मत्रयं क्रमेण ऐनिगुरुभूपुत्राः शनिगुरुभौमाः पूर्णया दृष्ट्या पश्यन्ति। शनिः त्र्यश्रं ३, १० गुरुः कोणं ९, ५ भूपुत्रः अबायुः ४, ८ एते पूर्णया दृष्ट्या पश्यन्ति। तथा चैतद्युगमत्रयमन्ये ग्रहाश्चरणोत्तरं यथा स्यात्तथा पश्यन्ति। तद्यथा त्र्यश्रम् ३, १० एकपाददृष्ट्या पश्यन्ति, कोणं ९, ५ द्विपाददृष्ट्या, अबायुः ४, ८ त्रिपाददृष्ट्या पश्यन्ति, सकला ग्रहाः द्युनं सप्तमं पूर्णं पश्यन्ति। अथ षड्वर्गसाधनं विवक्षुस्तावन्नामान्याह—**भं होरेति**। भं गृहं होरा राश्यर्द्धं त्रिलवो दृक्काणः नवांशकः प्रसिद्धः इनांशो द्वादशांशः त्रिंशदंशः प्रसिद्धः क्रमादेते वर्गाः प्रोक्ताः। शुभजः शुभग्रहजो वर्गः सन् शुभः प्रोक्तः। परैः आचार्यैः सुहृदो मित्रस्य वर्गः सन् प्रोक्तः। अब्धिवर्गोनकमङ्गं चतुर्वर्गोनं लग्नं न सत् प्रोक्तम्॥ ३४॥

वागीश्वरी—परस्पर में ग्रहों की दृष्टि और ६ षड्वर्ग विचार--

प्रत्येक ग्रह अपने से सप्तम स्थान पर पूरी दृष्टि से देखता है तत्रापि शनि ग्रह अपने से तीसरे और दशवें, गुरु पञ्चम नवम पर और मङ्गल चतुर्थ-अष्टम को पूर्ण दृष्टि से देखता है। अन्य ग्रह (सूर्य-चन्द्र-बुध और शुक्र) अपने से ३।१० स्थान को एक चरण से, ५।९ को दो चरण से और ४।८ स्थान को ३ चरणों से देखते हैं।

षड्वर्ग विचार- फलित ज्योतिष के अन्य जातक आदि ग्रन्थों में, एक राशि के $\frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{१}{४}, \frac{१}{५} \cdots \frac{१}{३०} \cdots\cdots \frac{१}{६०}$ अर्थात् १५ अंश, १० अंश, ७।३०' ६ अंश-१अंश···और आधे

अंश = ३० कलात्मक विभागों के अधिपति ग्रहों का विचार स्पष्ट यत्र तत्र सर्वत्र उपलब्ध है। यहाँ पर सविशेष होने से एक राशि के (१) राशि (२) होरा, (३) द्रेष्काण, (४) नवांश (५) द्वादशांश और (६) त्रिशांश ये ६ विभाग और प्रत्येक विभाग का अधिपति ग्रह कौन ? इत्यादि विचार के साथ जिस ग्रह स्पष्ट या जिस लग्न में शुभ ग्रहाधिक से शुभ बल शालीनता और अशुभ ग्रहाधिक बल से उस ग्रह की अशुभता बताई जा रही है। ६ पूर्वभागों में अशुभ विभाग ३, शुभ विभाग ३ से वह लग्न या ग्रह सामान्य और बल में शुभ ग्रह संख्या ४, ५, या ६ से वह ग्रह विशेष शुभ फलद पापग्रह से पाप फलप्रद कहा जाता है। फलतः वैवाहिक लग्न में ४ या इससे अधिक शुभग्रह अवश्य आने चाहिए ॥ ३४ ॥

प्रोक्तं प्राग्गृहमोजभेऽर्कशशिनोर्होरे समेऽब्जार्कयो-
र्दृक्केट् प्राक् सुतधर्मपो नवलवः प्रोक्तः स्वतोऽर्कांशकः ।
शुक्रज्ञेज्ययमासृजां शरमुनीभार्थेषवो युग्मभे
त्रिंशांशा विषमे त एव गदिता व्यस्ताश्च षड्वर्गकाः ॥ ३५ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथैषां साधनमाह—**प्रोक्तमिति।** यस्य ग्रहस्य यद्गृहं तत् प्राक् प्रोक्तम्। भेशामंशुबुचमित्यादि। अथ होरासाधनमाह—ओजभे विषमराशौ अर्कशशिनोर्होरे क्रमेण भवतः। प्रथमपञ्चदशभागेषु अर्कस्य होरा अपरपञ्चदशभागेषु शशिनश्चन्द्रस्य होरा स्यात्। अथ समराशौ अब्जार्कयोर्होरे क्रमेण भवतः। प्रथमं पञ्चदशभागेषु चन्द्रस्य होरा अपरपञ्चदशभागेषु अर्कस्य होरा स्यात्। अथ दृक्काण-साधनमाह—दृक्केडिति। दृक्को दृक्काणः त्रिविधो दशदश भागात्मकः तस्य ईट् ईशः प्राक् सुतधर्मपो ज्ञेयः। प्राग्लग्नं सुतः पञ्चमं धर्मो नवमं तान् पातीति प्राक्सुतधर्मपः। एतदुक्तं भवति। "प्रथमदृक्काणस्वामी लग्नपतिः द्वितीयदृक्काणस्वामी पञ्चमपतिः तृतीयदृक्काणस्वामी नवमपतिः स्यात्" इति। नवलवः प्रोक्तः। प्रागेव शस्तोंऽश इत्यादि। अथ द्वादशांशसाधनम्। स्वतोऽर्कांशकः स्वस्मात् इति। स्वतः लग्नत इत्यर्थः। अर्कांशको द्वादशांशो ज्ञेयः। तद्यथा राशिभागास्त्रिंशत् ३० एते द्वादशभि-र्भाजिताः लब्धं सार्द्धं भागद्वयं २½ इदं द्वादशांशमानं तदेव गणनीयं सार्द्धभागद्वयं लग्नस्य द्वादशांशः तावदेव तत्पुरस्थस्येति लग्नस्योत्पन्नभागावसानपर्यन्तं गणयेत्। यस्मिन् राशौ विश्रामः तत्स्वामी दशांशनाथः स्यात्। अथ त्रिंशांशसाधनम्। शुक्रेति। शुक्रः प्रसिद्धः ज्ञो बुधः ईज्यो गुरुः यमः शनिः असृक् मंगलः एषां पञ्चानां क्रमेण शरमुनीभार्थेषवः स्युः। शराः पंच मुनयः सप्त इभाः अष्टौ अर्थाः पञ्च एते भागाः शुक्रादीनां स्युः। एतद्युग्मभे समराशौ ज्ञेयम्। एतदपि लग्नोत्पन्नभागावसानपर्यन्तं गणयेत् यत्र विश्रान्तिः स त्रिंशांशनाथः। विषमे राशौ त एव गदिता ग्रहा भागाश्च व्यस्ता विलोमा ज्ञेयाः। इति षड्वर्गो निरूपितः ॥ ३५ ॥

वागीश्वरी—३४ श्लोक में कहे गये ६ वर्गों का साधन--

१–राशीश्वर पहिले भी कहा गया है--

२–प्रत्येक राशि ३० अंश के आधे ३० ÷ २ = १५° में एक और १६वें से ३० अंश तक में दूसरी होरा होती हैं। विषम राशि लग्नों में प्रथम १५ अंश तक सूर्य, एवं १६वें से ३० तक चन्द्रमा की एवं समराशियों में (१) चन्द्र और (२) सूर्य की होरा होती हैं।

३–द्रेष्काण एक राशि ३० ÷ ३ =१०, १० अंश का एक द्रेष्काण होता है। किसी भी राशि में पहिले द्रेष्काण का स्वामी उसी राशि का स्वामी, दूसरे ११–२० तक उस राशि से पाँचवीं और २१–३० तक उस राशि से नवम राशि का स्वामी होता है।

४–नवांश पहिले ३०वें श्लोक में बताया गया है।

५–द्वादशांश–प्रत्येक राशि के ३० अंशों में १२ का भाग देने से ३० ÷ १२ = २ अंश ३० कला का एक द्वादशांश स्पष्ट है। राशि के अंशों को दूना कर पाँच का भाग देने से लब्ध गत द्वादशांश होगा जैसे किसी लग्न के जैसे मीन लग्न के २६ अंशों को दूना करने से ५२ में ५ का भाग देने से १०वाँ द्वादशांश गत और यहाँ पर ११वाँ द्वादशांश मीन से ११ तक मकर का स्वामी शनि ग्रह द्वादशांश का मालिक होगा।

सम राशियों में ५ अंश तक शुक्र, ६–१२ तक बुध, १३-२० तक बृहस्पति २०–२५ तक शनि और २५–३०, तक मंगल एवं विषम राशियों में विपरीत त्रिशांश होते हैं। जैसे ५° तक मंगल ६ से १० तक बुध ११-१८ तक बृ०,१९–२५ तक श० और २५–३० तक मंगल ग्रह का त्रिशांश होता है स्पष्ट है ॥ ३५ ॥

संक्रान्त्यन्तरहोहृताद्दिनगणादाप्तं भपूर्वो रवि-
र्मेषाद्यातभयुग्युतोऽयनलवै रात्रौ स षड्भः स च।
तद्भोग्यांशनिजोदयाहतिखरामाप्तं तथैवाङ्गतो
भुक्तांशाकलितेन युग्विवरगैः कालः स्फुटो भोदयैः ॥ ३६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथेष्टकालसाधनं विवक्षुस्तावत्सूर्यसाधनमाह—**संक्रान्त्यन्त**रिति। अन्तः अन्तरालं तत्र अहानि दिनानि संक्रान्तेरन्तरहानि संक्रान्त्यन्तरहानि तैर्हृता भागितः एवंविधो दिनगणः संक्रान्तेः सकाशात् इष्टदिनसमूहः। तस्माद्यदाप्तं लब्धं स भपूर्वो राशिभागकलादिको रविः स्यात्। किंभूतो रविः मेषात्सकाशात् यातभयुक् गतराशियुक् सूर्यभुक्तराशियुगित्यर्थः। स तात्कालिको रविः स्यादित्यर्थः। अत्रोदाहरणम्—तुलावृश्चिकसंक्रान्त्योरन्तरदिनानि अयनलवैर्युक्तः कार्यः। अयनांशाः ग्रन्थान्तरे प्रसिद्धाः "कृताब्ध्यब्ध्यूनिते शाके षष्ट्याप्ता अयनांशकाः" इति। सः अयनलवयुतो रविः रात्रौ रात्रीष्टकालसाधनविषये सषड्भः कार्यः। षड्राशियुक्तः कार्यः। तद्भोग्यांशनिजोदयाहतिः खरामाप्तं कालः स्यात्। तस्य सायनांशस्य रवेः भोग्यांशाः तद्भोग्यांशाश्च निजोदयाश्च तेषामाहतिः गुणनं तस्याः सकाशात् खरामाप्तं

त्रिशता भक्तं लब्धं सूर्यस्य भोग्यकालः स्यात्। निजोदयाः स्वदेशीयराश्युदयाः ते ब्रह्मतुल्यादिभ्योऽवगन्तव्याः। कथंभूतः कालः तथैवाङ्गतो भुक्तांशाकलितेन युक् तथैव सूर्यस्य भोग्यकालसाधनरीत्या अङ्गतः लग्नात् भुक्तांशाकलितेन भुक्तांशैर्भुक्तभागैः आकलितेन कालेन युक् युक्तः। एतदुक्तं भवति इष्टलग्नम् अयनलवयुक्तं कृत्वा तद्भुक्तांशैः निजोदया गुणनीयाः त्रिशता भाज्याः लब्धं लग्नं भुक्तकालः तेन कालेन स रविभुक्तः कालो युक्तः कार्य इत्यर्थः। पुनः कथंभूतः। विवरगैः भोदयैः युक् विवर सूर्यलग्नान्तरालं तत्र गतैर्भोदयैः राश्युदयैः युक् युक्तः स पलमयः कालः स्फुटः स्पष्टः इष्टकालः स्यात्। षष्टिभक्तो घटिकात्मकः स्यादित्यवगन्तव्यम् ॥ ३६ ॥

वागीश्वरी—तात्कालिक सूर्य और इष्टकाल का साधन—

इष्ट दिन से पूर्व उपलब्ध मेषादि संक्रान्तियों में जो संक्रान्ति जिस समय प्रारम्भ हुई है उस दिनादि से अपने अभीष्ट दिनादि संख्या का ज्ञान करना चाहिए।

सूर्य की व्यतीत संक्रान्ति काल से वर्तमान अभीष्ट कालिक दिनादि को गत और गम्य संक्रान्ति कालों के मध्यवर्ती दिन संख्या से भाग देने से लब्ध फल में गत संक्रान्ति की राशि जोड़ देने से राश्यादिक सूर्य हो जाता है।

जैसे कन्या तुला संक्रान्तियों के अन्तर काल दिनादिक २९।५४।० है। इसमें तुला संक्रान्ति से इष्ट दिन तक की अन्तर संख्या ५।६।० से भाग देने पर ५।७।१ की लब्धि होती है। गत कन्या की संख्या ६ में जोड़ देने से ६।५।७।१ यह सूर्य स्पष्ट हो जाता है। यहाँ पर आचार्य का यह द्रविड़ प्राणायाम अनावश्यक सा प्रतीत हो जाता है। क्योंकि स्पष्ट सूर्य गणित ज्ञान के अन्य अनेक सुसाधन उपलब्ध हैं। जहां इतने मुहूर्त्तों का विवेचन किया जा रहा है जो सभी पञ्चाङ्ग सापेक्ष्य हैं—इति।

इसी प्रकार इष्टकाल साधन—तत्कालिक स्पष्ट सूर्य में अयनांश जोड़ने से स्पष्ट सायन सूर्य होता है। रात्रि कालीन इष्ट काल ज्ञान के लिये स्प. सा. सू. में ६ राशि जोड़-कर उपलब्ध राश्यादिक सायन सूर्य होगा। स्पष्ट सूर्य के भोग्यांशों को सूर्यनिष्ठ राशि के उदयमानों से गुणाकर ३० से भाग देने से जो भोग्यकाल, एवं भुक्तांशों को लग्नराशि से गुणाकर ३० से भाग देने से जो भुक्त काल होता है—इन दोनों के योग में लग्न और सूर्य के मध्यगत राशियों के उदय मानों को जोड़ देने से स्पष्ट इष्टकाल होता है। इत्यादि उक्त विषयों के सुस्पष्ट समीचीन ज्ञान लाभाय ग्रहगणित सिद्धान्त ग्रन्थों अथवा करण ग्रन्थों में सुप्रसिद्ध ग्रहलाघव करण जैसे उत्तम ग्रन्थ का अध्ययन आवश्यक है।

उदाहरण—जिस लग्न में विवाह समय उत्तम हो रहा है उस लग्न का समय आधुनिक पञ्चाङ्गों में यत्र तत्र सर्वत्र उपलब्ध है जैसे वृष स्थिर लग्न में काशी में २७ अप्रैल को प्रातः ६-३१ से ८-२७ तक, एवं सर्वत्र समझना चाहिए॥ ३६ ॥

लग्नार्कौ यदि चैकभेऽशविवरात्स्वीयोदयघ्नाद्विय-

त्त्र्याप्तिः काल इनात्तनुर्यदि तनुः सूर्योदयात्प्रागसौ ।

कुण्डेऽम्भःपरिपूरिते सुघटिकामर्द्धोदयास्ते न्यसेत्

स्तुत्वाग्नित्रयवायुगा न शुभदा पूर्णाग्निपञ्चस्वथ ।। ३७ ।।

मार्तण्डवल्लभा—अथेष्टकालसाधने विशेषमाह—**लग्नार्काविति।** लग्नार्कौ लग्नसूर्यौ यदि एकभे स्तः तदा अंशविवरात् लग्नार्कयोर्भागान्तरात् स्वीयोदयघ्नात् निजराश्युदयगुणितात् या वियत्त्र्याप्तिः त्रिशता लब्धिः स कालः स्यात् इष्टकालः स्यात्। तत्रापि विशेषमाह। इनात्तनुरिति। इनात्सूर्यात्तनुर्लग्नं यदि तनुः लघुः स्यात्तदाऽसौ इष्टकालः सूर्योदयात् प्राक् पूर्वं स्यात्। सोऽपि षष्ट्या भक्तो घटिकात्मकः स्यादित्यवगन्तव्यम्। अथ ज्ञातं कालं यन्त्रैर्विना साधितुं न शक्यते अतो यन्त्राणां मध्ये मुख्यस्य घटीयन्त्रस्य स्थापनमाह—कुण्डे इति। अम्भः परिपूरिते उदकपूर्णे कुण्डे पात्रे घटिकामज्जनक्षमे। कुण्डग्रहणमुत्तानपात्रव्युदासार्थम्। तस्मात्कुण्डरूप-पात्रे उदकपूरिते सुघटिकां षष्टिपलशुद्धां न्यसेत् निक्षिपेत्। कस्मिन्सति अर्द्धोदये अर्द्धास्ते च जाते सति। किंकृत्वा स्तुत्वा। प्रार्थनाग्रन्थान्तरे उक्ता "यन्त्राणां मुख्यरूपासि ब्रह्मणा निर्मिते घटि। दम्पत्योः शुभकालाप्तिहेतवे भव शोभने" इति। प्रतिष्ठितायां घटिकायां तद्गमनफलमाह—सा प्रतिष्ठिता घटी अग्नित्रयवायुगा न शुभदा स्यात्। अग्नित्रयं आग्नेयादि प्रदक्षिण-क्रमेण दिशात्रयं वायुर्वायव्यदिशा इति दिक्चतुष्टयं प्रति गता न शुभदा अर्थादन्यदिग्गता तत्रैव स्थिता वा शुभदा स्यात्। तथाचोक्तं ग्रन्थान्तरे "संस्तुतैवं घटी तोये यां दिशं प्रति गच्छति। पूर्वाशा-दिफलं कुर्यात् स्थिता मध्ये धनप्रदा। सौभाग्यं निर्धनं नार्या अपमृत्युरुजान्विता। भर्तृप्रिया च वेश्या च मान्या वित्तसुतान्विता।" इति। एवं गमनफलमुक्त्वा पूर्णता-फलमाह पूर्णाग्निपञ्चसु आग्नेयादिपञ्चसु दिक्षु पूर्णा घटी न शुभदा। अर्थादन्यदिक्षु पूर्णा शुभदा स्यात्। उक्तं च "उत्तरेशानपूर्वासु घटी पूर्णा शुभप्रदा। दिक्षु शेषासु कन्यायामग्रे वैधव्यदायिनी" ।। ३७ ।।

वागीश्वरी—इष्टकाल साधन की विशेषता के साथ घटी यन्त्र की स्थापना बताई जा रही है—

यदि स्पष्ट लग्न और स्पष्ट सूर्य एक ही राशि में स्थित हों तो दोनों के अंशों के अन्तर अंशों को उस राशि (जो लग्न व सूर्य एक ही राशि में है) के उदय मान से गुणा कर गुणनफल में ३० का भाग देने से लब्धि तुल्य काल इष्टकाल होता है। सूर्य स्पष्ट से लग्न स्पष्ट की न्यूनता होने पर यह इष्ट काल रात्रिशेष का होता है। यदि लग्न स्पष्ट सूर्य स्पष्ट से अधिक है तो इष्टकाल सूर्योदय से आगे होगा।

घटिका यन्त्र स्थापन—

सूर्य के अर्द्ध बिम्ब के उदय से सूर्य के अर्द्ध बिम्ब अस्त हो इतने काल के मान का नाम दिनमान प्रसिद्ध है। समधरातलीय जल से परिपूर्ण किसी कुण्ड में जल भरकर उसके स्थिर जल में घटी पात्र = ताम्रपात्र में नीचे छिद्र इस माप का हो जो प्रथम सूर्योदय से द्वितीय सूर्योदय तक इस घटी यन्त्र स्थापित जल कुण्ड में ६० संख्या में डूब जाय। अर्द्धोदित सूर्य बिम्ब जब अपने शिर के ऊपर होगा'''उतने समय में घटी यन्त्र के डुबाने की संख्या का नाम दिनार्द्ध, अस्त तक की संख्या का नाम दिनभाग, अधः खमध्यगत सूर्य बिम्ब तक घटी यन्त्र के डूबने की संख्या मध्यरात्रि और द्वितीय सूर्यार्द्ध बिम्ब उदय तक की संख्या का नाम ६० षष्ठि घटिकाग्र के अहोरात्र प्रसिद्ध है। (खगोल ज्यो)

जल कुण्ड में स्थापित घटी यन्त्र, एक जगह स्थिर भी रह सकता है और चारों तरफ जल में प्रकृत्या भ्रमणशील भी रहेगा। भ्रमणशील घटी यन्त्र की दिशाओं से भी शुभाशुभ विचार किया जा रहा है।

घटीयन्त्र यदि जलकुण्ड में अग्नि, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम और वायु दिशा की तरफ जाय तो विवाहादि शुभ कर्म में अशुभ सूचना देता है, उत्तर, पूर्व और ईशान में घटीयन्त्र का भ्रमण शुभावह होता है अतएव विवाहादि शुभकर्म में घटी यन्त्र की शुभता पर भी ध्यान देना चाहिए ॥ ३७ ॥

गोधूलं पदजादिके शुभकरं पञ्चाङ्गशुद्धौ रवे-
रर्द्धास्तात्परपूर्वतोऽर्धघटिकं तत्रेन्दुमष्टारिगम् ।
सोग्राङ्गं कुजमष्टमं गुरुयमाहः पातमर्कक्रमं
जह्याद्विप्रमुखेऽतिसंकट इद सद्यौवनाद्ये क्वचित् ॥ ३८ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ गोधूललग्नमाह—**गोधूलमिति**। गोधूलं लग्नं सायंकाल-लग्नं पदजादिके हीनजातौ शुभकरं प्रोक्तम्। न पूर्ववर्णानाम्। क्व पञ्चाङ्गशुद्धौ विवाहोक्तपञ्चाङ्गे अत्र पञ्चाङ्गशुद्धिर्मुख्या। तत्र कालप्रमाणं विशेषणद्वारेणाह—कथंभूतं गोधूलं रवेः अर्धास्तसकाशात् प्राक् परतोऽर्द्धघटिकम्, अर्द्धघटिका यस्मिन्नित्यर्द्धघटिकं प्राक्पञ्चदशपलानि परतः पञ्चदशपलानि एवमर्द्धनाडिकमित्यर्थः। अत्र त्याज्यमाह—इहास्मिन्गोधूललग्ने षष्ठाष्टगामिन्दुं चन्द्रं जह्यात्त्यजेत्। पुनः किं किं जह्यादित्याह—सोग्राङ्गमुग्रग्रहसहितं लग्नं कुजं भौममष्टमं गुरुयमाहः गुरुशनिदिनम् पातं महापातं सिद्धान्तगम्यम् अर्कक्रम सूर्यसंक्रान्ति जह्यात् अन्ये दोषा न त्याज्या इत्यर्थः। अत्र गुरुयमाहस्त्यक्तं तद्दोषोपलम्भाद्गुरुदिने सूर्यास्तात् प्राग् यामार्द्धं परतो यमघण्टः। शनिदिने अस्तमयात् प्राक् परतश्च कुलिकौ। "मार्तण्डोदयतः स्मृता दिनपतेर्यामार्द्धनाथा ग्रहा मार्तण्डात्मजभोग उत्तरलवस्तज्ज्ञैः शुभे कर्मणि। त्याज्योऽसौ कुलिकोऽथ सूर्यदिवसो दानैश्च शक्रार्कदिग्वस्वाङ्गाब्धियमैः स्मृतः कुरहितै रात्रौ तु

तिथ्यंशकैः ।।'' इति । त्याज्योऽसौ कुलिक इत्यनेन शनौ अस्तात्प्राक् कुलिको भवति । दिनादौ कुलिकं दिवेत्यादि व्येकं तन्निशि न्यायेन अस्तात्परतोपि कुलिको भवति । इतिहेतोर्गुरुशनिवारौ निन्दितौ । अथ विप्रादीनामपि क्वचित्कार्यविशेषेण गोरज-प्रवृत्तिमाह—विप्रमुखेति । संकट इदं सद्यौवनाद्ये क्वचिदिति । यौवनाद्ये अतिसंकटे प्राप्ते सति क्वचिल्लग्नशुद्धया इदं गोधूलं विप्रमुखे विप्रप्रभृतिवर्णत्रये सत् शुभं स्यात् । अन्यथा नेत्यर्थसिद्धम् । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे "घटीलग्नं यदा नास्ति तदा गोधूलिकं स्मृतम् । शूद्रादीनां बुधाः प्राहुर्न द्विजानां कदाचन । लग्नशुद्धिर्यदा न स्याद्यौवने समुपस्थिते । तदा तैः सर्ववर्णानां लग्नं गोधूलिकं स्मृतम्" इति ।। ३८ ।।

वागीश्वरी—प्रसिद्ध गोधूलि समय बताया जा रहा है—

तिथि-वार-नक्षत्र-योग-करण की शुद्धता के साथ अर्थात् शास्त्रोक्त विवाह योग्य पञ्चाङ्ग के दिन, अर्ध उदित और अर्धास्त के पहिले के १५, पन्द्रह, पन्द्रह पल मिलकर ३० पल अर्थात् आधी घटी = १२ मिनिट (६ मिनिट + ६ मिनिट) के समय का नाम गोधूलि लग्न कहा गया है। इस गोधूलि लग्न में शूद्र...आदि वर्णों का विवाह संस्कार शुभप्रद कहा गया है।

इस गोधूलि लग्न से षष्ठस्थ और अष्टमस्थ चन्द्रमा पापग्रहों से युक्त लग्न, अष्टम में मंगल-बृहस्पति और शनि, महापात दोष के साथ सूर्यसंक्रान्ति दिन भी विवाह के लिए अशुभ कहे गये हैं। उक्त दोषों के अतिरिक्त जो अनेक और दोष हैं उन सभी का गोधूलि लग्न के विवाह में कोई दोष नहीं होता है। युवती हो रही हो या युवती कन्या हो तो उसके विवाह में गोधूलि लग्न में ब्राह्मणादिक वर्ण भी विवाहसंस्कार कर सकते हैं ।। ३८ ।।

वेदी प्राक्प्रवणा चतुर्वरकरा हस्तोच्छ्रिताऽग्रयस्यदो-
र्जादेर्द्वित्रियुगाङ्गुलैरपचिता सोक्ता बहिर्वामतः ।
यस्याङ्गं यददोऽङ्गिनो गदितभे कुर्यादिहेन्दोर्बलं
नालोक्यं तु विवाहतस्त्वपरिनबाह्लिप्राङ् न कुर्यादिदम् ।। ३९ ।।

मार्तण्डवल्लभा—अथोद्वाहवेदिकालक्षणमाह—**वेदीति** । प्राक्प्रवणा पूर्वनिम्ना चतुर्वरकरा चतुर्भिर्वरकरैः प्रमिता वरो वैवाह्यः हस्तोच्छ्रिता हस्तप्रमाणेनोन्नता इयमग्र्यस्य ब्राह्मणस्य प्रोक्ता सा वेदी दोर्जादेः क्षत्रियादेः क्रमेण द्वित्रियुगाङ्गुलैः अपचिता हीना क्षत्रियस्यं द्व्यङ्गुलन्यूना वैश्यस्य त्र्यङ्गुलोना शूद्रस्य चतुरङ्गुलोना च । सा क कार्येत्याह—बहिर्वामत इति । गृहाद्बहिर्वामभागे । अङ्गुलप्रमाणं मार्कण्डेय-पुराणे उक्तम् "परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महीरजः ।। बालाग्रं चैव लिक्षा च यूका चाथ यवोदरम् ।। क्रमादष्टगुणानाहुर्यवानामष्टतोऽङ्गुलम् ।। षडङ्गुलं पदं तच्च वितस्तिर्द्विपदं स्मृता ।। द्विवितस्ती तथा हस्तो मार्कण्डेयमुनारितः" ।। आगमान्तरेऽपि "कर्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यगाङ्गुलिपर्वणः । मध्यमा दैर्घ्यमानेन मात्राङ्गुलमिती-

रितम्" इति ॥ अन्यत्रोक्तम् "यत्किचित्पौरुषायामं विभज्य दशधा पुनः। एकं द्वादशभागं तु कृत्वा तेष्वेकमङ्गुलम् ॥ देहलब्धाङ्गुलं नाम जानीयात्तस्य तत्पुनः ॥ महामानाङ्गुलिरिति मात्राङ्गुलिरिहोदिता ॥ प्रासादादीनि तेनैव कुर्यान्मानान्तरेण वा ॥ वेदिकादीनि शिबिकारथादीनां विधि पुनः" इत्यादि। अत्र वरकरग्रहणं तस्य होमकर्तृत्वात्। ननु कन्याया अपि लाजाहुतौ कर्तृत्वमस्ति तत्करप्रमाणं किन्नोक्तम्। सत्यम्। अल्पावकाशस्थले कन्या करप्रमाणमप्यङ्गीक्रियते तथाचोक्तं देवयजनदीपिकायाम् "स्वल्पावकाशनिलये हीनमानं समाश्रयेत्" इति। अथ नानाविधकर्मणामङ्गं कस्मिन्नक्षत्रे कर्तव्यमित्याह—यस्याङ्गमिति। यस्य कर्मणः यत् अङ्गमद इदमङ्गमदङ्गिनो मुख्यस्य गदितभे उक्तनक्षत्रे कुर्यात्। इहास्मिन्नङ्गभूते कर्मणि इन्दोर्बलं नालोक्यं न विचारणीयम्। तत्र विशेषमाह। विवाहतः। विवाहदिनात् प्राक् त्र्यरिनवाह्नि तृतीयषष्ठनवमेऽह्नि इदमङ्गं विवाहाङ्गं न कुर्यात्। विवाहाङ्गानि यथा "दलनं कण्डनं चैव व्यञ्जनं मादकादि च। यवारमण्डपौ वेदी कुङ्कुमं वर्णकं तथा"। इति ॥ ३९ ॥

वागीश्वरी—विवाह मण्डप से बाहर वेदी निर्माण विधि—कन्यादान में विवाह मण्डप के बाहर, वाम भाग के पूर्व तरफ पूर्व दिशा की तरफ नम्र (जलवहाव पूर्व में) वर के हाथ से ४ हाथ, ४ हाथ चौड़ी और एक हाथ ऊँची वेदी ब्राह्मण वर्ण के वर के लिए समीचीन कही गई है। क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र के लिए क्रमशः २, ३, ४ अंगुल कम अर्थात् ब्राह्मण के लिए ४ हाथ, क्षत्रिय के लिए ३ हाथ २२ अंगुल, वैश्य के लिए ३ हाथ २१ अंगुल और शूद्र के लिए ३ हाथ २० अंगुल प्रमाण की वेदी होनी चाहिए। जिस कर्म का जो अंग है, वह अंग कार्य उस प्रधान अंगी कर्म में कथित शुभ पञ्चाङ्ग दिन में करने चाहिए। ऐसे (प्रधान कर्म विवाहादि, उपकर्म वेदी आदि निर्माण) कर्म में चन्द्र बल आदि अविचारणीय है। किन्तु ये भी अंग उपकर्म विवाह के पूर्व के ३, ६, ९ दिनों में नहीं करने चाहिए ॥ ३९ ॥

लग्नादष्टि १६दिनान्ततः सममुनि ७इषु ५अङ्क ९द्युषूर्ध्वं त्वयुग्-
घस्त्रे मास्यपि हायने शरमिताद्वर्षात्परं स्वेच्छया।
वैफामार्गसिते जगुः श्रुतियुगोद्वाहर्क्षचित्राश्विनी
ज्यर्क्षश्रवानवमन्दिरे निशि वधूसंवेशमङ्गे स्थिरे ॥ ४० ॥

मार्त्तण्डवल्लभा--अथ क्रमप्राप्तं वधूप्रवेशमाह—**लग्नादिति**। लग्नाद्विवाहतः सकाशात् अष्टिदिनान्ततः षोडशदिनमध्ये सममुनीष्वङ्केषु द्यु घस्रेषु समाः समसंख्याकाः मुनिः सप्तमः इषुः पञ्चमः अङ्को नवमः एषु द्युषु दिवसेषु अत ऊर्ध्वं षोडशदिनादूर्ध्वं अयुग्घस्रे विषमदिने मास्यपि विषमे हायने वर्षे वधूसंप्रवेशं जगुरूचुः। एतदुक्तं भवति। षोडशदिनमध्ये समादिषु दिनेषु कर्तव्यः षोडशदिनातिक्रमे मास-

पर्यन्तं विषमदिने वधूप्रवेशः कार्यः। प्रथममासातिक्रमे वर्षपर्यंतं विषमे मासि कर्तव्यः तदा विषमदिननियमो नास्ति। एवं प्रथमे वर्षे अतिक्रान्ते पञ्चमवर्षपर्यन्तं विषमे वर्षे कर्तव्यः तदा विषममासनियमो नास्ति। अथ विलम्बितं वधूप्रवेशनं कस्मिन्मासपक्षे कर्तव्यमित्याह। वैफामार्गसिते वै वैशाखः फा फाल्गुनः मार्गो मार्गशीर्षः एषां सितः शुक्लपक्षः तस्मिन्। कैः श्रुतियुगोद्वाहर्क्षचित्राश्विनीज्यर्क्षैः श्रुतियुगं श्रवणधनिष्ठे उद्वाहर्क्षाणि विवाहनक्षत्राणि पूर्वोक्तानि चित्राश्विनी प्रसिद्धे ईज्यर्क्षं पुष्यः तैः। अनवमन्दिरे जीर्णगृहे "नवीनमन्दिरे कन्यां नवोढां न प्रवेशयेत्" इतिनिषेधादनवमन्दिर इत्युक्तम्। उक्तं च "वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे सप्तमे दिने॥ नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बले" इति। नारदः "आरभ्योद्वाहदिवसात् षष्ठे वाप्यष्टमे दिने। वधूप्रवशः सम्पत्त्यै दशमेऽथ समे दिने" इति। संग्रहे "विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे तथा षोडशवासरान्तात्। तदूर्ध्वमब्दे युजि पञ्चमान्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति"॥ वृद्धनारदः "समे वर्षे समे मासि यदि नारी गृहं विशेत्॥ आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरण व्रजेत्"। भास्करव्यवहारे "रात्रौ विवाहभे शस्तः सन्मुहूर्ते स्थिरोदये॥ वधूप्रवेशो नैवात्र प्रतिशुद्धाद्धयं विदुः॥ ऋक्षैर्वैवाहिकैः शुद्धैर्दम्पत्योश्च शुभप्रदम्॥ वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे ह्यकृतं यदि॥ मार्गफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने॥ मूलपुष्यमृदुस्वातीस्थिरार्द्राश्वश्रुतिवासरे॥ पितृभे च करे नारी प्रविष्टा पुत्रिणी भवेत्" इति॥ ४०॥

वागीश्वरी—विवाह के अनन्तर वधूप्रवेश मुहूर्त्त बताया जा रहा है—

यदि विवाह के साथ ही वधू प्रवेश हो गया तब तो मुहूर्त्तादि विचारणा अनावश्यक है। विवाह के अनन्तर के वधू प्रवेश मुहूर्त्त में विवाह दिन से १६ दिन के भीतर सम २।४'''इत्यादि और ७।५।९ दिन फलतः विवाह से २, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १२, १४ और १६वें दिनों में वधूप्रवेश शुभ कहा गया है। १६वें दिन के बाद २९वें दिन तक विषम १७, १९, २१, २३, २५, २७, और २९वें दिनों में किसी भी दिन वधूप्रवेश कर सकते हैं।

१ महीने के पश्चात् एक वर्ष तक विषम मासों १, ३, ५, ७, ९, ११ में वधूप्रवेश कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में दिनों का सम-विषम विचार अनावश्यक है।

एक वर्ष के बाद विषम वर्ष ३, और ५ में वधू प्रवेश करना चाहिए। यहाँ भी विषम मास की आवश्यकता नहीं है।

५वें वर्ष के पश्चात् पञ्चाङ्ग शुद्ध दिन में यथेष्ट समय में वधू प्रवेश किया जा सकता है।

एक वर्ष के अनन्तर के वधू प्रवेश की विलम्बित वधूप्रवेश संज्ञा है। जो वैशाख फाल्गुन और मार्गशीर्ष मासों के शुक्लपक्ष में करना चाहिए। वधू प्रवेश में—श्रवण, धनिष्ठा, विवाहोक्तनक्षत्र, चित्रा, अश्विनी और पुष्य, प्राचीन घर में, रात्रि समय स्थिर लग्नों में वधू प्रवेश शुभ होता है॥ ४०॥

उद्वाहात्प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तगृं हे कन्यका
हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम् ।
पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये
तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत् ॥ ४१ ॥

मार्तण्डवल्लभा—इदानीं प्रथमाषाढादौ भर्त्रादिगृहे वासनिषेधमाह—**उद्वाहादिति** । उद्वाहाद्विवाहादुपरि प्रथमे शुचौ आषाढे कन्या यदि भर्तृगृहे वसेत्तदा तज्जननीं हन्यात् इत्यादि सुगमम् ॥ ४१ ॥

वागीश्वरी—विवाह वर्ष के प्रथम आषाढ़ में पतिगृह प्रवेश निषेध है—

आषाढ़ से अन्य ११ मासों में विवाह होने पर प्रथम आषाढ़ में नवविवाहिता वधू का पति के घर में प्रवेश निषेध है जिसका दुष्परिणाम सास के लिए (मृत्यु) कहा गया है । तथैव प्रथमक्षयमास का वधूप्रवेश स्वयं बहू के लिए वधू के जीवन समापन का होता है । प्रथम ज्येष्ठ मास का वधू प्रवेश बहू के पति के ज्येष्ठ भाई के लिए अनिष्ट सूचना देता है । एवं प्रथम पौष और प्रथम मलमास (अधिकमास) में क्रमशः श्वसुर और पति के लिए आयु समापन प्रद होती है । इसी प्रकार प्रथम चैत्र मास में कन्या को पिता के घर में नहीं ही रहना चाहिए पिता की आयुक्षयकारिणी होती है । इसके अतिरिक्त मासों में वधू का प्रथम प्रवेश शुभद है । यदि सास श्वसुर जीवित हों तो आषाढ़ पौष में वधू प्रवेश हो सकता है ॥ ४१ ॥

शूद्रान्त्येषु पुनर्भवापरिणयः प्रोक्तो विवाहोक्तभै-
र्नालोक्यं तिथिमासवेधभृगुजेज्यास्तादि तत्रार्कभात् ।
त्रित्र्यर्क्षेषु मृतिर्धनं मृतिमृतो पुत्रा मृतिर्दुर्भगं
श्रीरौन्नत्यमथो धृति १८ईश११कृत४तत्त्व२५र्क्षेऽत्ययः
साभिजित् ॥ ४२ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ पुनर्भूविवाहमाह—**शूद्रान्त्येष्विति** । शूद्राः प्रसिद्धाः अन्त्याः रजकादयः तेषु पुनर्भवापरिणयः प्रोक्तः । कैर्विवाहोक्तभैः स्पष्टम् । तत्र पुनर्भवापरिणये तिथिमासवेधगुरुशुक्रास्तादि न आलोक्यं स्पष्टम् । तथाचोक्तं ज्योतिर्निबन्धे "न शुक्रास्तादिकं चिन्त्यं शुद्धिवेधादिकं तथा । पुनर्भवासंवरणे न मासतिथिशोधनम्" इति । अथ ब्रह्मपट्टनक्षत्रशुद्धिमाह । अर्कभात् सूर्यनक्षत्रात् त्रित्र्यर्क्षेषु त्रिषु नक्षत्रेषु क्रमेण मृतिर्मरणं प्रथमे त्रिके द्वितीये त्रिके धनं तृतीये मृतिः चतुर्थे मृतिः पंचमे पुत्राः षष्ठे त्रिके मृतिः सप्तमे दुर्भगं अष्टमे लक्ष्मीः नवमे त्रिके औन्नत्यं प्रोक्तम् । अथ रुद्रपट्टशुद्धिमाह । अर्कभादित्यनुवर्तते धृतीशकृततत्त्वर्क्षे धृतिरष्टादशं ईश एकादशं कृतश्चतुर्थम् तत्त्वं पञ्चविंशं एतन्मिते नक्षत्रे अर्कभात्

एतन्मिते इत्यर्थः। तत्र तुष्टये साभिजित्गणिते अत्ययो मृत्युः स्यात्। अर्थादन्येषु शुभं प्रोक्तमिति ॥ ४२ ॥

वागीश्वरी--जाति विशेष में स्त्रियों का द्वितीय विवाह होता है—

शूद्र और अन्य निम्न जातियों में स्त्रियों का दूसरा विवाह भी होता है। इस विवाह में मात्र एक नक्षत्र शुद्धि विचार आवश्यक है। इसमें तिथि-मास-ग्रह नक्षत्रादि वेध, गुरु शुक्र का बाल्य-अस्तादि दोष अविचारणीय है।

तथा इस पुनर्विवाह में (१) ब्रह्मपट्ट और (२) रुद्रपट्ट अर्थात् सूर्य नक्षत्र से दिन के ३ नक्षत्रों में मृत्यु ४…६ तक धनागम ७… ९ तक मृत्यु १०… १३ तक में भी मृत्यु १३…१५ तक पुत्र प्राप्ति १६…१८ तक में १९… २१ तक दुर्भगता (दुर्भाग्य) २२ से २४ तक में लक्ष्मी प्राप्ति और २५…२७ तक के चन्द्र नक्षत्रों में उन्नति होती है। इसी प्रकार रुद्रपट्टशुद्धि = सूर्यनक्षत्र से चान्द्रनक्षत्र (दिननक्षत्र) के १८, ११, और ४ नक्षत्रों के विवाह में मरण शेष शुभ कहे गये हैं। यहाँ नक्षत्रों में अभिजित् सहित संख्या २८ समझनो चाहिए ॥ ४२ ॥

भुक्तायैव सुतामुपोषितनरो दद्याच्च सावित्रिका-
मारब्धोत्सवके यदा जनिमृती स्यातां स्वगोत्रे क्वचित्।
साङ्गं तं विदधीत वाजमपरेऽस्मादारभेत्पूर्वतो
यज्ञोद्वाहनचौलमौञ्जिकमहःसु स्वर्गदिक्त्रित्रिषु ॥ ४३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ नानाविधशास्त्रार्थानाह— **भुक्तायेत्यादिना**। उपोषितनरः भुक्ताय कृतभोजनायैव सुतां दद्यात्। परमुपोषितनरः भुक्तायैव बटवे सावित्रिकां गायत्रीं दद्यात्। तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे "भुक्त्वा समुद्वहेत्कन्यां सावित्रीग्रहणं तथा॥ उपोषितः सुतां दद्यादागताय वराय च" इति ॥ "आरब्धोत्सवके यदा जनिमृती स्यातां स्वगोत्रे क्वचित् साङ्गं तं विदधीत वाजमपरे" इति। वाजमन्नं अपरे असगोत्रिणो विदधीरन् "वाजमन्नं गरुद्वाजो वाजं पीयूषमुच्यते" इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जर्याम्। शेषं सुगमम्। उक्तं च "विवाहोत्सवयज्ञादावारब्धे सूतकं यदि। साङ्गं तत्कर्म कुर्वीत अन्नदानादिकं परैः" इति। अस्मादारभेत्पूर्वतो यज्ञोद्वाहनचौलमौंजिकमहःसु स्वर्गदिक्त्रित्रिषु अस्मान्निश्चितदिनात्पूर्वतः प्रथमतः यज्ञोद्वाहनचौलमौंजिकमित्येतत्कर्मचतुष्टयं क्रमात्स्वर्ग २१ दिक् १० त्रि ३ त्रिषु ३ अहःसु आरभेत्। यज्ञ एकविंशतिदिनेषु उद्वाहनं विवाहः दिक्षु दशदिनेषु चौलं त्रिषु दिनेषु मौंजिकं त्रिषु दिनेष्विति। उक्तं च "एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः। त्र्यहे चूडोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते"॥ आरम्भलक्षणम्। आरम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः। नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया" इति ॥ ४३ ॥

वागीश्वरी--कन्यादान करने वाला पिता या अभावे-भाई-चचा जो भी हों वह सपत्नीक विवाह के दिन उपवास कर कन्यादान करे किन्तु वर को भोजन कराकर ही कन्यादान दे। इसी प्रकार उपनयन में बटु के दक्षिण कान में गायत्री···आदि मन्त्र देने वाले गुरु को भी दीक्षा देने के दिन उपवास करना चाहिए। परन्तु दीक्षा ग्रहण करने वाले बटु को भोजन कराकर ही दीक्षा देनी चाहिये।

विवाहोपनयन, उत्सवादि संस्कार मे अपने सगोत्र सापिण्ड्य में, कहीं जनन अशौच या मरणाशौंच उपस्थित हो भी जाय तो संकल्पित कर्म की पूर्णता करनी ही चाहिए। हवन आदि अन्न सम्बन्धी-कर्म अपने से भिन्न असगोत्र आस्थावान् से कराना चाहिए। कर्म के आरम्भ से अन्त तक आशौच (अपवित्रता) नहीं रहती है। कर्म का आरम्भ कब से कब तक ? कर्म आरम्भ के प्रधान प्रथम दिन से यज्ञ की समाप्ति में २१ दिन तक, विवाहोत्सवादि आरम्भ से १० दिन तक, चूडोपनयन में ३ दिन पहिले से जनना शौचजन्य दोष नहीं होता।

यज्ञ में आचार्य ऋत्विज-सदस्यादि वरण के अनन्तर, विवाह मे नान्दी श्राद्ध के अनन्तर, श्राद्धकर्म में पाक (भोजन रसोई आदि) प्रारम्भ किया जाने से उक्त कार्यों की समाप्ति तक अशौच नहीं लगता ॥ ४३ ॥

नो श्राद्धं क्षयदर्शनैत्यिकमधीतिं शीतलाप्स्वाप्लुतिं
सीमासिन्ध्वतिपातमेककुलजाः सव्यातिपातं क्वचित्।
उत्थाप्यावधि मण्डपस्य सशरागाह्नोर्विषष्ठे समेऽ-
ह्न्युत्थाप्यो न गृहोद्वहौ सहजयोस्तुल्यक्रियाब्दान्ततः ॥ ४४ ॥

मार्तण्डवल्लभा—क्षयदर्शनैत्यकं श्राद्धम् अधीतिं पठनं शीतलोदकेषु आप्लुतिं स्नानं सीमासिन्ध्वतिपातं सीमा प्रसिद्धा सिन्धुर्महानदी "सिन्धुर्नदी समुद्रयोः" इत्यभिधानात् तयोरतिपातः उल्लङ्घनम्। सव्यातिपातम् अपसव्य-मित्येतत् एककुलजाः सगोत्रिणः क्वचिन्नो कुर्युः। किमवधि मण्डपस्य उत्थापनावधि यावन्मण्डपोत्थापनं न स्यात्तावन्न कुर्युरित्यर्थः। उक्तं च "दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं शीताद्भिः स्नानमेव च। प्राचीनावीतिकरणं नदीसीमातिपातनम्" ॥ अन्यच्च "नित्यश्राद्धमधीतिं च स्नानं च शिशिरैर्जलैः। सपिण्डा नैव कुर्वीरन् मण्डपोत्थापनावधि"। अथ स मण्डपोत्थापः कदा कार्य इत्याह। सशरागाह्नोरिति। शराः पञ्च अगः सप्त तन्मिताह्नोदिनयोः पञ्चमे सप्तमे विषष्ठे समे षष्ठरहिते समेऽह्नि समदिने उत्थाप्यः। उक्तं च "मण्डपोत्थापनं कार्यं समे तु दिवसे बुधैः ॥ षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ" इति। अब्दान्तर्वर्षमध्ये गृहोद्वाहौ न कर्तव्यौ। सहजयोः एकमातृजयोः पुरुषयोः पुरुषस्त्रियोः समानक्रिया समानं कर्म न कुर्यादित्यर्थः। भिन्नमातृजयोर्न दोष इत्यर्थात्सिद्धम्। अर्थात् भिन्नमातृजयोस्तथा सहोद्वाहादिकरणमागतं तद्भिन्नकर्तृत्वे

भिन्नगृहे सति वेदितव्यम्। कर्तृत्वमत्र श्राद्धाधिकारिणः पितुरेव न तु विवाहहोमं कर्तुर्वरस्य। तथा चोक्तम् "एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः। न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते" इति। पुरुषौ पुरुषस्त्रियौ पृथक् द्वित्वविवक्षया बहुत्वासम्भवान्न बहुत्वम्, यद्वा पुरुषश्च स्त्री च तथा तयोर्द्वयोः पुरुषयोः स्त्रियोर्वा पुरुषस्त्रियोर्वा। कन्यापुरुषयोर्विवाहविशेषश्चोक्तः "सोदर्ययोः कन्यकयोः सुतयोरेकवत्सरे॥ विवाहो न स्मृतस्तज्ज्ञैः कन्यकासुतयोः स्मृतः॥" इति। अत्र संवत्सरमानं मनुजमानेन चैत्रादिफाल्गुनान्तं वेद्यम्। समानक्रियेति द्वयोश्चौले द्वयोर्व्रतबन्धौ द्वयोर्विवाहौ वा सहजयोरित्यनेनैव एकमातृत्वं सम्भवति। उक्तं च—"नैकस्मिन्वत्सरे कार्यौ गृहोद्वाहौ कदाचन"॥ ४४॥

वागीश्वरी –वैवाहिक संस्कार की एक वर्ष की अवधि तक के वर्ज्य कृत्य आदि बताये जा रहे हैं—

विवाह संस्कार के अनन्तर एक वर्ष के समय तक, एक गोत्रवंश के सपिण्ड व्यक्ति, क्षय श्राद्ध, दर्श श्राद्ध, नित्य श्राद्ध, वेदाध्ययन, शीतजल से स्नान, ग्राम, कसवा या नगर (जो जहाँ रहते हैं) की सीमा का उल्लंघन तथा महानदी और समुद्र का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। विवाह दिन से पाँचवें सातवें आदि विषम दिनों में तथा छठे दिन को छोड़ कर शेष सम दिनों में विवाह मण्डप को उठाना चाहिए। फलतः ५, ७, ८, १०, १२, १४, १६ दिनों में मण्डप उठाया जाना चाहिए।

१ एक वर्ष के भीतर एक ही घर में दो विवाह कार्यों का निषेध है। सहोदर, दो भाई, दो बहिनों (एक भाई एक बहिन भी) का विवाह एक घर में नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार सहोदर दो भाई, दो बहिनों का भी एक वर्ष में मुण्डन या उपनयन भी नहीं होना चाहिए। भिन्नोदर अर्थात् दो माता (माता, विमाता) के दो सन्तानों का एक वर्ष में हो सकता है। एक पुत्र एक पुत्री हो तो एक वर्ष के भीतर दोनों का संस्कार हो सकता है।

विशेषतः यहाँ पर सौर वर्ष की जगह चान्द्र वर्ष को वर्ष अर्थात् चैत्र शुक्लपक्षारम्भ से फाल्गुन कृष्ण अमावास्या तक माना जाना चाहिए क्योंकि चैत्र शुक्ल प्रतिपत् तिथि को नये संवत्सर का आरम्भ और संकल्पादि में नये संवत् का उच्चारण किया जाता है॥ ४४॥

उद्वाहव्रतचूडकेऽब्ददलतत्खण्डं तिलैस्तर्पणं
श्राद्धं पिण्डयुतं महालयगयापित्र्यं विना नाचरेत्।
पूर्वं सप्तपदीविधेरधिगते दोषे वरे वा मृते
देयान्यत्र विवाहितापि च बलाद्याविद्धयोनिर्न चेत्॥ ४५॥

मार्तण्डवल्लभा—वर्ज्यान्तराण्याह—उद्वाहव्रतचूडके क्रमेण अब्ददलतत्खण्डं उद्वाहे विवाहे कृते सति अब्दं वर्षपर्यंतं व्रते व्रतबन्धे कृते सति दलं अर्द्धाब्दं षण्मासपर्यन्तमित्यर्थः। चूडके चौलकर्मकृते सति तत्खण्डं तस्य दलस्यापि खण्डं त्रिमास-

पर्यन्तमित्यर्थः। तिलैस्तर्पणं पिण्डयुतं श्राद्धं च नाचरेत्। किं विना। महालयगयापित्र्यं विना महालयः भाद्रपदापरपक्षः गया प्रसिद्धा पित्र्यं मातापितृक्षयदिनं तत्र यद् श्राद्धं क्रियते तन्महालयगयापित्र्यं तद्विना। उक्तं च—"विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्द्धं तदर्द्धकम्। अतिलं तर्पणं कुर्याच्छ्राद्धं कुर्यादपिण्डकम्॥ महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेहनि। कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डदानं यथाविधि" इति॥ पूर्वमिति। सप्तपदीविधेः पूर्वं प्रथमतो दोषे अन्धमूकादिके अवगते ज्ञाते सति वा इत्यथवा वरे मृते सति कन्या अन्यत्र देया। अपि च या कन्या बलाद्विवाहिता सापि अन्यत्र देया। तर्हि कथं चेद्यदिविद्धयोनिर्न स्यात् विद्धा योनिर्यस्याः सा तथा पुरुषभुक्तेत्यर्थः। उक्तं च याज्ञवल्क्येन "महादोषे सुविज्ञाते पूर्वसप्तपदीविधेः। मरणादौ समुत्पन्ने देयाऽन्यस्मै न दोषभाक्॥ बलादुद्वाहिता कन्या दातव्याऽन्यवराय च" इति। अन्यच्च "बलादुद्वाहिता कन्या मंत्रैर्यदि न संस्कृता॥ अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा" इति॥ महादोषाः कारिकानिबन्धे उक्ताः अन्धो मूकः क्रियाहीनश्चापस्मारी नपुंसकः॥ दूरस्थः पतितः कुष्ठी दीर्घरोगी वरो न सन्" ॥ अन्येऽपि दोषा उक्ताः 'मूर्खनिर्धनदूरस्थशूरमोक्षाभिलाषिणाम्॥ त्रिगुणाधिकवर्षाणां न देया जातु कन्यका" इति। पुरुषनपुंसकलक्षणं "यस्याप्सु पलवते बीजं ह्रादि मूत्रं च फेनिलम्। पुमान् स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतैस्तु षण्ढकः॥ अपरीक्ष्य दाने दोषः "अपरीक्ष्य वरं कन्यां निर्गुणाय प्रयच्छति॥ कुलं तस्यैव तच्छोकसंतप्तो विनिकृन्तति" इति॥ ४५॥

वागीश्वरी--श्राद्धकर्म का निषेध समय बताया जा रहा है—

सपिण्ड में–विवाह संस्कार में १ वर्ष, उपनयन में आधा वर्ष (६ महीना) चूडाकरण में ३ महीने तक, पितृ पक्ष, गया श्राद्ध और माता पिता की क्षय तिथि को छोड़कर अन्य किसी श्राद्ध में तिल से तर्पण और पिण्डदानयुत श्राद्धकर्म का निषेध कहा गया है। विवाह संस्कार में, सप्तपदी कर्म के पहिले वर में (होने वाले पति) यदि कोई दोष (अन्धा, गूंगा, वधिर, नपुंसकत्व, कुष्ठ) या तत्काल ही वर की मृत्यु भी हो जाय तो ऐसी परिस्थिति में उस कन्या का वर्त्तमान इस वर को छोड़कर अन्य वर से विवाह कर देना चाहिए। और सप्तपदी विवाह के अनन्तर वर की मृत्यु फिर उस कन्या का अन्यत्र कहीं भी दूसरा विवाह निषेध कहा गया है। तथा बलात् जिस कन्या का किसी वर से विवाह किया गया है और (कन्या की रुचि नहीं थी) और वह उस पुरुष से सङ्गम रहित हो (अविद्धयोनि) तो ऐसी स्थिति में उस कन्या का द्वितीय योग्य वर से विवाह सम्बन्ध किया जा सकता है (शास्त्राज्ञा)। यदि बलात्कार से अनिष्ट वर के साथ कन्या का विवाह कर दिया गया हो और उसका ऐसे वर से सङ्गम-आदि हो गया है (विद्धयोनि) तो फिर ऐसी कन्या का दूसरा विवाह (शास्त्र सम्मत) नहीं होगा॥ ४५॥

अस्त्रोकैः कुशहेमरौप्यरचिता ताम्रो च विप्रादिभि-
र्भार्या वा निखिलैः सुवर्णरचिता धर्माय धार्या बुधैः।

मन्दारार्कदिनेऽम्बुपाग्निफणिभं भद्रातिथिश्चेदिहो-
द्भूता सा विषकन्यकाऽपि तनुगौ सौम्यौ रिपुक्षेत्रगौ ॥ ४६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ स्त्रीरहितानां विधिमाह—**अस्त्रीकैः** स्त्रीरहितैः विप्रादिभिः विप्रक्षत्रियविट्शूद्रैः क्रमेण कुशहेमरौप्यरचिता ताम्री च भार्या धर्माय धार्या। अयमर्थः। विप्रेण कुशरचिता भार्या धर्माय धार्या क्षत्रियेण हेमरचिता वैश्येन रौप्यरचिता शूद्रेण ताम्री ताम्ररचिता भार्या धार्या। कथं भूतैर्विप्रादिभिः बुधैः स्वस्वधर्मनिरतैः वा इत्यथवा निखिलैः सर्वैर्विप्रादिभिः सुवर्णरचिता भार्या धार्या यतस्तया विना गृहस्थधर्मसाधनं न स्यात्। तथा चोक्तं "अपत्नीकैस्तु धर्मार्थं कौशी हैमी च राजती। ताम्रा विप्रादिभिर्भार्या धार्या हैमी तथाखिलैः" इति। अथ विषकन्या लक्षणमाह। मन्देति। मन्दारार्कदिने शन्यर्कभौमानामन्यतमस्य वासरे अम्बुपाग्निफणिभं शततारकाकृतिकाऽश्लेषाणामन्यतमं नक्षत्रम् भद्रातिथिर्द्वितीया सप्तमी द्वादशी अथ सामान्यतमा चेत्स्यात् तदा योगः स्यात्। इहोद्भूता अत्र योगे या कन्या जाता सा विषकन्यका। अथ योगान्तरमाह। रिपुक्षेत्रगौ सौम्यौ तनुगौ लग्नगतौ चेत्स्याताम् ॥ ४६ ॥

वागीश्वरी--कृत्रिम स्त्री और विष कन्या योग बताये जा रहे हैं—

स्त्री रहित ब्राह्मण का धर्मकृत्य में (स्त्री सहित धर्माचरण करे) कुश की स्त्री की प्रतिमा बना कर धर्मकृत्य करना चाहिए। एवं स्त्री रहित क्षत्रिय को सुवर्ण की स्त्री प्रतिमा, वैश्य को चाँदी की स्त्री प्रतिमा और शूद्र को ताँबे की प्रतिमा बना कर धर्म कृत्य करना चाहिए। यदि संभव हो तो सभी वर्णों को स्त्री राहित्य स्थिति में सुवर्ण की स्त्री प्रतिमा द्वारा धर्मकृत्य किया जाना चाहिए। विषकन्या योग–शनि या मंगल या रविवार के दिन शतभिषा, कृतिका या श्लेषा नक्षत्र हो, तथा २, ७, १२ द्वितीया सप्तमी और द्वादशी में कोई तिथि हो तो उस दिन विष योग होने से इस योग में उत्पन्न कन्या को **विषकन्या** कहा गया है। अथवा शुभराशिगत कोई दो शुभग्रह तथा एक पापग्रह यदि लग्न में हो तो ऐसे समय में उत्पन्न कन्या को भी विषकन्या कहा गया है ॥ ४६ ॥

एकः क्रूर इहोद्भवाप्यथ तनौ सौरी रविः पुत्रगो
धर्मस्थो धरणीसुतोऽयमपरो योगोऽपि तज्जा विषम् ।
मूलद्यत्रिपदोद्वा श्वशुरमह्यन्त्यत्रये तत्स्त्रयं
ज्येष्ठान्त्ये पतिपूर्वजं द्विपचतुर्थे देवरं हन्ति च ॥ ४७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ योगान्तरमाह। **एकः क्रूर इति**। एकः क्रूरः रिपुक्षेत्रगः तनुगश्चेत्स्यात् इमौ द्वौयोगौ इहोद्भवापि विषकन्यका स्यात्। तनौ लग्ने सौरिः शनिः स्यात्। रविः सूर्यः पुत्रगः पञ्चमगः स्यात् धरणीसुतो भौमो धर्मस्थो यदा

स्यात् तदा अयमपरो योगः स्यात्। तज्जापि कन्या विषं स्यात्। विषमिति यथा विषस्वीकारात् मृत्युर्भवतीति फलं सूचितं तस्मात् परित्याज्येति भावः। अथ मूलजादीनां फलमाह--मूलेति। मूलस्य आद्यत्रिपदोद्भूवा प्रथमचरणत्रये जाता कन्या श्वशुरं हन्ति मारयति। अह्यन्त्यत्रये अहिराश्लेषा तस्य अन्त्यत्रये अन्त्यचरणत्रये जाता तत्स्त्रियं तस्य श्वशुरस्य स्त्रियं श्वश्रूं हन्तीत्यर्थः। ज्येष्ठान्त्ये ज्येष्ठायाः चतुर्थचरणे जाता पतिपूर्वजं ज्येष्ठं हन्ति। द्विपचतुर्थे द्वौ पौ पती यस्य तत् द्विपं विशाखा तस्य चतुर्थचरणे जाता देवरं हन्ति अर्थादन्यचरणजा शुभा॥ ४७॥

वागीश्वरी--और भी विषकन्या-ग्रहस्थिति बताई जा रही है--

जिस कन्या के जन्म लग्न में शनि, ५वें और ९वें क्रमशः सूर्य और मंगल हों तो यह भी विष योग होने से ऐसे ग्रह स्थिति की कन्या को भी विषकन्या कहा गया है। जिस प्रकार खान-पान चाय आदि में विष संसर्ग से मानव का जीवन समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार विषकन्या ग्रह योग की लड़की (कन्या) के साथ विवाह होने से पुरुष का मरण भी हो जाता है, अत एव विष कन्या के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। राशि नक्षत्र सन्धि (षड्विध मूल) में उत्पन्न कन्या का शुभाशुभ फल—मूल के प्रथम द्वितीय और तृतीय चरणों में उत्पन्न कन्या अपने श्वसुर की मृत्युप्रद होती है। मूल का चतुर्थ चरण शुभ फलद कहा गया है और श्लेषा के ४, ३, २ चरणों में उत्पन्न कन्या अपनी सास के लिए मृत्युप्रद कही गई है। मूल के विलोम श्लेषा का प्रथम चरण शुभ कहा गया है। ज्येष्ठा के चतुर्थ चरण में उत्पन्न कन्या से पति के ज्येष्ठ भाई और विशाखा के चतुर्थचरणोत्पन्न कन्या अपने पति के छोटे भाई अर्थात् अपने देवर के लिए मृत्युप्रद कही गई है। ज्येष्ठा और विशाखा के तीनों चरण १, २, ३, शुभ प्रद कहे गये हैं॥ ४७॥

एवं ना युवतेरभाव इह नो दोषो नुरेतत्फलं
मौञ्ज्यूर्ध्वं न वदन्ति केचिदपि पैत्र्याद्ये फलं मूलवत्।
नोद्वाहौ सहजातयोस्त्र्यृतुषु नोद्वाहाद्व्रतं नो पुमु-
द्वाहात्स्त्र्युद्वहनं न मङ्गलविधेर्मण्डं त्रिशुभ्येषु न॥ ४८॥

जिन ग्रह योगों से कन्या में विष कन्या की बातें कही गई हैं ऐसे ही ग्रहयोगों में लड़के भी पैदा होते ही हैं तो उन्हें विष वर (विषग्रहों वाला लड़का) भी कहना चाहिए, अतएव "ययोः सर्वं समम् तयोरेव विवाहसम्बन्धोऽपि समीचीनः" इति वक्तुं शक्यते। "विषकन्याकृते विषवरः" इत्येवं वक्तुं शक्यते। अन्यथा कन्या यावज्जीवनमविवाहिता एव भवेत् इति शास्त्राणि मानवमात्रकृते अथवा समग्रचराचरसृष्टिसम्बन्धे हिताय एव भवन्ति इति उक्तानि उक्तेरित्यस्य संगतिरपि चरितार्था स्यादिति। हिन्दी व्याख्या—विष कन्या का विवाह विष वर के साथ ही करना चाहिए शास्त्राशय स्वयं सिद्ध होता है।

(केदारदत्तः व्याख्याकारः)

मार्तण्डवल्लभा—एवमुक्तनक्षत्रचरणजातो ना नरः युवतेः स्त्रियः श्वशुरादीन् हन्ति। तथा च गर्गः "मूलजा श्वशुरं हन्ति सार्पजा च तदङ्गनाम्॥ ज्येष्ठजा तु पतिज्येष्ठं देवरं तु द्विदैवते" इति। तथा च कश्यपपटले "मूलान्त्यपादजौ श्रेष्ठौ तथा श्लेषाद्यपादजौ॥ द्वीशान्त्यपादजौ" इति। **अस्यापवादः**। अभाव इह नो दोष इति। अभावे तेषां श्वशुरादीनामभावे सति इह मूलादिजोद्वहने नो दोषः। केचिदाचार्याः नुः नरस्य मौञ्ज्यूर्ध्वं मौञ्जीबन्धनानन्तरमेतत्फलं न वदन्ति। उक्तं च नारदेन "मूलव्यालभवो दोषो विवाहे य उदाहृतः॥ स मौञ्जीबन्धनादूर्ध्वं पुंसां नैवेति केचन" इति। पैत्र्यगण्डोद्भवा कन्या श्वशुरघ्नी च केचन" इति। अथ ऋतुत्रयमध्ये किं किं न कर्तव्यमित्याह—नोद्वाहाविति। सहजातयोः एकोदरसमुत्पन्नयोः पुत्रयोः कन्ययोः कन्यापुत्रयोर्वा उद्वाहौ विवाहौ त्र्यृतुषु त्रयश्च ते ऋतवश्च त्र्यृतवः तेषु न कार्यौ षण्मासाभ्यन्तरे न कार्यावित्यर्थः। उक्तं च नारदेन 'विवाहश्चैकजन्यानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि॥ असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत्" इति॥ नोद्वाहादुगतमिति। उदाहात्त्र्यृतुषु व्रतं मौञ्जी न कार्या। तथाचोक्तं नारदेन "पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये॥ न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मङ्गले नान्यमङ्गलम्" इति नो पुमुद्वाहात् स्त्र्युद्वहनमिति। पुमुद्वाहात् पुरुषविवाहात् त्र्यृतुषु स्त्र्युद्वहनं कन्याविवाहः नो कार्यः। तथा च कात्यायनः "पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये" इति। न मङ्गलविधेर्मुण्डनमिति। **मङ्गलविधेः** विवाहात् त्र्यृतुषु मुण्डनं चौलं व्रतं न कार्यम्। अत्र कात्यायनः "कुले ऋतुत्रयादर्वाङ् मण्डनान्नतु मुण्डनम्" इति। त्रिशुभ्येषु नेति। एषु ऋतुषु त्रिशुभी न कार्या त्रयाणां शुभानां समाहारस्त्रिशुभी मङ्गलत्रयमितियावत् "न कुर्यान्मङ्गलत्रयम्" इतिवचनात्॥ ४८॥

वागीश्वरी—वर्ष में मंगल कृत्यों के समय का विचार बताया जा रहा है—

जिस प्रकार मूल नक्षत्र में उत्पन्न कन्या का विचार किया गया है उसी प्रकार मूल नक्षत्र के प्रथम तीन चरणों में उत्पन्न वर (लड़का) अपने श्वसुर को एवं आश्लेषा नक्षत्र के अन्त के तीन चरणों में उत्पन्न वर अपनी सास को, ज्येष्ठा के चतुर्थ चरण में अपनी पत्नी के बड़े भाई (ज्येष्ठश्यालक) को और विषाखा के चतुर्थ चरण में वर अपने छोटे साले के लिये मृत्यु कारक होता है। उक्त सास श्वसुर और साले के अभाव में दोष नहीं होता है। कुछ आचार्यों का मत है कि वर (लड़के) के उपनयन के अनन्तर उक्त दोषों का अभाव हो जाता है। अर्थात् उपनयन के पूर्व ही उक्त दोषों का विचार किया जाना चाहिए। या यों भी कह सकते हैं कि पुरुष कुण्डली में नक्षत्रोक्त दोष विचार अनावश्यक है। अथ च मघा नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न वर कन्या का मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न वर-कन्या की तरह (दोनों के श्वसुरों की मृत्यु) विचार करना चाहिए।

छै ६ महीने के भीतर दो सहोदर भाई बहिनों का विवाह उपनयनादि का निषेध है। लड़के के विवाह के अनन्तर ६ महीने तक लड़की का विवाह नहीं करना चाहिए।

विवाह दिन से ६ महीने के भीतर चूडाकर्म, व्रतबन्ध आदि भी नहीं किया जाना चाहिए अर्थात् एक मंगल कार्य के ६ महीने बाद दूसरा मंगल कार्य किया जा सकता है ।

"अब्दविभेदतः" वर्ष बदलने पर एक मंगल कार्य के अनन्तर ६ महीने के भीतर भी द्वितीय मंगल कार्य किया जा सकता है । यहाँ पर चान्द्र वर्ष चैत्रकृष्ण अमावस्या को समाप्त होने से माघ फाल्गुन मासों में किये गये एक मंगल कार्य के बाद चैत्र शुक्ल-प्रतिपद से प्रारम्भ होने वाले नये संवत् में दूसरा मंगल कार्य किया जा सकता है । (वर्ष बदलने से) ॥ ४८ ॥

नो ज्येष्ठाल्लघुकालरुद्धतऋते कात्यायनो मुण्डनं
चौलं प्राह न मेखलेत्युभयतः कार्या विवाहादियम् ।
भेदेऽब्दस्य च संकटे वितनुयात्पूर्वोदितं मङ्गलं
वेदाहान्तरिते दिनव्यवहिते नद्या नगेवापि वा ॥ ४९ ॥

मार्तण्डवल्लभा—नो ज्येष्ठाल्लघ्विति । ज्येष्ठात् मङ्गलात् विवाहादेस्त्र्यृतुषु लघुमङ्गलं नो कार्यम् । यद्बहिःशालायामुक्तं तज्ज्येष्ठमङ्गलम् अन्यल्लघुमङ्गलम् । ज्येष्ठलघुलक्षणं सारसमुच्चये "चूडाकेशान्तसीमन्तविवाहोपनयान् बुधाः ॥ गुरुमङ्गलमित्याहुस्तदन्यल्लघुमङ्गलम्" इति । तन्न कार्यमित्यर्थः । कस्मादृते कालरुद्धतः ऋते कालेन रुद्धं गर्भाधानपुंसवनादि तस्मादृते तेन विनेत्यर्थः । तथा च कात्यायनः "मातृयज्ञक्रियापूर्वं ज्येष्ठं कृत्वा तु मङ्गलम् ॥ ऋतुत्रयं पुनर्यावन्न कुर्याल्लघुमङ्गलम् ॥ लघु वा गुरु वा कार्यं कार्यं नैमित्तिकं यदि" इति ॥ लघुगुरुमङ्गलयोर्भिन्नकर्तृत्वे न दोषः । कात्यायनो मुनिः इति प्राह । इतीति किं व्रतं मुण्डनं न चौलमेव मुण्डनं मौञ्जी विवाहात् उभयतः कार्येति । तथा च तद्वाक्यं "मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मङ्गलम् ॥ चौलं मुण्डनमेवोक्तं वर्जयेद्वरणात्परम् ॥ मौञ्जी चोभयतः कार्या यतो मौञ्जी न मुण्डनम्" इति । अथ संकटे प्रवृत्तिमाह—भेदेऽब्दस्येति । संकटे देशकालभयादौ अब्दस्य संवत्सरस्य भेदे पूर्वोदितं मङ्गलं वितनुयात् विस्तारयेत्कुर्यादित्यर्थः । तथा चोक्तं संहितासारावल्यां "फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने ॥ भेदादब्दस्य कुर्वीत न ऋतुत्रयलङ्घनम्" इति । अथवा वेदाहान्तरिते चतुर्दिनान्तरिते काले मङ्गलं वितनुयात् । तथा च स्मृतिसारावल्यां "पुत्रीपरिणयादूर्ध्वं यावद्दिनचतुष्टयम् ॥ पुत्र्यन्तरस्य कुर्वीत नोद्वाहमिति सूरयः" इति । अथवा दिनव्यवहिते एकदिनान्तरिते काले मङ्गलं कुर्वीत । तथा चोक्तं "एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्वासरे नरः ॥ विवाहं नैव कुर्वीत मण्डनोपरि मुण्डनम्" इति । अथवा एकाहेऽपि नद्या नगेन पर्वतेन अन्तरिते देशे मङ्गलं वितनुयात् । ज्योतिर्विवरणे "एकोदरयोर्वरयोरेकदिनोद्वाहतो भवेन्नाशः ॥ नद्यन्तर एकदिने केऽप्याहुः संकटे च शुभम्" इति । शार्ङ्गधरोऽपि "नद्यन्तरेऽपि शुभदं पृथक्शैलस्य रोधतः ॥" इति ॥ ४९ ॥

वागीश्वरी—उक्त ४८ में कथित अन्य विशेष विधि-निषेध बताये जा रहे हैं—

गर्भाधान से अन्न प्राशन तक के संस्कारों में प्राकृतिक कालानुसार ही मुहूर्त्त किये जाते हैं, इन संस्कारों के अतिरिक्त अन्य मंगल कार्यों में एक बड़े मंगल कार्य के ६ महीने तक द्वितीय लघु मंगल कार्य का निषेध कहा गया है। (मंगल कार्यों की अवधि के नियत होने से।) ऋषि कात्यायन के अनुसार मुण्डन संस्कार को मौञ्जी न कह कर इसे चूडाकर्म कहते हैं। अर्थात् कात्यायन ऋषि के मत से (१) चूडा और (२) मौञ्जी ये दो संस्कार हैं एक नहीं। मुण्डन संस्कार विवाह के पूर्व में, किन्तु मौञ्जी विवाह के पूर्व या पश्चात् भी किया जा सकता है।

आवश्यकतानुसार संवत्सर परिवर्त्तन में मंगल द्वय में ६ मास की अवधि नहीं है। संवत्सर परिवर्त्तन १ दिन, एक दिन से ६ मास तक जब हो तो द्वितीय मंगल कार्य किया जाना चाहिए। इस प्रकार एक मंगल के ४ दिन बाद (संवत्सर परिवर्त्तन हेतु) भी दूसरा मंगल किया जा सकता है। अत्यावश्यकता पर एक दिन के भी अन्तर में द्वितीय मंगल किया जा सकता है। ध्यान देने की बात है कि प्रथम मंगल के स्थान से द्वितीय मंगल का स्थान एक ही दिन में आवश्यक हो तो किसी नदी, नाला, पर्वत आदि के व्यवधान सम्बन्धित अन्य स्थान में भी एक ही दिन में दो मंगल कार्य किये जा सकते हैं।

अनेक विध मंगल संस्कारों में भी ज्येष्ठ मंगल और लघु मंगल इस प्रकार की सत्ताएँ कही गई हैं जिनमें चूडा, केशान्त (समावर्तन), सीमन्त, उपनयन, विवाह आदि को ज्येष्ठ मंगल और तदरिक्त शेष लघु मंगल कहे जाते हैं॥ ४९॥

एकाहेऽपि जनाश्रयान्तर इहेदं तारतम्याद् बुधै-
र्योज्यं नो यमयोर्निषिद्धमनयोरेकत्र कार्यं जगुः।
नैकस्मै दुहितृद्वयं सहजयोर्नैकोद्भवे कन्यके
दद्यादुद्वहनं मिथो न तनुयात्कुर्यादसंपद्यदः॥ ५०॥

मार्तण्डवल्लभा—एकाहेऽपीति। अथवा एकाहेऽपि जनाश्रयान्तरे मण्डपान्तरे मङ्गलं वितनुयात् "मण्डपोऽस्त्री जनाश्रय" इत्यमरः। उक्तं च ज्योतिर्विवरणे "न प्रतिषिद्धं लग्नं संप्राप्ते संकटे महति॥ एकोदरसंभवयोरेकाह्ने भिन्नमण्डपे कार्यम्" इति। अथैषां पक्षाणां निर्णयमाह—इहेदमिति। इहास्मिन् विवाहादिविषये इदं भेदेऽब्दस्येत्याद्युक्तं बुधैस्तारतम्याद्योज्यम् संकटानुरूपं योज्यमित्यर्थः। अथ यमलयोर्विशेषमाह—नो यमयोरिति। यमयोर्यमलयोः इदं नो निषिद्धम् अनयोर्यमलयोर्मङ्गलमेकत्र एकवत्सरे एकवारे एकमण्डपे कार्यमिति मुनयो जगुः। उक्तं च "एकस्मिन् वत्सरे चैव वासरे मण्डपे तथा। कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः" इति। स्त्र्यादीनां स्त्रीणां पुरुषाणां वा यमलजातानामप्येवं तुल्यन्यायत्वात्। यमलयोर्मध्ये

एकस्यां स्त्रियामेकस्मिन्पुरुषे सति स्त्रीविवाहं समाप्य पुरुषविवाहं कुर्यात्। स्त्रीपुरुषयोः सहविवाहकरणस्याघटमानत्वात्। अथ प्रत्युद्वाहनिषेधमाह—नैकस्मै इति। एकस्मै वराय दुहितृद्वयमेकोद्भवकन्याद्वयं न दद्यात्। सहजयोः एकोदरसंभवयोर्भ्रात्रोः एकोद्भवे कन्यके न दद्यात्। तथा मिथः परस्परमुद्वहनं न तनुयात्। अत्रापि संकटे प्रवृत्तिमाह—कुर्यादिति। अदः नैकस्मै इत्याद्युक्तमकर्तव्यमसंपदि अन्यवधूवरालाभे सति कुर्यात्। तथा च नारदः "प्रत्युद्वाहे नैव कार्यो नैकस्मिन्दुहितृद्वयम्॥ न चैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके" इत्यादि॥ ५०॥

वागीश्वरी—एक दिन में भी दो मंगल कार्य किये जांय–युक्ति दे रहे हैं—

नदी नद नाला, पहाड़ आदि स्थान के अन्तर के अभाव में एक ही दिन में भिन्न-भिन्न मण्डपों में दो मंगल कार्य किये जा सकते हैं। ("मण्डपभेदात्") आवश्यकता वश पण्डित वर्ग को समय के अवलम्ब का ध्यान होना चाहिए। एक ही गर्भ से जुड़वाँ, (यमल) दो पुत्र या दोनों कन्या या एक पुत्र एक कन्या का संस्कार दोनों का एक ही वर्ष एक ही स्थान और एक ही मण्डप में किया जा सकता है। यदि यमलों में एक कन्या और एक पुत्र हो तो प्रथम कन्या विवाह कर तब उसी दिन पुत्र का विवाहोपनयन किया जा सकता है।

एक ही वर के साथ दो सहोदर कन्याओं का विवाह नेष्ट है। तथा दो सहोदर भाइयों के साथ दो सहोदर बहिनों का भी विवाह नहीं होना चाहिए। अन्य वर के अभाव में एक वर के साथ दूसरी कन्या का भी विवाह किया जा सकता है जिसे शास्त्र दोष नहीं कहा जावेगा॥ ५०॥

नोद्वाहं सति निश्चयेऽपि जगदुः पित्रोः सपित्रोः स्त्रियाः
सूनोर्भ्रातुरनूढितस्वसुरसूत्क्रान्तौ पितृव्यस्य च।
अन्ये स्वान्वयजात्ययेऽपि जनकाम्बास्त्रीसुतान्यात्ययेऽ-
ब्दार्द्धार्द्धार्द्धदलान्तरे विदधते हेरम्बशान्त्या क्वचित्॥ ५१॥

मार्त्तण्डवल्लभा—अथ प्रतिकूलनिर्णयमाह—**नोद्वाहमिति**। निश्चयेऽपि सति बुधाः उद्वाहं न जगदुः। कस्यां सत्यां पित्रोः असूत्क्रान्तौ सत्यां माता च पिता च पितरौ तयोः असूनां प्राणानां उत्क्रान्तिः उत्क्रमणं तस्यां सत्यामित्यर्थः। कथंभूतयोः पित्रोः सपित्रोः पितरौ च पितरौ च पितरः मातुः पितरौ पितुः पितरौ इत्यर्थः। तैः सह वर्तमानौ सपितरौ तयोः सपित्रोः। पुनः कस्यां सत्यां स्त्रियाः असूत्क्रान्तौ सत्याम् इदं द्वितीयविवाहादौ ज्ञेयम्। एवं सूनोः पुत्रस्य भ्रातुः सहजस्य अनूढितस्वसुः अपरिणीतभगिन्याः पितृव्यस्य पितृभ्रातुः असूत्क्रान्तौ सत्याम्। एतदुक्तं भवति पित्रादीनामुक्तानां मध्ये अन्यतमे मृते सति विवाहं न कुर्यादित्यर्थः। तथा च वृद्धशौनकः "वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः॥ एतेषां प्रतिकूलं चेन्महाविघ्नप्रदं

भवेत्" ॥ अन्यच्च "पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही ॥ पितृव्यः स्त्री सुतो भ्राता भगिनी चाविवाहिता ॥ एभिरेव विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम् ॥ अन्यैरपि विपन्नैश्च केचिदूचुर्न तद्भवेत्" इति ॥ अथान्येषां मतमाह—अन्य इति । अन्ये बुधाः स्वान्वयजात्ययेऽपि स्वकुलजातमर्त्यनाशेऽपि उद्वाहं न विदधुः । तथा च भृगुः "वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः ॥ तदोद्वाहो नैव कार्यः स्वपक्षक्षयदोषतः" इति । अथ संकटे प्रवृत्तिमाह—जनकाम्बास्त्रीति । जनकश्च अम्बा च स्त्री च सुतश्च अन्यश्च अन्यः कुलजः प्रतिकूलाधिकारी एषामत्ययो नाशः मरणमितियावत् तस्मिन्सति अब्दार्धार्द्धार्द्धदलान्तरे हेरम्बशान्त्या क्वचित्संकटे विदधते बुधा इत्यध्याहारः । एतदुक्तं भवति वरस्य वध्वा वा पितृनाशे अब्दान्तरे वर्षान्तरे मातृनाशे अर्द्धान्तिरे षण्मासान्तरे स्त्रीनाशे अर्द्धार्द्धान्तिरे त्रिमासान्तरे । एतद्द्वितीयादिविवाहे ज्ञेयम् । तथा पुत्रनाशे अर्द्धान्तिरे सार्द्धमासान्तरे अन्यनाशे पितृमातृस्त्रीत्यादिभ्योऽन्यस्य कुलजस्य नाशे दलान्तरे सार्द्धमासस्यार्द्धान्तिरे त्रयोविंशतिदिनान्तरे विदधते इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

वागीश्वरी—वर-कन्या के विवाह के निश्चय पर अशौच विचार—

वर-कन्या के विवाह की तिथि के परिपक्व निर्णय के बाद यदि वर-कन्या के पिता, पितामह, पितामही, माता, मातामह, मातामही, स्त्री, पुत्र, भाई, बिना विवाही बहिन, चाचा-आदि की मृत्यु होने पर अशौच कारण से विवाहादि संस्कार नहीं होंगे । भृगु आदि आचार्यों के मत से अपने वंश में भी किसी की मृत्यु पर विवाहादि कर्म नहीं होंगे, मरण का अशौच प्रबल है ।

व्यक्ति विशेष की मृत्यु पर सूतक काल—

पिता की मृत्यु में १ वर्ष, मातृमृत्यु में ६ महीने, स्त्री मृत्यु में तीन महीने, पुत्र मृत्यु में $\frac{3}{2}$ डेढ़ मास और अन्य समीपस्थ वंशज की मृत्यु में २३ दिन तक अशौच होने से इस अवधि में उक्त विवाहादि संस्कार नहीं किये जाने चाहिए । अत्यावश्यकता वश मृतक के सपिण्डन श्राद्ध के अनन्तर गणेश पुजनादि शान्ति पूर्वक विवाह किया जा सकता है ॥ ५१ ॥

भ्रातुश्चात्मजवद्भयेऽतिसमये पित्रोर्मृतेः संशये
नान्येषां प्रतिकूलमामयिविरक्तारादगतानामपि ।
आतुर्यन्मृतनृक्रियानभिभवे नान्दीमुखं नाचरे-
न्नो कुर्याज्ज्वरितस्य मङ्गलमतिव्याध्युद्भवे निश्चयम् ॥ ५२ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अन्यमध्ये भ्रातुर्विशेषमाह—**भ्रातुश्चात्मजवदिति** । भ्रातुर्नाशे पुत्रवत् पुत्रनाशोक्तवज्ज्ञेयं सार्द्धमासान्तरे कर्तव्यमित्यर्थः । तथा च स्मृतिसारावल्यां

"पितुरब्दमिहाशौचं तदर्द्धं मातुरेव च। मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्द्धं भ्रातृपुत्रयोः। अन्येषां तु सपिण्डानामाशौचं माससंमितम्। तदा तु शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते" इति। स्मृत्यन्तरेऽप्युक्तम् "संकटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना। शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत्। अकृत्वा शान्तिकं यस्तु निषेधे सति दारुणे। प्रकरोति शुभं गर्वाद्विघ्नस्तस्य पदे पदे" इति। ज्योतिःप्रकाशे "प्रतिकूलेऽपि कर्तव्यो विवाहो मासमन्तरात्। शान्तिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेत्पुनः"। इत्येतत्प्रौढायां कन्यकायां पित्रोर्मरणेऽपि ज्ञेयम्। प्रतिकूलेऽपि प्रतिकूलाभावमाह—भय इत्यादि। भये दुर्भिक्षराजभये अतिसमये अतिकाले पित्रोर्मातापित्रोर्मृतेः संशये सति अन्येषां मातृपितृभ्यामन्येषां मृतानां प्रतिकूलं नास्ति। तथा चोक्तं ज्योतिःसागरे "दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये। प्रौढायामपि कन्यायां नान्यकूलं प्रतीक्षते" इति। विशेषान्तरमाह "आमयिविरक्तारादगतानामपि प्रतिकूलं नास्ति। आमयी रोगी दीर्घरोगीतियावत्। विरक्तो गृहादिषूदासीनः आराद्गतो दूरगतः देशान्तरगत इतियावत्। "आराद्दूरसमीपयोः" इत्यमरः। एषामपि मृतानां प्रतिकूलं नास्ति। तथा चोक्तं स्मृत्यन्तरे "दीर्घरोगाभिभूतस्य दूरदेशे स्थितस्य च। उदासवर्तिनश्चैव प्रतिकूलं न विद्यते" इति। अथान्यानपि शास्त्रार्थानाह—आतुर्यादिति। तुर्यश्चतुर्थः पुरुषः मूलपुरुषाच्चतुर्थ इत्यर्थः। तं मर्यादीकृत्य मृतस्य नरस्य क्रियाया अनभिभवे अभावे सति क्वचित्कारणान्तरात् क्रियायामकृतायां नान्दीमुखं नाचरेत् एतत्स्वगोत्र-विषयम्। तथा च मेधातिथिः "प्रेतकर्माण्यनिर्वृत्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे तु शुभं भवेत्" इति। नो कुर्यादिति। ज्वरितस्य मङ्गलं नो कुर्यात्। तथा च गर्गः "ज्वरस्योत्पादनं यस्य शुभं तस्य न कारयेत्। दोषनिर्गम-नात्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत्।" इति। अतीति। अतिव्याध्युद्भवे कस्यचित्कुलजस्य शरीरे अतिदारुणज्वरोत्पत्तौ निश्चयं नो कुर्यात् प्रतिकूलभीत्या "रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुःखमामये" इत्यादिवाग्भट्टे ज्वरपर्यायनामानि। तथा च गर्गः "केचिद्वुचुर्गृहस्थस्य कस्यचिद्दारुणो ज्वरः। तावन्मङ्गलकार्यं च न कार्यं निश्चितं बुधैः" इति॥ ५२॥

वागीश्वरी—अशौच विशेष पर दिन संख्या विचार--

भाई की मृत्यु पर पुत्र मरणाशौच दिन संख्या तुल्य (डेढ़मास) दिन समझना चाहिए।

देश काल भय और राजभय की उपस्थिति होने से, या युवती हुई कन्या का विवाह समय अतिक्रान्त हो रहा हो, या ऐसी कन्या के माता-पिता के लिये मृत्यु भय उपस्थित हो गया हो तो ऐसी स्थिति में अशौच लगने वाले सपिण्ड वान्धवादि का अशौच नहीं भी माना जा सकता है। अथवा, जो सपिण्ड दीर्घ रोगी हो, या जो विरक्त (घर का त्याग कर दिया है) या जो दूरदेशस्थ हो उसकी मृत्यु पर भी अशौच नहीं लगता। ४ पीढ़ी

के भीतर अपने वंश (सपिण्ड) में किसी के मरण पर जब तक उसके श्राद्धादि सपिण्डन प्रेत कर्म नहीं हुए हैं तब तक अपने किसी मंगल कार्य में नान्दीश्राद्ध आदि नहीं किये जाने चाहिए। फलतः सपिण्डनादि श्राद्ध के अनन्तर ही मंगल कार्य सम्पादन में नान्दी श्राद्धादि किये जा सकते हैं।

रोगी या रोगग्रस्त (वर-कन्या) का विवाह नहीं करना चाहिए। महाव्याधि (कठिन रोग) से ग्रस्त (वर-कन्या) का या किसी व्यक्ति का मङ्गल कार्य नहीं करना चाहिए। मृत्यु भय ही कारण है ॥ ५२ ॥

चेत्स्यात्सूतकमुक्तपूर्वसमये नारब्धकार्ये बुधः
कूष्माण्डी घृतहोमतो हि जननाशौचे क्वचित्कारयेत् ।
सिंहेज्ये न शुभं हितं हरिलवोर्ध्वं गौतमीदक्षिणे
जाह्नव्युत्तरतः क्वचिद्धितमजेऽर्केऽतोऽस्त्रमीत्यादिषु ॥ ५३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ महत्संकटे सति वृद्धिसूतके कर्मार्हतामाह—**चेत्स्यादिति।** उक्तपूर्वसमये यज्ञोद्वाहनचौलमौञ्जिकमित्यत्रोक्ते पूर्वकाले अनारब्धकार्ये सति कर्मणि अनारब्धे सति संकटे च प्राप्ते सति कूष्माण्डोघृतहोमतः कूष्माण्डीभि"र्यद्देवादेवहेडनम्" इत्यादितिसृभिर्ऋग्भिर्घृतहोमः कूष्माण्डोघृतहोमः तेन जननाशौचे दशाहतः जन्मदशाहमध्ये कर्म आचरेत्, कूष्माण्डीघृतहोमं शास्त्रोक्तं सदक्षिणं कृत्वा कर्म कर्तव्यमित्यर्थः। तदुक्तं स्मृत्यन्तरे "संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते। कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां दत्त्वा च पयस्विनीम्। चूडोपनयनोद्वाहौ प्रतिष्ठादिकमाचरेत्" इति। स्मृत्यन्तरे "अनारब्धविशुद्ध्यर्थं कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम्। गां दद्यात् पञ्चगव्याशी ततः शुद्ध्यति सूतकी" इति। अथ सिंहे गुरौ सति मङ्गलनिषेधमाह—सिंहेज्ये इति। सिंहे सिंहराशौ ईज्यः सिंहेज्यः तस्मिन्सति शुभं नित्यव्यतिरिक्तं न हितं स्यात्। इदं तु पूर्वमेव प्रपञ्चितम्। तथा च कालनिर्णये "शान्तिकं पौष्टिकं यात्रा प्रतिष्ठोद्वाहपूर्वकम्। न कुर्यात्सर्वमाङ्गल्यं सिंहस्थे च बृहस्पतौ।" तथा च माण्डव्यः "इष्टापूर्ते च चौलादिसंस्कारान्वास्तु कर्म च। अन्यानि शुभकर्माणि न कुर्यात्सिंहगे गुरौ" इति। अथ संकटे प्रवृत्तिमाह—हरिलवोर्ध्वमिति। क्वचित्संकटे देशकालभयादौ सिंहेज्येऽपि हरिलवादूर्ध्वं सिंहांशादूर्ध्वं गौतम्याः दक्षिणतः जाह्नव्या उत्तरतः शुभं कर्म हितं स्यात्। तथा च ज्योतिर्निबन्धे "सिंहे गुरौ सिंहनवांशकोर्ध्वं गोदावरीदक्षिणकूलजातैः। उद्वाहकालात्ययदोषभीतैः कार्यो विवाहश्च्यवनो ब्रवीति" इति। तथा च गर्गः "भागीरथ्युत्तरे तीरे गोदावर्याश्च दक्षिणे। व्रतोद्वाहादिकर्माणि सिंहसंस्थे न दुष्यति" इति। अर्थाद् गोदावर्याः उत्तरे भागीरथ्याः दक्षिणे एवं द्वयोर्गोदाजाह्नव्योर्मध्ये संकटेपि शुभं न आचरेदिति सिद्धम्। तथा च वसिष्ठः "गोदावर्युत्तरे तीरे भागीरथ्याश्च दक्षिणे। विवाहादि न कुर्वीत सिंहसंस्थे च वाक्पतौ" इति। अत्राप्यतिसंकटे प्रवृत्ति-

माह—अजेति। अस्त्रभीत्यादिषु रजोभयादिषु सत्सु अन्तः गोदाजाह्नव्योर्मध्ये हरिलवादूर्ध्वं सिंहेंज्ये सति अजे मेषे इने सूर्ये सति शुभमाचरेत् अजे इने इत्येतद्विवाहविषयमस्त्रभीत्यादिष्वित्यनेन पदेन लक्ष्यते। तथा च शौनकः "मेषस्थे दिवसकरे सिंहस्थे वज्रपाणिसचिवे च। यस्याः परिणयनमसौ साध्वी सुखसंपदोपेता" इति। व्रतबन्धस्तु मीनगे सूर्ये सति चैत्रे कर्तव्य इति ग्रन्थकृता प्रागेवोक्तम्। अनिमिषरविमधौ कार्यमिति। तथा च मौञ्जीपटले "जन्मभादष्टगे सिंहे नीचे वा शत्रुगे गुरौ। मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ"। अथवा इने ईज्ये तत्पदं सर्वशुभसाधारणविषयम्। तथा च शौनकः "सिंहस्थे देवगुरौ मेषस्थो यदि भवेत्सहस्रांशुः। मङ्गलकार्यं कुर्यादिति नारदपराशरौ वदतः" इति। अस्त्रभीत्यादिष्वित्यत्रादिशब्देन वृद्धपितृमरणशङ्कायां कर्त्रन्तराभावाद्यतिसंकटे ज्ञेयम्॥ ५३॥

–वागीश्वरी––आवश्यकतानुसार कर्म काल विचार—

श्लोक संख्या ४३ में कथित मंगल कार्य के आरम्भ होने से पूर्व ही यदि सूतक (जनन-मरण अशौच) लग जाय तो आवश्यक कार्य जननाशौच में भी शास्त्रोक्त कूष्माण्डी-हवन आदि कार्य करने पर ईप्सित उस कार्य को क्रिया जा सकता है।

सिंह राशिस्थ गुरुविचार—बृहस्पति जब सिंह राशि का अर्थात् मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी के १ चरण तक में हो तो भी मंगलादि शुभ कर्म नहीं किये जाने चाहिए। अति-आवश्यकता पर गङ्गा (भागीरथी) के उत्तर देश और गौतमी से दक्षिण के देशों में आवश्यक मंगल कार्य किये जा सकते हैं जब कि सिंह राशि के गुरु में सिंह राशि का नवांश १६°।४० सोलह अंश चालीस कला बीत जाय तभी शुभ कार्य किये जा सकते हैं। श्रीगङ्गा और श्रीगोमती के मध्यवर्त्ती देशों में तो सिंह नवांश भी त्याज्य है।

यदि कन्या युवती होने जा रही है और ऋतुमती (रजस्वला होने) का भय है तो सिंह राशि में रहते हुए बृहस्पति पर भी यदि सूर्य ग्रह मेष राशि का हो गया है (सौर वैशाख) तो ऐसी स्थिति में गङ्गा और गोदावरी के मध्य के देशों में विवाह कार्य किये भी जा सकते हैं॥ ५३॥

देशग्रामगृहज्वरव्यवहृतिद्यूतेषु दाने मनौ
सेवाकाकिणिवर्गसंगरपुनर्भूमेलके नामभम्।
जन्मर्क्षं परतो वधूपुरुषयोर्जन्मर्क्षमेकस्य चे-
ज्ज्ञातं शुद्धिमितो विलोक्य च तयोर्नामर्क्षयोर्मेलकः॥ ५४॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ नामराशिजन्मराश्योर्निर्णयमाह—देशः प्रसिद्धः ग्रामः प्रसिद्धः गृहं प्रसिद्धम् ज्वरः प्रसिद्धः इत्यादिषु नामराशिः प्रधानं स्यात्। एतदुक्तं भवति देशग्रामगृहेषु प्रवेशाद्यर्थं ज्वरे चन्द्राद्यवलोकनार्थं व्यवहृतिर्व्यवहारः द्यूतं

प्रसिद्धम् दानं तुलापुरुषादि एषु चन्द्रबलाद्यर्थं मनौ मन्त्रे मेलनार्थं चन्द्रबलाद्यर्थं च सेवा राजादिसेवा तत्र मेलनाद्यर्थं काकिण्यां काकिण्यवलोकनार्थं वर्गशुद्ध्यर्थं संगरे संग्रामे चन्द्रबलाद्यर्थं पुनर्भूमेलके पुनर्भूमेलनाय नामराशिरवलोकनीय इत्यर्थः। परतः एभ्योऽन्यत्र विवाहयात्रादौ जन्मर्क्षं जन्मराशिः प्रधानं स्यात्। तथा च ज्योतिर्निबन्धे "देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवायां व्यवहारके। नामराशेः प्रधानत्वं जन्मराशिं न चिन्तयेत्" इति। "काकिण्यां वर्गशुद्धौ च दाने द्यूते ज्वरोदये। मन्त्रे पुनर्भूवरणे नामराशेः प्रधानता" इति। "विवाहे सर्वमाङ्गल्ये यात्रादौ ग्रहगोचरे। जन्मराशेः प्रधानत्वं नामराशिं न चिन्तयेत्" इति। अथ वधूवरयोर्मध्ये एकस्य जन्मर्क्षं ज्ञातमेकस्य न ज्ञातं तदा शुद्धिमेलादिकं कथमवलोकनीयमित्याह। वधूपुरुषयोरिति। वधूपुरुषयोर्मध्ये चेद्यदि एकस्य जन्मर्क्षं ज्ञातमेकस्य न ज्ञातं तदा इतः ज्ञातात् जन्मर्क्षादिकस्य शुद्धिं विलोक्य तयोर्वधूवरयोर्नामर्क्षयोर्मेलको वर्णवश्यादिकः पूर्वोक्तो विलोक्यः। अर्थाद्द्वयो राश्यज्ञाने नामर्क्षादेव सर्वं विलोक्यम्। तथा च शार्ङ्गधरः "विवाहघटनं चैव लग्नज ग्रहजं बलम्। नामभाच्चिन्तयेत्सर्वं जन्म न ज्ञायते यदा" ॥ ५४ ॥

वागीश्वरी--जन्म नाम, और व्यावहारिक नाम राशि से संस्कार कर्म विचार—

किसी देश, ग्राम, गृहप्रवेश समय, ज्वरादि रोग आरम्भ समय, कार्य विशेष के आरम्भ में, द्यूत (जुआ आदि) खेल में, तुलादान, मन्त्रदीक्षा ग्रहण, नौकरी विचार में, ग्राम गृह के किसी विचार में, वर्ग शुद्धि विचार, युद्ध और स्त्रियों के पुनर्विवाह समय में व्यावहारिक पुकारने के नाम की राशि का प्राधान्य कहा गया है।

उक्त विषयों से अतिरिक्त (विवाह-यात्रादि गोचर विचारादि) में जन्मनक्षत्र सम्बन्धी नाम राशि की प्रधानता कही गई है। यहाँ ऐसे स्थल पर नाम राशि विचार मुख्य नहीं है।

वर कन्या दोनों में दोनों की या एक की ही जन्मराशि ज्ञात हो (दूसरे की नहीं) तो इस जन्म नक्षत्र से ही गुरु (बृहस्पति) की शुद्धि देखते हुए अन्य गणना विचार सभी नाम नक्षत्र से ही करने चाहिए।

एक के जन्म नक्षत्र और दूसरे का नाम नक्षत्र से गणनादि विचार नहीं करना चाहिए। फलतः दोनों के जन्म नक्षत्र या दोनों के नाम नक्षत्र से ही गणनादि विचार करना उचित कहा गया है ॥ ५४ ॥

भं नामादिमवर्णतोऽवकहडाद्युज्यादिवर्णाद्द्वयौ
तुल्यावत्र शसौ खषौ यदभिधाबह्वयोऽस्य नामान्तिमम्।
आर्यानुद्वहने जनुर्भममलं पट्टस्य बन्धे जगु-
र्गेहग्रामनृपाभिषेककृषिमौञ्ज्यन्नाशने भूषणे ॥ ५५ ॥

इति विवाहप्रकरणम् ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ मेलकार्थं नाम्नो नक्षत्रज्ञानमाह—**भं नामेति**। नामादिमवर्णो नामाद्यक्षरं तस्मात् अवकहडं शतपदं चक्रं यस्मात् चक्रात् चूचेचोलापदेष्वाद्येत्यादयः श्लोका निबद्धास्तस्माच्चक्रात् भं नक्षत्रं ज्ञेयम्। तद्यथा चूडामणीतिनाम्नः आद्याक्षरात् चकारात् चूचेचोला इत्यादिना अश्विनीनक्षत्रं तत्र प्रथमचरण इतिवत् ज्ञेयमित्यर्थः। तथा च दीपिकायाम् "जन्म न ज्ञायते येषां तेषां नाम गवेष्यते। चक्रेऽवकहडे भांशौ तन्नाडो कैश्चिदग्निभात्" इति। तन्नाडोत्यस्यार्थः। यदा नाम्नो नक्षत्रं गवेष्यते तदा अग्निभात् कृत्तिकानक्षत्रात् नाडी विलोक्येतिकैश्चिदुक्तं कैश्चिदिति तन्मतमग्राह्यम् तस्मादश्विन्यादित्रिकं व्यस्तमिति न्यायेन नाड्यवलोकनं बहुसंमतमितिभावः। अथ नामादौ संयोगाक्षरे सति किंकर्त्तव्यमित्यपेक्षायामाह—युज्यादिवर्णादिति। युजि युक्ते अक्षरे संयुक्ताक्षरे प्रद्युम्नेत्यादिकेनामादौ युक्ताक्षरे सति आदिवर्णात् प्रथमवर्णात् संज्ञेयम्। यथा प्रद्युम्ने नाम्नि प्रथमवर्णः प्रः तत्राप्याद्यः पकारस्तस्मात् भं ज्ञेयमित्यर्थः। प्रियवचेत्यादौ पिकार एव द्रुपदेत्यादौ दुकार एव ग्राह्य इत्यादि स्वरशास्त्रे "संयोगाक्षरजे नाम्नि ज्ञेयं तत्रादिमाक्षरम्" इति। अथ अवकहडचक्रे नामाद्यक्षराभावे सति किं कर्तव्यमित्यपेक्षायामाह—बवौ तुल्यावत्र शसौ खषाविति। अत्रावकहडचक्रे बवौ इति इमौ वर्णौ तुल्यौ तथा च खषौ शिव इति नाम्नि सति अवकहडचक्रे शकारस्याभावात् शकारस्थाने सकारांगीकारात् भं ज्ञेयमितिभावः। एवमेव शसौ तथा खषौ परस्परवर्णौ ज्ञात्वा भं ज्ञेयम्। तथा च स्वरशास्त्रे "खषौ शसौ बवौ चैव ज्ञेयाविति परस्परम्" इति। अन्यच्च "न प्रोक्ता ङञणा वर्णानामादौ सन्ति ते नहि। चेद्भवन्ति तथा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रमम्" इति "चक्रं शतपदं वक्ष्ये ऋक्षांशाक्षरसंभवम्" इति। स्वरशास्त्रोक्तमवकहडचक्रं प्रसिद्धम्। अथ यस्य बहूनि नामानि सन्ति तस्य कस्मान्नाम्नो भं ज्ञेयमित्याकांक्षायामाह—यदभिधाबह्वयोऽस्य नामान्तिममिति। यस्य अभिधा नामानि बह्वयो भवन्ति तस्यान्तिमं पश्चाद्भवं नाम ग्राह्यम्। तथा च स्वरशास्त्रे "बहूनि यस्य नामानि नरस्य स्युः कथंचन। तस्य पश्चाद्भवं नाम ग्राह्यं स्वरविशारदैः" इति। अथ जन्मनक्षत्रं येषु येषु शस्तं तान्याह—आर्या इति। नुद्वहने पुरुषविवाहे जनुर्भं जन्मनक्षत्रमसलं निर्दूषणं जगुः तथा पट्टस्य बन्धने गेहं गृहकरणप्रवेशनं तथा ग्रामो ग्रामप्रवेशनं नृपाभिषेको राजाभिषेकः कृषिः प्रसिद्धा मौञ्जी प्रसिद्धा अन्नाशनं नवान्नप्राशनं भूषणं भूषणधारणम् एषां समाहारस्तस्मिन् जन्मभं शुभद जगुः। तथा च ज्योतिःप्रकाशे "जन्मभं कृषिनृपाभिषेचने भूषणे नगरगेहकर्मणि। आधिपत्यभुवि मौञ्जिबन्धने पुंविवाह उदितं शुभं बुधैः" इति। राजमार्तण्डे। "वसन्तसमये दद्यादब्दे गर्भाष्टमेऽष्टमे। मेखलां जन्ममासेऽपि जन्मभे च तिथावपि" इति। नारदः "पट्टबन्धनचौलान्नप्राशने चोपनायने। शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि" इति ॥ ५५ ॥

इति स्वोपज्ञमुहूर्तमार्तण्डटीकायां मार्तण्डवल्लभायां
विवाहप्रकरणं समाप्तम् ॥

नक्षत्र-राशिज्ञानार्थं तालिका

राशयः	मेषः									वृषः									मिथुनम्									कर्कटः								
नक्षत्र-पादाः	चू	चे	चो	ला	लि	लू	ले	लो	अ	इ	उ	ए	ओ	वा	वी	वू	वे	वो	का	की	कु	घ	ङ	छ	के	को	हा	ही	हु	हे	हो	ड	डी	डू	डे	डो
नक्षत्राणि	अश्विनी				भरणी				कृत्तिका				रोहिणी				मृगशिराः				आर्द्रा				पुनर्वसु				पुष्य				आश्लेषा			

राशयः	सिंह									कन्या									तुला									वृश्चिक								
नक्षत्र-पादाः	मा	मी	मु	मे	मो	टा	टी	टू	टे	टो	पा	पी	पू	ष	ण	ठ	पे	पो	रा	री	रू	रे	रो	ता	ती	तू	ते	तो	ना	नी	नु	ने	नो	या	यी	यु
नक्षत्राणि	मघा				पूर्वाफाल्गुनी				उत्तराफाल्गुनी				हस्त				चित्रा				स्वाती				विशाखा				अनुराधा				ज्येष्ठा			

राशयः	धनुः									मकरः									कुम्भः									मीनः								
नक्षत्र-पादाः	ये	यो	भा	भी	भू	ध	फ	ढ	भे	भो	ज	जी	खी	खु	खे	खो	गा	गी	गु	गे	गो	स	सी	सू	से	सो	दा	दी	दू	थ	झ	ञ	द	दो	चा	ची
नक्षत्राणि	मूल				पूर्वाषाढ़ा				उत्तराषाढ़ जूजेजोख अभिजित्				श्रवण				धनिष्ठा				शतभिषा				पूर्वभाद्रपदा				उत्तरभाद्रपदा				रेवती			

वागीश्वरी--कार्य विशेष पर जो नाम नक्षत्र की प्रधानता दी गई है उसके ज्ञान का उपाय—

जन्म नाम (१) नक्षत्र सम्बन्धी (२) पुकार-व्यावहारिक सम्बन्धी नाम में यदि राशि के ज्ञान के लिए सर्वप्रथम नाम के प्रथम अक्षर से अवकहड़ा चक्र के अनुसार नक्षत्र का ज्ञान करना चहिए। जैसे—(१) विजया (२) शोभा, विभा (३) लीला में वी या-वि से रोहिणी नक्षत्र वृष राशि होने से भी सौ० (१) विजया की वृष राशि एवं तथा स सी से सो...सो और शो दोनों सकार होने से "शोभा" की कुम्भ एवं ली...भरणी मेष राशि में होने से "लीला" की मेष राशि होती है। ध्यान देने की बात अ व क ह ड़ चक्र में व = ब, श = स, ष = ख, यथा "शिवेश्वर" में नक्षत्र शतभिषा राशि कुम्भ। अनेक नाम के नर, नारी के लिए अन्तिम नाम के प्रथम अक्षर से नक्षत्र और राशि का ज्ञान करना चाहिए।

पुरुषों के विवाह, राजा के पट्टबन्धन, गृह के आरम्भ और गृह प्रवेश, ग्राम, राजाभिषेक, कृषि कर्म, उपनयन, नवान्नभक्षण और आभूषणादि धारण में आचार्यों के मत से जन्म नाम नक्षत्र विचार शुभप्रद है। यद्यपि जन्म तारा विशेष शुभ नहीं भी है तो उक्त सभी कर्मों में जन्म तारा शुभ कही गई है ॥ ५५ ॥

नक्षत्र-राशिज्ञान की स्पष्टता के लिये यहाँ पर अवकहड़ा चक्र और शतपदचक्र के अनुसार एक तालिका दी गई है। (देखें पृ० १०८)

॥ श्री मुहूर्त्तमार्तण्ड ग्रन्थ का पर्वतीय श्रीकेदारदत्त जोशी
कृत वागीश्वरी व्याख्यान सम्पन्न ॥

अथाग्न्याधानम्

अग्न्याधानमवादि दारसमये दायाद्यकाले परै-
र्द्वीशाग्निध्रुवशाक्रपुष्यमृगपौष्णैर्व्यब्जलग्नांशयोः।
जीवेन्द्वर्ककुजैः सुतार्द्धिगुरुकेन्द्रस्थैरनस्तं गतैः
स्वोच्चेष्टर्क्षगतैः परैरुपचयैर्वित्ताद्यशुद्धौ बुधैः ॥१॥ इत्यग्न्याधानम्।

मार्तण्डवल्लभा—अथाग्न्याधानं वृत्तेनैकेनाह—**अग्न्याधानमिति**। अग्नेराधानं बहुभिर्बुधैर्दारकाले अवादि कथितम्। चतुर्थीकर्मानन्तरं दारकालः। परैराचार्यैर्दायाद्यकाले धनविभागकाले अवादि। तथा च वृत्तशते "अग्न्याधानं दारकाले विधेयं कैश्चित्प्रोक्तं तच्च दायाद्यकाले" इति॥ तथा च कात्यायनगृह्ये "आवसथ्याधानं दारकाले दायाद्यकाले एकेषाम्" इति। एतद्भाष्यकारैरेवं व्यवस्थापितम् अभ्रातृमतो

दारकाले भ्रातृमतो दायाद्यकाले प्रोक्तमिति। स्मृतिषु कृतदारस्याग्निना विना बहुदोषो दृश्यते। तथाहि "कृतदारो नैव तिष्ठेत्क्षणमप्यग्निना विना। तिष्ठन्स चेद्द्विजो व्रात्यस्तथा च पतितो भवेत् ॥ पितृपाकोपजीवी स्यात् भ्रातृपाकोपजीवकः। ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्यैताग्निना विना ॥ यो नाग्निमुपसेवेत दारान्कामादृतावपि। पारदारी स विज्ञेयः स्वस्त्रीस्वीकरणादपि ॥ यथा स्नानं यथा सन्ध्या वेदस्याध्ययनं यथा। तथैवोपासनं दृष्टं न स्थितिस्तद्वियोगतः" ॥ इत्यादि। तस्मात्सूत्रकारैः कात्यायनादिभिः दारकाल एव बाहुल्येनोक्तम्। अग्न्याधाननक्षत्राण्याह—कैः द्वीशाग्निध्रुवशाक्रपुष्यमृगपौष्णैः द्वीशं विशाखा अग्निः कृत्तिका ध्रुवाणि त्र्युत्तरारोहिण्यः शाक्रं ज्येष्ठा पुष्यमृगौ प्रसिद्धौ पौष्णं रेवती तैः। कयोः व्यब्जलग्नांशयोः विगताः अब्जाः याभ्यां तौ व्यब्जौ तौ च तौ लग्नांशौ च तयोः। अब्जाः जलचरराशयः मकरस्य पश्चिमार्द्धं कुम्भो मीनः कर्कटश्चैते जलचरराशयः चन्द्रोऽपि जलजः एतै रहितयोर्लग्ननवांशयोरित्यर्थः। तथा च वृत्तशते "कर्किनक्रघटमीनविलग्ने वांशके ननु गतेऽथ तदीये। लग्नगे कुमुदिनीदयिते वा नाशमेति जनितोऽपि हुताशः" इति। कैः जीवेन्द्वर्ककुजैः सुतर्द्धिकेन्द्रगुरुस्थैः जीवो गुरुः इन्दुश्चन्द्रः अर्कः सूर्यः कुजो भौमः तैः। सुतः पञ्चमं ऋद्धय उपचयभवनानि गुरुर्नवमं केन्द्राणि प्रथमचतुर्थसप्तमदशमानि ५, ३, ६, ११, १०, ९, १, ४, ७, १० एतत्स्थानगतैः कथंभूतैः अनस्तंगतैः सूर्यकिरणैरलुप्तैः। पुनः कथंभूतैः स्वोच्चेष्टर्क्षगतैः स्वश्च उच्चानि च इष्टाश्च एषामृक्षाणि राशयस्तद्गतैः स्वराश्युच्चराशिमित्रराशिगतैरित्यर्थः। परैरुक्तेभ्योऽन्यैर्ग्रहैः उपचयैः त्रिषडेकादशदशमगैः। कस्यां सत्यां वित्ताद्यशुद्धौ सत्यां वित्तं द्वितीयम् आद्यं लग्नं तयोः शुद्धिः क्रूरराहित्यं तस्यां सत्यां शेषं पूर्ववत्। प्रायश्चन्द्रमित्युक्तमवलोक्यम्। तथा च वृत्तशते "केन्द्रर्क्षोपचयत्रिकोणभगताः सूर्यारजोवेन्दवः शेषाश्चोपचयस्थिता यदि तदाग्न्याधानमुक्तं शुभम्। चन्द्रे नैधनगे म्रियेत युवतिर्भौमे पुमानष्टमे शेषैर्मृत्युगतै रुजा च सहितोऽग्न्याधानकर्ता भवेत् ॥ नो कुर्याद्धुतभुक्परिग्रहमिह क्ष्मापुत्रजीवेन्दुभिर्नीचस्थैर्विजितै रिपोर्भवनगैरस्तंगतैर्वा द्विजैः।" इति। तथा च संहितासारे। "अग्न्याधानं न कुर्वीत कर्किनक्रत्रये विधौ। लग्नगे धनगे पापे तथा रन्ध्रग्रहान्विते।" इति ॥ १ ॥

॥ इति स्वोपज्ञमुहूर्तमार्तण्डवल्लभायामग्न्याधानप्रकरणम् ॥

वागीश्वरी—अग्निहोत्र का मुहूर्त्त बताया जा रहा है—

कोई आचार्य विवाहोत्तर चतुर्थी कर्म के पश्चात् तथा कुछ विद्वानों के मत से पैतृक सम्पत्ति के विभाजन के समय अग्निहोत्र ग्रहण करना चाहिए।

विशाखा, कृतिका, तीनों उत्तरा, रोहिणी, ज्येष्ठा, पुष्य, मृगशिरा और रेवती इन नक्षत्रों में, जलचर लग्न राशियों को छोड़ कर अन्य लग्न, नवांश लग्नों में सूर्य-चन्द्र-मंगल और बृहस्पति ये चार ग्रह जब अपनी उच्च, अपनी, अपने मित्रग्रह की राशियों में और

उदय हों, तथा लग्न से ५, ३, ६, १०, ११, ९, १, ४, ७, इन्हीं स्थानों (२, ५, ८, १२वें न रहें) अन्य ग्रह शनि, शुक्र और बुध ग्रह लग्न से ३, ६, १०, ११ स्थानों में बैठे हों, तथा लग्न और द्वितीय स्थान पाप ग्रह रहित हों तो विद्वान् आचार्यों के मत से ऐसे उत्तम शुभ मुहूर्त्त में अग्निहोत्र कर्म ग्रहण करना चाहिए ।। १ ।।

इति मुहूर्त्त मार्त्तण्ड ग्रन्थ के ५वें अग्निहोत्र प्रकरण की पर्वतीय
श्री केदारदत्त जोशी कृत वागीश्वरी व्याख्या सुसम्पन्न ।

वास्तुप्रकरणम्

नामर्क्षाद्द्विसुताङ्कदिग्भवगतो ग्रामः शुभोऽन्योऽन्यथा
तत्कोणेऽन्त्यभुवां शुभं निवसतां दोषाः परेषामलम् ।
कन्यार्कालिधनुस्तुलाक्रियघटाः कौर्प्यण्डजौ याम्यतो
मध्येऽन्ये न्यवसन्नथैन्द्रककुभो वर्गाः स्युरोजस्विनः ।। १ ।।

मार्तण्डवल्लभा—अथ गृहप्रकरणं विवक्षुस्तावद्ग्रामविचारमाह—**नामर्क्षादिति ।** नामर्क्षान्नामराशेः सकाशात् द्वि २ सुत ५ अंक ९ दिक् १० भव ११ गतो ग्रामः शुभः स्यात् । अन्य उक्तविपरीतो ग्रामः अन्यथा स्यादशुभः स्यादित्यर्थः । तदुक्तं ज्योतिःसागरे—"एकभे सप्तमे ग्रामे वैरं हानिस्त्रिषष्ठगे । तुर्याष्टद्वादशे रोगः शेषस्थाने सुखं भवेत् ॥" इति । एवं ग्रामं शुभाशुभमभिधायेदानीं ग्रामदिङ्नियममाह—तत्कोण इति । तत्कोणे तस्य ग्रामस्य कोणे अन्त्यभुवां रजककर्मकारादीनां निवसतां वसतिं कुर्वतां शुभं स्यात् । "रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च ॥ कैवर्तभेद भिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः" इत्यादीनां ग्रामकोणे शुभं स्यादित्यर्थः । तत्कोणे निवसतां परेषां वर्णानामलमत्यर्थं दोषाः स्युः । अशुभानि स्युरित्यर्थः । तथा च ज्योतिर्निबन्धे "भवनपुरग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषः ॥ श्वपचादयोऽन्त्यजाद्यास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति" एवं जातीनां शुभाशुभदिग्विभागमुक्त्वा राशिपरत्वेन दिक्षु वसतिमाह । **कन्येति ।** यमाशादितः दक्षिणस्याः सकाशात् क्रमेणाष्टासु दिक्षु कन्यार्कालिधनुस्तुलादयो राशयो निवसन्ति । अन्ये उर्वरिता मध्ये निवसन्ति । एतदुक्तं भवति अभीष्टं ग्रामं नवभागं परिकल्प्य मध्यभागदक्षिणभागे कन्या वसति कन्याराशिना दक्षिणभागे गृहं न कार्यमित्यर्थः । तथैव नैर्ऋते कर्कटः पश्चिमे धनुः वायव्ये तुला उत्तरे अजो मेषः ईशान्यां घटः कुम्भः पूर्वे कौर्पी वृश्चिकः आग्नेये अण्डजो मीनः निवसति । अन्ये वृषमिथुनसिंहमकरा मध्यभागे निवसन्ति । एवं राशिपरत्वेन दिङ्नियममुक्त्वा इदानीं वर्गपरत्वेन दिङ्नियममाह—अथेति ।

इन्द्रककुभः सकाशात् अष्टासु दिक्षु अप्रमुखाः अष्टौ वर्गाः अकचटतपयशवर्गाः इत्येते प्रसिद्धाः ओजस्विनो बलवन्तः स्युरित्युत्तरश्लोकेनान्वयः ॥ १ ॥

वागीश्वरी---गृहसम्बन्धी विशेष विचार बताया जा रहा है--

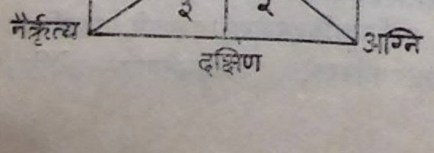
जिस नाम के ग्राम, कसबा, नगर आदि जिसमें घर बनाकर निवास किया जाता है उसका नाम (जैसे वाराणसी, प्रयाग, हरिद्वार) और परिवार का ज्येष्ठ श्रेष्ठ व्यक्ति जो इन उक्त किन्हीं स्थानों में गृह निर्माण के साथ जीवन का सदुपयोग करना चाहता है उस व्यक्ति को नाम राशियों को समझ कर यदि निवास करने वाले की नाम राशि से नगर-ग्राम की नाम राशि, दूसरी, पाँचवीं, नवीं, दशमी और ग्यारहवीं हो तो वह नगर या ग्रामादि उस नगर निवास के इच्छुक व्यक्ति के लिए शुभ भविष्यप्रद होता है। अन्यथा अशुभप्रद होता है।

ब्राह्मणादि वर्ण भेद से ग्राम की समग्र सीमा के कोणगत भूमि में अन्त्यज, शूद्र अस्पृश्य जातियों के निवास स्थान ग्राम हिताय कहे गए हैं। उक्त अन्त्यजादि जातियों के अतिरिक्त अन्य जातियों को ग्राम के कोनों पर नहीं बसना चाहिए। ग्राम की लम्बाई और चौड़ाई के गुणनफल, (वर्ग, मीटर गज आदि में जिस माप का हो) अर्थात् क्षेत्रफल में ९ का भाग देने से दक्षिण के नवम भाग में कन्या राशि, नैॠत्य कोण में कर्क, पश्चिम में धनु, वायुदिशा में तुला, उत्तर में मेष, ईशान में कुम्भ, पूर्वदिशा में वृश्चिक और अग्नि-दिशा में मीन राशि वाले व्यक्तियों का आवास शुभ नहीं है। फलतः कन्या राशि का मकान मालिक दक्षिण छोड़कर तुला राशि का मकान स्वामी को उत्तर दिशा इत्यादि (एवं समझ कर) में गृहनिर्माण नहीं करना चाहिए।

तथा अ क च ट त प य और श वर्गादि अक्षरों में जैसे अ वर्ग = अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ, क वर्ग = क ख ग घ ङ···एवं य वर्ग = य र ल व, श वर्ग = श ष स ह··· क्रमशः अ वर्ग के लिए पूर्व, क वर्ग के लिए अग्नि, च वर्ग = दक्षिण, ट वर्ग = नैॠत्य, त वर्ग = पश्चिम, प वर्ग=वायव्य, य वर्ग उत्तर और श वर्गादि अक्षरों के पुरुषों को ईशान कोण में मकान बनाना चाहिए।

यदि राशि अनुसार की दिशा पूर्व और वर्ग नाम राशि दिशा पश्चिम हो तो ऐसी स्थिति में वर्ग नाम राशि को ही प्रधानता दी जानी चाहिए।

दिशा ज्ञान में दिशा क्रम चक्र



जैसे सीमा १ = पूर्व दिशा
२ = अग्नि दिशा
३ = दक्षिण दिशा
४ = नैॠत्य दिशा
५ = पश्चिम दिशा
६ = वायव्य दिशा
७ = ईशान दिशा
८ = उत्तर दिशा ॥ १ ॥

अष्टावप्रमुखाः स्वपञ्चमपरा द्विघ्नः स्ववर्गोऽन्ययुक्
कष्टः काकिणिका गजैर्मिथ इमा यस्याधिकाः सोऽर्थदः ।
श्वेतारक्तकपीतकृष्णवसुधा स्वादुः कटुस्तिक्तकाः
काषाया घृतशोणितान्नमदिरागन्धाः शुभा विप्रतः ॥ २ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अष्टाविति । एतदुक्तं भवति । अआइईउऊइत्यादिकः षोडशाक्षरो वर्गः पूर्वस्यां बली कादिकः पञ्चाक्षर आग्नेय्यां चादिको दक्षिणस्यां टादिको नैर्ऋत्यां तादिकः पश्चिमस्यां पादिको वायव्यां यादिक उत्तरस्यां शादिक ईशान्यां बली । अयमर्थः । स्वनामादिमाक्षरात् वर्गं ज्ञात्वा स्वस्थाने गृहं कार्यमितिभावः । यतः स्वस्वस्थाने प्राणिनो बलवन्त इति लोके प्रसिद्धम् । किंलक्षणा वर्गाः स्वपञ्चमपराः स्वेभ्यः पञ्चमाः पराः वैरिणो येषां ते तथा यथा अवर्गस्य पञ्चमस्तवर्गः सोऽस्य वैरी कवर्गस्य पञ्चमः पवर्गः सोऽस्य वैरी एवं सर्वेषां वर्गाणां वैरिणो ज्ञातव्याः । वैरित्वं हि स्वामिवशेन । एतदुक्तं भूपालवल्लभे "वर्गेशास्ताक्ष्यमार्जारसिंहश्वासर्पमूषकाः । इभैणौ पूर्वतस्तेषां स्ववर्गात्पञ्चमो रिपुः" इति । तस्मात्स्ववैरिवर्गस्य दिशि गृहं न कार्यमितिभावः । अर्थादन्यत्र मध्यमं तत्रापि स्वदिग्वर्गासन्नं शुभम् वैरिदिगासन्नमशुभमिति बुद्ध्या ज्ञेयम् एवं स्ववर्गग्रामवर्गयोर्मित्रारित्वमवलोक्य वासः कर्तव्य इति सिद्धम् । तत्र राशिघटितवर्गघटितयोर्मध्ये राशिघटितं बलवत् । एतदुक्तं ज्योतिःसागरे "केऽप्याहुरथ वर्गाणां स्वस्थाने शुभदं गृहम्" इति । अथ वर्गघटिते काकिणिका आह । द्विघ्न इति । स्ववर्गो ग्रामवर्गः वसति कर्तुर्वर्गश्च द्विघ्नः द्विगुणितः कार्यः मिथः अन्ययुक् अन्यवर्गयुक्कार्यः गजैरष्टभिस्तष्टः शेषितः सन् काकिणिकाः स्युः । इमाः काकिणिकाः यस्य अधिकाः सोऽर्थदो धनदाता स्यात् । एवं ग्रामदिङ्नियममुक्त्वा इदानीं "निर्माणे पत्तनग्रामक्षेत्रादीनां समन्ततः । क्षेत्रमादौ परीक्षेत गन्धवर्णरसप्लवैः ॥" इत्युक्तत्वात् तावद्वर्णपरत्वेन भूमेर्वर्णरसगन्धान् वृत्तार्द्धेनाह—श्वेतेति । श्वेतारक्तकपीतकृष्णवसुधाः विप्रतः ब्राह्मणात् सकाशात् वर्णानां शुभाः शोभनाः स्युः । श्वेतवसुधा पृथ्वी ब्राह्मणस्य आरक्तवसुधा क्षत्रियस्य पीतवसुधा वैश्यस्य कृष्णवसुधा शूद्रस्य शोभनेति अर्थात् मिश्रजातीनां मिश्रा शोभना । तथाच वसिष्ठः "श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम् । विशां पीता च शूद्राणां कृष्णान्येषां च मिश्रिता ॥" इति । एवं वर्णमुक्त्वा इदानीं रसमाह—स्वादुरिति । स्वादुर्मधुरा वसुधा ब्राह्मणस्य शोभना कटुर्मरीचरसा क्षत्रियस्य तिक्तका निम्बरसा वैश्यस्य काषाया हरीतकीरसा शूद्रस्य शोभनेति । अर्थान्मिश्राणां मिश्रा शोभना तथा च नारदः "मधुरं कटुकं तिक्तं कषायश्च रसाः क्रमात्" एवं रसानुक्त्वा गन्धानाह—घृतेति । घृतगन्धा ब्राह्मणस्य शोणितगन्धा रक्तगन्धा क्षत्रियस्य अन्नगन्धा वैश्यस्य मदिरागन्धा मद्यगन्धा शूद्रस्य मिश्राणां मिश्रगन्धा शुभेत्यर्थः । तथा चोक्तं कारिकायाम्

"घृतासृगन्नमदिरागन्धा च क्रमशो भवेत्" इति। नानाग्रन्थेषु रसगन्धानां नानात्वं तद्विकल्पतो ग्राह्यम्। तथा च नारदः "मधुपेरान्नपिशितगन्धवर्णानुपूर्वकम्। मधुरं कटुकं तिक्तं कषायश्च रसाः क्रमात्॥" पेरगन्धा कषायगन्धा अन्यत्सुगमम्। तथा च कारिकायाम् "घृतासृगन्नमद्यानां गन्धा च क्रमशो भवेत्। मधुरा स्यात्कषायाम्ल-कटुका चानुपूर्वशः॥" इति॥ २॥

वागीश्वरी--काकिणी साधन के साथ मकान योग्य भूमि के गुण-धर्म गृहपति और भूमि के नाम वर्गाक्षरों की संख्या समझ कर मकान मालिक के नाम की वर्ग संख्या एवं जहाँ मकान बनाना है उस नगर ग्राम के नाम की वर्ण संख्या को पृथक्-पृथक् द्विगुणित कर, उसमें अन्योऽन्य नामों की वर्ग संख्या जोड़ कर दोनों के योग में ८ आठ का भाग देने से शेष तुल्य काकिणी होती हैं। जिसकी अधिक काकिणी होंगी वह ऋणी होता है इसलिए मकानमालिक की काकिणी कम और भूमि की काकिणी अधिक होनी चाहिए तभी उस भूमिस्थ मकान से मकान मालिक को सदा लाभ होता रहेगा।

उदाहरण से जैसे केदार नाम के व्यक्ति के लिए काशी क्षेत्र के मकान से लाभ हानि कैसी रहेगी।

यहाँ पर केदार का क वर्ग और काशी का भी क वर्ग होने से

केदार २ × २ = ४ + २ = ६ ÷ ८ = शेष ६,
एवम् काशी २ × २ = ४ + २ = ६ ÷ ८ = शेष ६ } हानि-लाभ दोनों समान ठीक हैं। पर काशी हर हर महादेव के लाभ को आंकड़ों से नहीं आंका जाता विद्या राजधानी श्री काशी का लाभ अवर्णनीय है।

यदि--हर हर महादेव शम्भो !

जय काशी विश्वनाथ गङ्गे !

इस प्रसिद्ध "वाराणसी नगरी और विश्वनाथ राजधानी" से केदार, और वाराणसी की काकिणी भी विचारणीय है तो केदार क वर्ग = २ × २ = ४ + वाराणसी ७=११ ÷ ८ = शेष ३ यह केदार है। तथा वाराणसी य वर्ग संख्या = ७ × २ = १४ + क वर्ग = २ = १६ ÷ ८ शेष = ० या ८ अर्थात् केदार नाम के व्यक्ति के लिए श्री वाराणसी नगरी अतिसुन्दर सुखानन्द दायिनी सिद्ध होती है क्योंकि वाराणसी की काकिणी य = ८ है और केदार नाम की काकिणी = ३ होने से श्री केदार की श्री वाराणसी से ८−३ = ५ प्रतिशत गणित से $\frac{५ \times १००}{८} = \frac{५००}{८}$ ६२.५ साढ़े बासठ का लाभ विश्वेश्वर राजधानी श्री वाराणसी-पुरपति बाबा विश्वनाथ का ज्ञानात्मक आशीर्वाद और माता पार्वती का मोक्ष लाभात्मक आशीर्वाद निरन्तर प्राप्त होता जा रहा है शक्ति तन्त्र में कहा भी गया है कि--

"गणेशं दिनेशं वह्नि रमेशं शिवं शिवाम्" देवषट्कं प्रपूजयेन्नित्यम्। अर्थात्

(१ विघ्नविनाशाय--श्रीगणेशम् (२) आरोग्यलाभाय श्रीदिनेशम् (३) शौच लाभाय श्रीवह्निम् (४) श्रीप्राप्तये श्रीरमेशम् (५) ज्ञानलाभाय श्रीशिवम् और मोक्ष-लाभाय च श्रीशिवाम् । इति काशी निवास का व्याख्यान अलम् अवर्णनीय है। अधिक काकिणी वाला कम काकिणी के लिए धनी होता है ज्ञान धन देता है। भूमि का वर्णविचार-ब्राह्मण के मकान की भूमि की मिट्टी श्वेत वर्ण की मधुर सुस्वादु, क्षत्रिय की कटु मिर्च की तरह, वैश्य के लिए तीती नीम की तरह और शूद्र के लिए कषाय स्वाद हर्रा की तरह हो तो शुभ कही गई है।

मकान निर्माण की भूमि की गन्ध-ब्राह्मणादि वर्णों के लिए क्रमशः घी की तरह, क्षत्रिय के लिए रक्त की तरह, वैश्य के लिए अन्न (चावल गेहूँ आदि) की तरह और शूद्र के लिए मदिरा की गन्ध की तरह की गन्धवती पृथ्वी मकान बनाने के लिए शुभ कही गई है। मिट्टी सूंघने से अनुभव करना चाहिए ॥ २ ॥

सौम्यादिप्लवभूतले विरचयेद्विप्रादिकोऽग्र्योऽखिले
नान्येषां नियमोऽथ यत्र निखिलाः कुर्युर्गृहं हृत्स्थिरम् ।
सद्मप्रश्नकृतो मुखात्प्रथमतो वर्गादिवर्णोद्गम-
श्चेत्तद्दिग्गतमादिशेत्तु हपयैः शल्यं सुधीर्मध्यतः ॥ ३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—एवं पृथ्वीवर्णादिकमभिधाय इदानीं वर्णपरत्वेन भूप्लवत्व-माह—सौम्यादिषु उत्तरादिषु दिक्षु प्लवो निम्नत्वं यस्य तच्च तद्भूतलं च तस्मिन्वि-प्रादिको ब्राह्मणादिकः गृहं विरचयेत् । एवं वर्णपरत्वेन भूप्लवत्वमुक्त्वा ब्राह्मणस्य विशेषमाह—अग्र्योऽखिल इति । अग्र्यो ब्राह्मणः अखिले सर्वप्लवे गृहं विरचयेत् । तथा च भृगुः "उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव । विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्ण-मथेष्टमन्येषाम् ॥" इति । अथ पक्षान्तरमाह—यत्रेति । निखिलाः सर्ववर्णास्तत्र गृहं कुर्युः । तत्र कुत्र यत्र भुवि हृत् अन्तःकरणं स्थिरं स्यात् । अयमर्थः । यस्यां भूमौ अन्तःकरणप्राशस्त्यं स्यात् तत्रैव गृहं कर्तव्यमित्यर्थः । तथा च वास्तुशास्त्रे "मन-सश्चक्षुषोर्यत्र संतोषो जायते भुवि । तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसंमतम् ॥" इति । अथ शल्यज्ञानं वृत्तार्द्धेनाह—सद्मप्रश्नेति । सद्मप्रश्नकृतः अत्र गृहं कर्तव्यमित्यादि गृहप्रश्नकर्तुर्मुखाच्चेद्यदि प्रथमतः वर्गादिवर्णोद्गमः स्यात् । वर्गाणां प्रथमाक्षरोदयः स्यात् । अकचटतपयशानामन्यतमाक्षरोद्गमः स्यात्तदा शल्यं तद्दिग्गतं तस्य वर्णस्य दिग्गतं सुधीरादिशेत् । शल्यमत्रास्तीति कथयेदित्यर्थः । एतदुक्तं भवति । गृहसंमितां भूमिं दक्षिणोत्तररेखाभिः समतया नवधा कृत्वा वर्गाद्यक्षरैः अकचटतपयशैरष्टभिः क्रमेणाष्टासु पूर्वादिदिक्षु शल्यमादिशेत् । अकारे प्रश्नाद्यक्षरे सति पूर्वस्यां दिशि शल्यमादिशेत् ककारे आग्नेय्यां चकारे दक्षिणस्याम् इत्याद्यष्टसु दिक्षु अष्टभिरक्षरैरादि-शेदित्यर्थः । तु पुनः हपयैस्त्रिभिरक्षरैर्मध्यतो मध्यकोष्ठे शल्यमादिशेत् । हपयानां

त्रयाणामक्षराणामन्यतमे प्रश्नाद्यक्षरे सति मध्ये शल्यमादिशेदित्यर्थः। तथा चोक्तं ज्योतिर्निबन्धे "स्मृत्वेष्टदेवतां चक्षुर्वचनस्याद्यमक्षरम्। गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते ॥ अकचटतपयशाहपया वर्णाः पूर्वादिमध्यान्ताः। शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे निवसतां नाशः ॥" इति। एतदेव स्पष्टं तत्रैवोक्तम्। "पृच्छया यदि अःप्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत्। सार्द्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुषमृत्युकृत् ॥ आग्नेय्यां दिशि कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वये। राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते ॥ याम्यायां दिशि चः प्रश्ने कुर्यादाकटिसंस्थितम्। नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगतः ॥ नैर्ऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्द्धहस्तादधः स्थले। शुनोऽस्थि जायते तत्र बालानां जनयेन्मृतिम् ॥ तः प्रश्ने पश्चिमायां तु शिशोः शल्यं प्रजायते। सार्द्धहस्ते गृहस्वामी न तिष्ठति सदा गृहे ॥ वायव्यां दिशि पःप्रश्ने तुषाङ्गाराश्चतुष्करे। कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःस्वप्नदर्शनं तदा ॥ उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्रशल्यं कटेरधः। तच्छीघ्रं निर्धनत्वाय कुबेरसदृशस्य हि ॥ ईशान्यां दिशि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्द्धहस्ततः। तद्गोधनस्य नाशाय जायते गृहमेधिनः ॥ हपया मध्यमे कोष्ठे वक्षोगात्रे भवेदधः। नृकपालमथो भस्म लोहं तत्कुलनाशकृत्" ॥ इति ॥ ३ ॥

वागीश्वरी—वर्ण भेद से जमीन में जल वहाव एवं हड्डी ज्ञान—

ब्राह्मण वर्ग के लिये उत्तर वहाव की भूमि, क्षत्रिय के लिये पूर्व बहाव, वैश्य के लिये दक्षिण प्लव (वहाव) और शूद्र के लिये पश्चिम तरफ के वहाव की भूमि गृह निर्माण के लिये शुभ बताई गई है।

शल्य (हड्डी आदि) विचार—गृह निर्माण करने वाले के मुख से दैवज्ञ (ज्योतिषी) से पूछने और समझने के विषय में सर्व प्रथम वर्ण क्या है यह समझ कर दैवज्ञ ने विचार पूर्वक बताना चाहिए कि उस समय प्रश्नकर्त्ता के मुख से, अ, क, च, ट···आदि वर्णों का प्रथम अक्षर क्या निकला ? उस अक्षर वर्ण में वर्ण की क्या दिशा है तदनुसार यदि प्रथम अक्षर अ हो तो उस वास्तु भूमि (मकान बनाने की भूमि) के पूर्व भाग में, क से अग्नि दिशा में, च से दक्षिण, ट से नैर्ऋत्य, त से पश्चिम, प से वायु, य से उत्तर और श से ईशान दिशा में, शल्य = हड्डी या अन्य प्रकार कोई अशुभ कूड़ा है तथा—ह, प य—इन तीन अक्षरों के प्रथम उच्चारण से वस्तु के मध्य भाग में शल्य हड्डी आदि कहनी चाहिए।

वर्गादि प्रथम अक्षरों के प्रथम उच्चारण से ही वास्तुभूमि में शल्य (हड्डी) का संशय होता है और अक्षरों में शल्य रहित शुभ भूमि समझनी चाहिए।

प्रश्नकर्त्ता के प्रथम अक्षर ज्ञान में विस्मृति या भ्रम हो रहा है तो दैवज्ञ द्वारा प्रश्नकर्ता को किसी देवता, फल-फूल-मन्दिर-तीर्थ आदि का नाम उच्चारण द्वारा—प्रथम अक्षर से शल्यादि ज्ञान करना चाहिए। समझ कर शल्य (हड्डी) निकलवाने से उस भूमि में शान्ति पूजा आदि से मकान बनाया जा सकता है ॥ ३ ॥

श्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत्
प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यं त्वसत्स्फाटितम् ।
ज्ञात्वैवं निखनेद्गृहाधिकभुवं नत्वा जलान्तःस्तरो
यावद्वा पुरुषस्ततः कपिशिरस्तुल्याश्मभिः पूरयेत् ॥ ४ ॥

मार्तण्डवल्लभा—एवं शल्यमभिधायेदानीं स्थलस्य शुभाशुभज्ञानस्योपायमाह—श्वभ्रमिति । श्वभ्रं गर्तं हस्तमितं खनेत् । इहास्मिन् श्वभ्रे निशास्ये रात्रिमुखेऽर्द्धसूर्यास्ते जलं पूर्णं न्यसेत् तच्चेद्यदि प्रातः सजलं स्यात्तदा तत्स्थलं सच्छुभं स्यात् वृद्धिकरं स्यात् । यदि अजलं गतजलं स्यात् तदा मध्यमम् । यदा स्फाटितं स्फुटितं स्यात्तदा असत् नानाविधहानिकरं स्यादित्यर्थः । तथा च नारदः "तथा निशादौ तत्कृत्वा पानीयेन प्रपूरयेत् । प्रातर्दृष्टजले वृद्धिः समं पंके व्रणे क्षयः ॥" इति । एवं शुभाशुभ-स्थललक्षणमभिधायेदानीं भूमिशोधनमाह—ज्ञात्वेति । एवमुक्तप्रकारैः स्थानं ज्ञात्वा गृहाधिकभुवं नत्वा जलान्तं यथा भवति तथा खनेत् गृहादधिका गृहाधिका सा चासौ भूश्च तथा तां कल्पितगृहात् किंचिदधिकां भूमिं जलपर्यन्तं खनेदित्यर्थः । अधिक-खननं शुद्धभूभागे भित्तिरचनार्थम् । वा इत्यथवा स्तरो यावत्तावत्खनेत् पृथ्वीगर्भे मृद्भेदानां स्तराः सन्ति तत्रान्यस्तरपर्यन्तं खनेदित्यर्थः । अथवा यावत्पुरुषस्तन्मितं वा पुरुषमात्रं खनेत् इदं शक्त्यपेक्षया ज्ञातव्यम् । पुरुषप्रमाणं पञ्चारत्नयः । तथा च शुल्बम् "पञ्चारत्निर्दशवितस्तिर्विंशतिशताङ्गुलः पुरुषः" इति । पञ्चारत्न्यादयः पुरुष-पर्यायाः । किं कृत्वा नत्वा नमस्कृत्य खनेदित्यर्थः । ततस्तदनन्तरं तत्खातं कपिशिर-स्तुल्याश्मभिः वानरशिरःप्रमाणैः ग्रावभिः पूरयेत्पूर्णं कुर्यात् । तथा च माण्डव्यः "जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा । क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदन-मारभेत् ॥" इति । तथा च मत्स्यपुराणे "कपिशीर्षप्रमाणैश्च ग्रावभिः पूरयेद्दृढम् । खातं तत्र समं कृत्वा ततः प्राचीं प्रसाधयेत् ॥" इति । खन्यमाने क्षेत्रे यदाप्यते तस्य फलं कारिकायामुक्तम् "खन्यमाने यदा क्षेत्रे पाषाणः प्राप्यते तदा । धनायुश्चिरतास्य स्यादिष्टकासु धनागमः ॥ कपालाङ्गारकेशादौ व्याधिना पीडितो भवेत् ।" इति ॥ ४ ॥

वागीश्वरी—मकान बनाने योग्य भूमि की शुभाशुभता बताई जा रही है ।

गृह स्वामी के हाथ की लम्बाई तक की एक लकड़ी या फीता आदि से १ हाथ लम्बी, १ हाथ चौड़ी और १ हाथ गहरी भूमि चतुष्कोण खात (गड्ढा) खोद कर सायं सूर्यास्त समय में उस खात में शुद्ध जल से भर देना चाहिए । प्रातः सूर्योदय समय तक इसमें जल शेष दिखाई देने से यह भूमि मकान के लिये उत्तम कही जाती है । यदि यह खात जल रहित गीला कीचड़ की तरह दिखाई दे तब भी यह भूमि घर बनाने के लिये साधारणतया शुभ ही कही गई है । यदि उक्त खात जलहीन फट चीर से फटी लकीर सी देखी जांय तो ऐसी भूमि मकान बनाने योग्य नहीं समझी जानी चाहिए ।

इस प्रकार भूमि की शुभता (शुद्धता) समझकर, उस भूमि को पूजन पूर्वक प्रणाम कर उसे मकान के माप के अन्दाज से चारों तरफ (लगभग १ पुरुष) ३½ फुट से अधिक खोदकर ऊपर की धरातलीय मिट्टी के रंग से जब तक भिन्न रंग की मिट्टी न मिले, जिसे आधुनिक में नीव या मकान की आधार भूमि कहा जाता है, तब तक खोदकर उसमें वानर के शिर के प्रमाण के पत्थर के टुकड़ों से भर दे। अर्थात् जैसा आजकल भी नीव में मिट्टी सुर्खी चूना आदि दिया जाता है यही आचार्य का तात्पर्य है ॥ ४ ॥

प्राक्साध्योज्जयिनोस्थलाद्यमदिशि त्वाष्ट्रानिलाभ्यन्तरात्
सौम्ये सोग्न्युदयादुदग्ध्रुवमुखाद्दिङ्मूढके स्यान्मृतिः ।
गेहं माधवपौषफाल्गुननभोमार्गेषु मृद्वानिलैः
पाश्यर्केज्यवसुध्रुवैः स्थिरतनौ कुर्यात्सुकेन्द्राष्टमे ॥ ५ ॥

मार्तण्डवल्लभा—एवं स्थलशुद्धिमभिधायाधुना दिक्साधनमाह—उज्जयिनी-स्थलात् यमदिशि दक्षिणस्यां दिशि त्वाष्ट्रानिलाभ्यन्तरात् प्राक्साध्या। नरैरित्य-ध्याहारः। त्वाष्ट्रं चित्रा अनिलं स्वाती अनयोरन्तरं मध्यं तस्मात्प्राची साध्येत्यर्थः। तदेतदुक्तं भवति। संभवे सति रात्रौ प्राङ्मुख उपविश्य युगमात्रोदितां चित्रां नलिकया विलोकयन् नलिकाग्राल्लम्बं भूमिपर्यन्तं मुक्त्वा भूमौ चिह्नं कृत्वा तथैवाचलस्तेनैव नेत्रेण स्वातीमवलोकयंस्तथैव नलिकाग्रात्तत्सकाशाल्लम्बं भूमिपर्यन्तं मुक्त्वा लम्ब-पाते चिह्नं कृत्वा नेत्राल्लम्बं मुक्त्वा तथैव चिह्नं कुर्यात्। एवं चिह्नद्वयं चित्रास्वाती-चिह्नयो रज्जुं तन्मितां धृत्वा रज्जुप्रान्तौ एकीकृत्य मध्ये चिह्नं कुर्यात्। पुनस्तत्र तथैव प्रसार्य मध्यचिह्ने शङ्कुं निधाय तस्मात् पश्चिमचिह्नपर्यन्तं रज्जुं प्रसारयेत् तत्प्राचीसूत्रम्। एवमुज्जयिन्या दक्षिणतः प्राचीसाधनमुक्त्वाऽथानन्तरमुत्तरतः प्राचीसाधनमाह—सौम्ये इति। अतः उज्जयिन्याः सौम्ये उत्तरभागे अग्न्युदयात्कृत्ति-कोदयात् प्राची साध्या। एतदुक्तं भवति। पूर्ववन्नलिकया युगमात्रोदितां कृत्तिका-मालोक्य नलिकामूलाग्राभ्यां लम्बौ मुक्त्वा भूमौ चिह्नद्वयं कृत्वा तयोरुपरि प्राची-सूत्रम्। अथोत्तरसाधनमाह—उदगिति। ध्रुवमुखात् उदग् उत्तरा दिक्साध्या, इदं सर्वेषां साधारणम्। अथ दिङ्मूढत्वे दोषमाह—दिङ्मूढके स्यान्मृतिरिति स्पष्टम्। तथा चोक्तं देवयजनदीपिकायाम् "चित्रास्वात्यन्तरे श्रोणाद्दक्षिणापथवासिनाम्। प्राची तु कृत्तिका ज्ञेया उत्तरापथवासिनाम्।" इति। श्रोणात् उज्जयिन्याः। तथा च शुल्बे "कृत्तिकाश्रवणं पुष्यं चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्। एतत्प्राच्या दिशो रूपं युगमात्रो-दिते पुरः।" इति। युगप्रमाणं षडशीत्यङ्गुलानि। तथा च शुल्बसूत्रम् "अङ्गुलैरर्थ-संमितायाः प्रमाणम्। तत्राष्टाशीतिशतमोषाः चतुःशतमक्षः पक्षः षडशीतिर्युगम् चत्वारोऽष्टकाः शम्या" इति। तथा च स्फुटकरणे "ध्रुवलम्बकरेखाया रेखान्तः-सौम्ययाम्यहरितौ स्तः। तन्मत्स्यपुच्छमुखतः पश्चिमपूर्वाभिधे विद्याद्।" इति।

वृद्धनारदः "प्रासादे सदने लिङ्गे द्वारे कुण्डे विशेषतः। दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात्तस्मात्संसाधयेद्दिशम् ॥" इति। अथ केषु मासेषु गृहं कर्तव्यमित्याह—गेहमिति। माधवादिषु मासेषु मृद्वादिभिर्नक्षत्रैर्गेहं गृहं कुर्यात् माधवो वैशाखः पौषफाल्गुनौ प्रसिद्धौ नभाः श्रावणः मार्गो मार्गशीर्षस्तेष्वित्यर्थः। मृदूनि चित्रानुराधारेवतीमृगाः आनिलं स्वाती पाशी वरुणस्तद्भं शततारा अर्को हस्तः ईज्यः पुष्यः वसुर्धनिष्ठा ध्रुवाणि रोहिणी उत्तरात्रयं च तैः स्थिरतनौ स्थिरलग्ने। किंलक्षणे सुकेन्द्राष्टमे शोभनानि पापग्रहरहितानि केन्द्राष्टमानि यस्य तत्तथा तस्मिन्। स्थिरतनाविति वा पाठः। शेषं पूर्ववत् ॥ ५ ॥

वागीश्वरी—मकान की भूमि में दिशाज्ञान के साथ गृहारम्भ बताया जा रहा है—

उज्जयिनी से दक्षिण दिशा में रात्रि समय चित्रा और स्वाती नक्षत्र के वेध द्वारा उसके मध्य से प्राक् दिशा का साधन करते हुये, तथा उज्जयिनी से उत्तराक्ष देशों में कृतिका नक्षत्र वेध द्वारा पूर्व दिशा का ज्ञान करना चाहिए। इसी प्रकार याम्योत्तर सम्बन्धी साक्ष्य देशों में उत्तर और दक्षिण ध्रुव के ज्ञान पूर्वक उत्तर और दक्षिण दिशा का ज्ञान करना चाहिए।

आचार्य का तात्पर्य—उज्जैन से दक्षिण देशों में रात्रि में नलिकाग्र बिन्दु चित्रागत और स्वाती गत होने से स्वाती और चित्रागत नलिकाग्र से भूमि पर पृथक्-पृथक् दो लम्ब रेखाओं की मध्यवर्ती रेखा–पूर्वापर रेखा सिद्ध होती है। पूर्वापर रेखा ज्ञान से उसके मध्य भाग में लम्ब रूपिणी रेखा का नाम गृह निर्माण भूमि की याम्योत्तर रेखा होती है। इसी प्रकार उज्जैन के उत्तर देशों में कृतिका नक्षत्र वेध से प्राची पूर्व दिशा तदुपरि लम्ब रूपिणी रेखा याम्योत्तर होती है–गृहपिण्ड में इस प्रकार पूर्वापर याम्योत्तर दिशाओं का ज्ञान होता है। (भूमिका देखिये)

गृहनिर्माण भूमि में सही तरह दिशा ज्ञान होना चाहिए। सही दिशा ज्ञान की त्रुटि से गृहपति (मकानमालिक) की हानि हो सकती है।

गृहारम्भ के लिये—वैशाख, पौष, फाल्गुन, श्रावण और मार्गशीर्ष मासों में, मृग-रेवती-चित्रा-अनुराधा स्वाती शततारा-हस्त-पुष्य-धनिष्ठा-रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्रों में गृहपति राशि शुद्ध कोई एक नक्षत्र में लग्न से पापग्रहरहित केन्द्रस्थान १।४।७।१० और ८वें स्थानों में तथा यथाशक्ति स्थिर लग्नों में (२।५।८।११) गृहारम्भ मुहूर्त्त शुभप्रद कहा गया है। मतान्तर से क्वचित् चान्द्र पौष माह का भी निषेध किया गया है ॥ ५ ॥

नो पृष्ठाग्रविधौ न रिक्ततिथौ नार्कारवारांशयो-
रुक्तर्क्षेष्वपि कुम्भमीनगविधौ स्तम्भोच्छ्रितिं नाचरेत्।
तुर्यात्पञ्चदशात्त्रिदृक्परिमितात्द्वेदाब्धिपञ्चक्रमा-
न्निन्द्यान्यर्कयुताद्दिगेहकरणे भानि प्रवेशेऽपि च ॥ ६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथोक्तेष्वपि नक्षत्रेषु विशेषमाह—**नो पृष्ठाग्र इति।** पृष्ठाग्रविधौ सति नो विरचयेत्। एतदुक्तं भवति। कृत्तिकादीनि सप्तनक्षत्राणि पूर्वस्यां मघादिसप्त दक्षिणे इत्यादि सप्तशलाकाचक्रस्थितनक्षत्राणां मध्ये मृद्वानिलादोष्टचन्द्रनक्षत्रं यस्मिन् दिग्भागे भवति तद्दिङ्मुखे गृहे संमुखश्चन्द्रो ज्ञेयः तत्पृष्ठस्थे पृष्ठतो ज्ञेयः एवमग्रगे पृष्ठगे वा चन्द्रे सति गृहं न कर्तव्यमित्यर्थः। तथा च भृगुः "चक्रे सप्तशलाकाख्ये कृत्तिकादीनि विन्यसेत्। ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च पुरः पृष्ठे च नो शुभम्॥" इति। तथा ब्रह्मशम्भुः "धनलाभः प्रवासः स्यादायुश्चौरभयं क्रमात्। दक्षाग्रवामपृष्ठस्थे गृहकर्तुर्निशाकरे॥" इति। न रिक्तकतिथौ स्पष्टम्। नार्कारवारांशयोः अर्कभौमयोर्वारनवांशयोः न कुर्यात्। उक्तर्क्षेष्वपि कुम्भमीनगविधौ सति स्तम्भोच्छ्रितिं नाचरेत्। अर्थादन्यत्सर्वं आचरेत्। तथा च माण्डव्यः "पञ्चकेषु च धिष्ण्येषु न कुर्यात्स्तम्भमुच्छ्रयम्। क्षेत्रसूत्रशिलान्यासं प्राकारादि समाचरेत्॥" इति। **अथ वृषभवास्तुमाह—तुर्यादिति।** अर्कयुतादि सूर्यनक्षत्रादि तुर्यात् चतुर्थात् पञ्चदशात् त्रिद्वपरिमितात् त्रयोविंशात् सकाशात् क्रमेण वेदाब्धिपञ्चभानि नक्षत्राणि गृहस्य करणे रचनायां प्रवेशेऽपि निन्द्यानि स्युः। तथा च व्यवहारसारे "त्रिवेदाब्धित्रिवेदाब्धिद्वित्रिभेष्वर्कतः शशी। कुर्याल्लक्ष्मीसमुद्वासं स्थैर्यं लक्ष्मीं दरिद्रताम्। धनं व्याधिं क्रमान्मृत्युं प्रवेशारम्भयोर्वृषे" इति॥६॥

वागीश्वरी—श्लोक ५ में कथित नक्षत्रों पर विशेष—

श्लोक ५ में गृहारम्भ नक्षत्रों में जो नक्षत्र चन्द्रमा के सम्मुख (सामने) या पीछे रहते हैं उनमें गृह आरम्भ नहीं करना चाहिए। (नक्षत्रों की दिशाएँ सप्तशलाका चक्र से समझनी चाहिए) फलतः कृतिका से अश्लेषा तक ७, एवं अनुराधा से धनिष्ठा तक ७ मुख और पृष्ठ संज्ञक नक्षत्रों में पूर्व मुख के घर की रचना की जानी चाहिए। इसी प्रकार मघा से विशाखा तक ७, एवं धनिष्ठा से भरणी तक ७ नक्षत्रों में उत्तर-दक्षिण-मुख गृह निर्माण अशुभ है। रिक्ता ४।९।१४ तिथि सूर्य और मंगल के दिनों एवं इनसे सम्बन्धित नवांश समयों में भी गृह का आरम्भ नहीं होना चाहिए। कुम्भ और मीन के चन्द्रमा में धनिष्ठाधादि रेवती नक्षत्रों में मकान के कार्यों में स्तम्भ रोपण तृण काष्ठादि कार्य अशुभ, शेष शिलान्यासादि कार्य शुभ होते हैं।

सूर्य नक्षत्र से चौथे नक्षत्र से चार नक्षत्रों तक, सूर्य नक्षत्र के पन्द्रहवें नक्षत्र से ४ चार नक्षत्र तक और २३वें से ५ नक्षत्र तक के दिवस नक्षत्रों में गृहारम्भ एवं गृह प्रवेश का निषेध कहा गया है॥ ६॥

शेते भाद्रपदात्त्रिषु सुरः प्रागादिशीर्षोऽत्र हि
प्रोक्तं सद्ममुखं तु गोल्यजधटेष्वर्के यमोदङ्मुखम्।
हृद्रोगैणकुलीरलेयगरवौ पूर्वापरास्यं गृहं
नान्यस्थे भुजकोटिघात इभहृच्छेषं स्युरायाः क्रमात्॥ ७॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ चतुर्धाद्वारनिर्णयमाह—**शेते इति**। भाद्रपदात् त्रिषु त्रिषु मासेषु सुरो वास्तुपुरुषः प्रागादिशीर्षः शेते इति। एतदुक्तं भवति भाद्रपदादिमासत्रये पूर्वशीर्षः मार्गशीर्षादिमासत्रये दक्षिणशीर्षः फाल्गुनादिमासत्रये पश्चिमशीर्षः ज्येष्ठादिमासत्रये उत्तरशीर्षो वास्तुपुरुषः शेते इति। अत्र यस्यां शीर्षं तस्यां दिशायां सद्ममुखं गृहमुखं दक्षिणाभिमुखं प्रोक्तम्। अथ संक्रांतिपरत्वेन मुखनिर्णयमाह—गोल्यजेति। गोल्यजधटेष्वर्के सति यदोदङ्मुखं गृहं कार्यम्, गौर्वृषः अलिर्वृश्चिकः अजो मेषः धटस्तुला एषु राशिषु अर्के सूर्ये सति यमोदङ्मुखमुत्तराभिमुखं वा गृहं कार्यमित्यर्थः। हृद्रोगैणकुलीरलेयगरवौ सति पूर्वापरास्यं पूर्वाभिमुखं पश्चिमाभिमुखं वा गृहं कार्यमित्यर्थः। हृद्रोगः कुम्भः एणो मकरः कुलीरः कर्कटः लेयः सिंहः एतान् गच्छति स तथा स चासौ रविश्च तस्मिन् सति पूर्वापरास्यं पूर्वपश्चिममुखं वा गृहं कार्यम्। अन्यस्थे अन्यराशिस्थे रवौ सति गृहं न कार्यम्। अथायपरत्वेन गृहमुखनिर्णयं विवक्षुस्तावदायसाधनमाह—भुजेति। भुजकोटिघातइभहृच्छेषमायाः स्युः। भुजो गृहदैर्घ्यविस्तारयोरन्यतमस्य नाम तदन्या कोटिः। तथाच लीलावत्याम् "इष्टो बाहुर्यस्यां तत्स्पर्द्धिन्यां दिशीतरो बाहुः। त्र्यस्रे चतुरस्रे वा सा कोटिः कीर्तिता तज्ज्ञैः" इति। तयोर्घातो गुणनम् इभहृच्छेषः पूर्वादि यथा स्यात्तथा ध्वजादयः आयाः क्रमात्स्युः॥ ७॥

वागीश्वरी--वास्तु पुरुष के शयन समय के मासों का विचार—

भाद्रपद मास से तीन मास आगे अश्विन कार्तिक तक पूर्वमुख, अगहन-पौष-माघ में दक्षिण मुख, फाल्गुन-चैत्र और वैशाख में पश्चिम मुख, और ज्येष्ठाषाढ श्रावण मासों में उत्तर मुह से भगवान् वास्तु पुरुष सोते हैं। जिस महीने में गृहारम्भ करना है उस महीने के वास्तु पुरुष के मुख की तरफ मकान का मुख्य मुख (द्वार) बनाना चाहिए। यहां चान्द्रमास का प्राधान्य है।

संक्रान्तिपरत्वेन—वृष-वृश्चिक-मेष तुला के सूर्य में दक्षिण या उत्तर मुख, कुम्भ-मकर-कर्क और सिंह के सूर्य में पूर्व या पश्चिम, मुख द्वार का घर बनाना चाहिए। श्लोक ५ में गृहारम्भ के ५ ही मास प्रशस्त कहे गये हैं किन्तु उक्त श्लोक में द्वार भेद से अधिक संख्यक मास कहे गये हैं तो इसका समाधान क्या है ? तो गृहारम्भ के मासों में सूर्य जिस राशि पर है, उस राशि सम्बाधिनी जो दिशा हो उसी दिशा में मुख द्वार का गृह निर्माण होना चाहिए।

यदि सूर्य मिथुन-कन्या-धनु मीन राशि में हो तो गृह निर्माण शुभ नही होता। आय विचार–गृह की लम्बाई और चौड़ाई के गुणन फल में ८ का भाग देने से शेष तुल्य ध्वज आदिक ८ आय होते हैं। अग्रिम श्लोक में ध्वजादिक ८ आयों के नामों को समझिए।। ७॥

पूर्वादिध्वजधूम्रसिंहशुनकोक्षाणः खरेभोष्ट्रका
धार्याः स्वस्वपदेऽध्वजोऽखिलमुखः प्राग्याम्यवक्त्रो गजः।

प्रागास्यो वृषभो विवारुणमुखः सिंहः प्रशस्ता इमे
धूमोऽग्नेः शुनकोऽन्त्यजस्य खगपस्योष्ट्रोऽट्टपत्न्याः खरः ।। ८ ।।

मार्तण्डवल्लभा—पूर्वादिषु ध्वजादयो बलिष्ठा इति भावः। एते ध्वजादयः स्वस्वपदे स्वस्वस्थाने ध्वजः पूर्वे धूम आग्नेय्यामित्यादि धार्याः। अयमर्थः। मुख्यगृहापेक्षया दिक्षु वक्ष्यमाणगृहेषु धार्या इत्यर्थः। अथवा स्वसदृशवस्तुषु धार्याः। अथवा स्वसदृशसत्वगृहेषु धार्याः अथवा क्रूरकर्मसाधनवस्तुषु पराक्रमिणो धार्याः अथवा स्वसदृशवस्तुसत्वोपजीविनां गृहेषु धार्याः अथवा स्वानुरूपवस्तुसाध्यहितवस्तुगृहेषु यथायोग्यं धार्या इत्यर्थः। एतत्स्पष्टमुक्तं वास्तुप्रदीपे "खेटखर्वटकोटेषु नृपः सिंहो गजः शुभः। वापीकूपतडागादौ गजो देयो विचक्षणेः।। आसने योजयेत्सिंहं शयने चैव कुञ्जरम्। वृषं भोजनपात्रे च दद्याच्छालादिषु ध्वजम्।। महानसेऽग्निशालायां गृहे चाग्न्युपजीविनम्। धूमं दद्यात्तथा श्वानं यवनान्त्यजयोर्गृहे।। खरो वेश्यागृहे योज्यो ध्वांक्षः पक्षिपतेर्गृहे। वृषं सिंहं गजं दद्यात्प्रासादे पुरमन्दिरे"।। तथा च शिल्पशास्त्रे "वृषजे धर्मशालायां कुम्भेस्तम्भे ध्वजे ध्वजः। गोगजौ भूगृहे चैव साधारणगृहे शुभौ।। यन्त्रे शस्त्रे रथे सिंहो भाण्डागारे शुभो गजः। धान्याम्बुस्थाने गोऽश्वेभाः शालायां वृषभः शुभः।। नाट्यभागोद्वाहवेद्यां गजसिंहवृषाः शुभाः।" इत्यादि। एवमायसाधनमुक्त्वेदानीं तेषां मुखान्याह—ध्वजोऽखिलमुखः सर्वदिग्द्वारः प्राग्याम्यवक्त्रो गजः सुगमम्, प्रागास्यो वृषभः आस्यं मुखं प्राङ्मुखो वृषभः स्पष्टम्। विवारुणमुखः सिंहः वरुणस्यायं वारुणो दिग्विभागः पश्चिमदिक् विगतः वारुणो येभ्यस्तत्र मुखं यस्य स तथा पश्चिमदिशं विना सर्वदिग्द्वार इत्यर्थः। यो यो यद्दिङ्मुख आयस्तत्संभूतगृहस्य तत्तद्दिशि मुखं कर्तव्यमित्यर्थः। एवमायपरत्वेन गृहमुखमुक्त्वा प्रसंगेन आयानां शुभत्वमाह—प्रशस्ता इमे इति। इमे चत्वार आयाः प्रशस्ताः सर्वेषां शुभाः अर्थादन्ये चत्वारः समा आया अप्रशस्ताः। तथा च गर्गः "कीर्त्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम्। रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात्।।" इति। अथ दुष्टेऽपि समये विशेषमाह—धूमोऽग्नेरिति। अग्नेर्गृहे धूमो धूमायः प्रशस्तः अन्त्यजस्य शुनकः प्रशस्तः खगपस्य पक्षिपालकस्य उष्ट्रः प्रशस्तः अट्टपत्न्या वेश्यायाः गृहे खरः खरायः प्रशस्तः।। ८।।

वागीश्वरी—ध्वजादिक ८ आयों के नाम बताये जा रहे हैं—

१–ध्वज, २–धूम, ३–सिंह, ४–शुनक, ५–वृष, ६–खर, ७–गज और ८–उष्ट्र ये ८ आयों के नाम हैं। इन आठ आयों में एकादि क्रम से पूर्वादि अग्नि दिशाओं के आदि क्रम से इन इन दिशाओं में बली होते हैं। पिण्ड गणित से गृह की जो आय आती है उस आय की उक्त दिशानुसार घर का मुख्यद्वार होना चाहिए। तथापि ध्वज आय में सर्वदिशा मुख, गज आय में पूर्व और दक्षिण दिशामुख का घर, वृष आय केवल पूर्वदिग्द्वार शुभ होती है। सिंह आय के लिए पश्चिम छोड़ शेष दिशाभिमुख द्वार घर शुभ है। ध्वज गज वृष

और सिंह में सर्व दिशाओं के लिए भी शुभप्रद कहे गये हैं। इन आयों में ब्राह्मणादिक वर्ण व्यवस्था भी अनावश्यक है। और धूम-शुनक-खर-उष्ट्र ये चारों अशुभ आय कही गई हैं। ये अशुभ आय भी स्थल विशेष पर शुभ हो सकती हैं। यथाशक्ति अग्निस्थापन स्थान रसोई या हवनादि स्थान में धूम्र आय का सदुपयोग शुभ है। अन्त्यजों के लिए शुनक आय शुभप्रद कही गई है। पक्षिपालकों के लिये उष्ट्र नामक आय और वेश्या के घर में खर नामक आय शुभ कही गई है जिसके लिये जो आय शुभ कही गई है उसके लिये उसी आय का घर शुभद होता है। ग्रन्थान्तरों में ध्वांक्ष आय अर्थात् कौआ नामक आय का भी उल्लेख हुआ है। किन्तु ग्रन्थकार का यहाँ पर ध्वांक्ष की जगह खर उष्ट्र से अभिप्राय है (अपने-अपने अनुभव) ॥ ८ ॥

आय चक्र—

आय नाम	ध्वज	धूम	सिंह	शुनक	वृष	खर	गज	ध्वांक्ष
दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायु	उत्तर	ईशान
विशेष दिशा	सभी दिशाएँ	०	उत्तर पूर्व दक्षिण	०	पूर्व	०	पश्चिम दक्षिण	पूर्व
शुभता	सभी जाति के लिए	अग्नि स्थान में	सभी के लिए	अन्त्यजों के लिए	सभी के लिए	वेश्या के लिए	सभी के लिए	पक्षी पालकों के लिए

प्राहुः प्राङ्मुखमन्त्यवृश्चिककुलीराणां प्रचेतोमुखं
जूकोपान्त्यगवां यमास्यमबलायुग्मैणकानां हितम् ।
सौम्यास्यं गृहमाद्यसिंहधनुषामत्रेष्टकाष्ठाननं
कृत्वाऽन्तान्यककुब्गवाक्षवदनं तत्कार्यमास्यं न सत् ॥ ९ ॥

मार्तण्डवल्लभा—एवमायपरत्वेन गृहमुखमुक्त्वाऽधुना राशिपरत्वेनाह—अन्त्यवृश्चिककुलीराणां प्राङ्मुखं गृहं हितं प्राहुः। अन्त्यो मीनः वृश्चिकः प्रसिद्धः कुलीरः कर्कः एषामित्यर्थः। जूकोपान्त्यगवां प्रचेतोमुखं पश्चिमाभिमुखम् जूकः तुला उपान्त्यः कुम्भः गौर्वृषः एषामित्यर्थः। अबलायुग्मैणकानां यमास्यं दक्षिणामुखम् अबला कन्या युग्मं मिथुनमेणो मकरः एषामित्यर्थः। आद्यसिंहधनुषां सौम्यास्यम् आद्यो मेषः सिंहधनुषी प्रसिद्धे एषां सौम्यास्यमुत्तरामुखं गृहं हितं प्राहुराचार्याः। एवं चतुर्धा गृहमुखमभिधायेदानीं तन्निर्णयमाह—अत्रेष्टकाष्ठाननमिति गृहमुखपक्षेषु शोभावकाशानुरूपमिष्टकाष्ठाननमिष्टदिङ्मुखं कृत्वा तद्गृहमाप्तान्यककुब्गवाक्षवदनं कार्यम्। आप्ताश्च ता अन्यककुभश्च तासु गवाक्ष एव वदनानि यस्य तत्तथा उर्वरितपक्षत्रयप्राप्तदिक्षु गवाक्षाः कार्या इत्यर्थः। तथा च वास्तुशास्त्रे "द्वारं चतुर्विधं प्रोक्तं वास्तु-

सङ्क्रान्तिभावजम् । कृत्वा चान्यतमं मुख्यं गवाक्षाद्यैः पराणि च ॥" इति । आस्यमिति । आस्यं गृहस्य मुखं कोणस्तम्भादिभिर्विद्धं न सत्स्यात् ॥ ९ ॥

वागीश्वरी—मकान का मुख्य द्वार–(दरवाजा)—

मीन-वृश्चिक-कर्क राशि के बनने वाले मकान मालिक को मकान का मुख्य द्वार पूर्व मुख का, तुला-कुम्भ-वृष राशि के मानव को पश्चिम मुख, कन्या-मिथुन-मकर राशि वालों के लिये दक्षिण मुख का द्वार और मेष-सिंह-धनु राशि वालों कोउत्तर मुख का मुख्य द्वार (दरवाजा) शुभप्रद होता है।

इस प्रकार (१) मास भेद से, (२) सौर संक्रान्तियों के क्रम से, (३) ध्वजादिक आयभेद से और (४) राशिभेद से, चार प्रकार से मकान के मुख्य द्वार कहे गये हैं।

इन चार विकल्पों में किसे मान्यता देनी चाहिए। इस सम्बन्ध में भूमि, पड़ोस, बस्ती आदि के क्रम के साथ घर में सूर्य रश्मियों का आना भी आवश्यक है जिस दिशा से प्रकाश अधिक हो, इत्यादि समझ कर घर का मुख्य द्वार का निवेशन होना चाहिए। चार प्रकार के द्वार निर्णयों में एक में मुख्य द्वार (सदर दरवाजा) का निर्माण कर शेष अन्य द्वार स्थानों में खिड़की आदि उपद्वारों का निवेशन कर सुन्दरतम घर का निर्माण किया जाना चाहिए जो दीर्घ समय तक शुभाय और श्रेय से होता रहे। इस श्लोक ९ के अन्तिम चरण के अन्तिम वाक्य आस्यं न सत् का सम्बन्ध अग्रिम १०वें श्लोक से है ॥ ९ ॥

कोणाध्वभ्रमकूपकर्दमतरुद्वाःस्तम्भदेवेक्षितं
सद्मौच्चयद्विगुणाधिकान्तरभवे वेधे न दोषः किल ।
अष्टघ्ने गृहभूफले भविहृते शेषं गृहर्क्षं भवेद्
ऋक्षे सर्पहृते व्ययो गृहमसत्स्वल्पायभूरिव्ययम् ॥ १० ॥

मार्तण्डवल्लभा—एवं गृहमुखनिर्णयमुक्त्वाऽधुना कोणादिविद्धमुखस्य दोषं तदपवादं चाह—**कोणाध्वेति।** कोणो भित्तिकोणः अध्वा मार्गः भ्रमो भ्रमयन्त्रं घरट्टकुलालचक्रादि कूपः प्रसिद्धः कर्दमः स्नानादिजनितो निरंतरस्थायी तरुर्वृक्षः द्वाः द्वारान्तरं स्तम्भः प्रसिद्धः देवः स्थावरः एभिर्विद्धे मुखं न सत्स्यादित्यर्थः। अथास्यापवादमाह—सद्मौच्च्येति। सद्मौच्च्यद्विगुणाधिकान्तरभवे वेधे न दोषः सद्मनो गृहस्य औच्च्यं तस्यापेक्षया द्विगुणाधिकान्तरभवे द्विगुणाधिकान्तरे जाते वेधे कोणादिवेधे न दोषः अर्थान्न्यूने दोषः किलेत्यागमे निश्चये वा। तथा चागमान्तरे उक्तम् "मार्गतरुकोणकूपभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम्। सद्मोच्छ्रायाद्द्विगुणां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय" इति ! कात्यायनगृह्यकारिकायामप्युक्तम् "विद्धं कूपतरुस्तम्भं पथपंकैः सदैवतैः। तद्द्वारमशुभं प्रोक्तमत्युच्चं नीचमेव च" इति। अथ ग्रहनक्षत्रानयनं व्ययानयनं चाह—अष्टघ्न इति। गृहभूफले गृहक्षेत्रफले अष्टघ्ने अष्टगुणिते भविहृते सप्तविंशतिहृते

सति शेषं गृहर्क्षं गृहनक्षत्रं भवेत्। ऋक्षे सर्पहृते अष्टहृते सति शेषं व्ययो भवेत्। एवमायव्ययावभिधायाधुना तत्फलं विशेषणद्वाराह—गृहमसदिति। स्वल्पायभूरिव्ययं गृहम् असत् अशुभं स्यात्। स्वल्पायश्च भूरिव्ययश्च तौ अर्थाद्बह्वायाल्पव्ययं शुभम्॥ १०॥

वागीश्वरी—गृह के द्वार निर्णय में विशेष कथन—

निजी घर के मुख्य दरवाजे के सामने दूसरे के घर की किसी दिवाल का कोना, घर के सामने जनता का मार्ग, जल निकासी का मार्ग, (नाली) कूप, कीचड़, वृक्ष अन्य के घर का दरवाजा, अन्य के घर का स्तम्भ और किसी प्रतिष्ठित पूजित देवता का स्थान इत्यादि अपने इस घर को वेध करता है अतः उक्त वेध वर्जित स्थान में स्वकीय गृह निर्माण शुभप्रद होता है।

इस पर भी विशेष बात यह है कि अपने घर की ऊँचाई का दूना यदि उक्त वेध स्थान से दूर हो तो तब ऐसे वेध का दोष नहीं कहा गया है (फलतः १५ हाथ की ऊँचाई के अपने घर से १५ × २ = ३० हाथ दूरी पर के अन्य के घर की दिवाल का कोना मार्ग जल निकासी इत्यादि) होने से उक्त वेध का कोई अशुभ परिणाम नहीं होता है।

गृह नक्षत्र तथा व्यय विचार के लिये घर की लम्बाई को चौड़ाई से गुणा कर गुणनफल में २७ का भाग देने से घर का नक्षत्र होता है तथा नक्षत्र में ८ का भाग देने से शेष तुल्य घर का व्यय कहा गया है। आय की संख्या की अपेक्षा व्यय संख्या अधिक होने से वह घर शुभ नहीं कहा गया है। आय की संख्या की अपेक्षा व्यय संख्या कम होनी चाहिए। १ ध्वज २–ध्वांक्ष—इस प्रकार आठ आयों के नामों में आय संख्या क्रम से १-२-३-८ समझनी चाहिए॥ १०॥

मेषेऽश्वित्रितयं हरौ त्रिपितृभं मूलत्रयं धन्विनि
द्वेद्वे भे परतो गृहेशघटितं प्राग्वत्तु नाड्यन्यथा।
एकादिद्विगुणोत्तरा गृहमुखाद्दिक्ष्वङ्ककाः स्युः क्रमा-
च्छालाशाङ्कयुतिः कुयुग्ध्रुवमुखान्योकांसि सन्ति स्फुटम्॥ ११॥

मार्तण्डवल्लभा—नक्षत्रे ज्ञाते राशिनिर्णयमाह—अश्वित्रितयं मेषे ज्ञेयम् त्रिपितृभं मघात्रयं हरौ सिंहे ज्ञेयम् मूलत्रयं धनुषि ज्ञेयम् अन्येषु राशिषु द्वे द्वे भे ज्ञेये। तथा च गर्गः "अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम्। मूलादित्रितयं चापे शेषभेषु द्वयं द्वयम्" इति। अथ गृहतत्स्वामिनोर्घटितमाह—गृहेशेति। गृहं प्रसिद्धम् ईशः स्वामी तयोर्घटितं प्राग्वत् विवाहवत् योज्यम्। तत्र विशेषमाह—नाड्यन्यथेति। नाडी एकनाडी अन्यथा योज्या विवाहवत् न योज्येत्यर्थः अत्र एकनाड्येव प्रशस्तेति-भावः। तथा च वृद्धगर्गः "प्रभुः पण्याङ्गना मित्रं देशं ग्रामं पुरं गृहम्। एकनाडी-स्थितं भाव्यं विरुद्धं वेधवर्जितम्" इति। तथाच ज्योतिःसागरे "सेव्यसेवकयोश्चैव

गृहतत्स्वामिनोरपि । परस्परं मित्रयोश्च एकनाडी प्रशस्यते" इति । अथांशसाधनार्थं गृहाणि तन्नामाक्षरसंख्यां चाह—एकादीति । गृहमुखात् सकाशात् क्रमात् प्रदक्षिण-क्रमात् दिक्षु चतसृषु दिक्षु एकादिद्विगुणोत्तरा अङ्काः स्युः । एतदुक्तं भवति च द्वारदिशि एकः तस्माद्द्वितीयदिशि द्वौ तृतीयदिशि चत्वारः चतुर्थदिशि अष्टौ एवं भवन्तीत्यर्थः । शालाशाङ्कयुतिः शालादिगङ्कयोर्योगः कार्यः कुयुक् एकयुक्ता सती ध्रुवमुखानि ध्रुवादिकानि शास्त्रोदितानि गृहाणि स्फुटं संभवन्ति । तानि यथा "ध्रुवं धन्यं जयं नंदं खरं कान्तं मनोरमम् । सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं सुपक्षं धनदं क्षयम् ॥ आक्रन्दं विपुलं चैव विजयं चेति षोडशम्" इति ॥ ११ ॥

वागीश्वरी--नक्षत्रों से राशि ज्ञान विचार—

अश्विनी भरणी और कृतिका की–मेष राशि, मघा पू० फा० उ० फा० सिंह राशि, मूल, पू०षा० उ०षा० ये—धनु राशि । शेष ९ राशियों में प्रत्येक में दो दो (२) नक्षत्र होते हैं । तीन राशियों में तीन-तीन नक्षत्रों के बाद २७ – ९ = शेष १८ नक्षत्रों में, शेष राशियों = ९ में प्रत्येक राशि के $\frac{१८}{९}$ = २ दो दो नक्षत्र की शेष राशियों में गृह और गृहेश की प्रत्येक राशि के समझी जानी चाहिए । फलतः, ४–रोहि० मृ०शी० = वृष राशि । ५–आर्द्रा पुनर्वसु = मिथुन राशि ६–पुष्य अश्लेषा = कर्क, ७–हस्त चित्रा = कन्या, ८–स्वा० वि० = तुला, १०–अनु० ज्ये० = वृश्चि० ११-श्रवण धनिष्ठा = वृश्चिक (श. पू. भा.) १२–उ. भा. रेवती = मीन राशि समझी जानी चाहिए ।

अ व क ह डा चक्र से, नक्षत्रों का राशियों से सम्बन्ध बताते हुये २७ नक्षत्रों में २७ × ४ = १०८ चरणों की १२ राशियाँ होती हैं स्पष्ट है । अर्थात् २७ ÷ १२ = $२\frac{३}{१२} = २\frac{१}{४}$ सवा दो नक्षत्र की एक राशि स्पष्ट है जैसे अश्विनी के ४ चरण + भरणी के ४ चरण + कृतिका के एक चरण एवं ९ चरणों की एक एक मेष राशि सयुक्तिक ठीक कही है । किन्तु यहाँ पर गृहनिर्माणभूमि शोधन विचार में अश्विनी + भरणी + कृतिका = १२ चरणों में एक राशि मेष, एवं मघा + पू. फा. + उ. फा. तीन नक्षत्रों की एवं सिंह राशि, तथा मू. + पू. षा. + उ. षा. नक्षत्रों की धनु राशि कहते हुए शेष ९ राशियों में शेष १८ नक्षत्रों में प्रत्येक राशि की सवा दो नक्षत्र न होकर केवल १८ ÷ ९ = २ दो ही नक्षत्र होते हैं । जैसे मेष = १ राशि में अश्वि. भ. कृ. । वृष = २ राशि में रो. मृ. । मिथुन = ३ राशि में आर्द्रा पुन. । कर्क = ४ राशि की पुष्य + मे. । ५–सिंह = ५ में म पू. फा. उ. फा. ६ = कन्या में ह. चि. । ७ = तुला में स्वा. वि. । ८ = वृश्चिक में अनु ज्ये. । एवम् ९ = धनु में मू. पू. उ. षा. । मकर = १० में श्र. ध. । कुम्भ = ११ में श. पू. भा. और मीन = १२ में उ. भा. और रेवती इस प्रकार समझना चाहिए ।

उक्त प्रकार गृह और गृहेश के नक्षत्र राशियों के ज्ञान पूर्वक विवाह प्रकरण में कथित बर-कन्या के नक्षत्र व राशियों के से गुण विचार द्वारा मकान की भूमि का शुभ

अशुभ विचार करना चाहिए। ध्यान देने का विषय है कि विवाह में वर-कन्या की दोनों की नाडियाँ पृथक्-पृथक् होने से नाडी वेध दोष नहीं होने से नाडी की गुण संख्या ८ और नाडी एक होने से नाडी गुण ० शून्य हो जाती है तो यहाँ ठीक इसी के विपरीत गृह निर्माण विचार में दोनों अर्थात् घर और घर के मालिक (गृह-गृहेश) दोनों की नाडी एक होना शुभ है और ऐसी स्थिति में गुण ८ मिलता है तथा यहाँ पर नाडी भेद अशुभ और गुणमेलापक ० शून्य होता है।

मकान की भूमि सीमा की चारों दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से (पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर) १, २, ४ और २८ अंक शाला संज्ञक (शाला = बरामदा या अलिन्द या ओसारा) अंक कहे गये हैं। जिस-जिस दिशा में द्वार आदि हों उस दिशा के उक्त शाला ध्रुवांकों के योग में १ जोड़ कर लब्ध अंक के समान नाम का मकान होता है, इस प्रकार गृह के १६ नाम होते हैं जो क्रमशः (१) ध्रुव, (२) धान्य, (३) जय, (४) जन्द, (५) खर, (६) कान्त, (७) मनोरम, (८) सुमुख, (९) दुर्मुख, (१०) क्रूर, (११) सुपक्ष, (१२) धनद, (१३) यक्ष, (१४) आक्रन्द, (१५) विपुल और (१६) विजय। ध्रुवाङ्कों के नामों के अनुसार उनका शुभ और अशुभ फल समझना चाहिए। फलतः ५, ९, १०, १३, १४ नाम के घर अशुभ समझे जाते हैं।

उदाहरणतः यदि घर के उत्तर-पूर्व-दक्षिण दिशाओं में बरामदा अभीष्ट हो तो ८ + १ + २ = ११ में १ जोड़ने से १२वें घर का "धनद" नाम होगा ॥ ११ ॥

आषष्ठाद्दशमं त्रयोदशमिमे द्व्यर्णाः परे त्र्यक्षराः
षष्ठान्त्यं चतुरक्षरं खलु गृहं स्युः षोडशैवं गृहाः।
गेहक्ष्माफलयुग्व्ययो गृहभवैर्नामाक्षरैः संयुत-
स्तष्टो वह्निभिरंशका न शुभदं पस्त्यं द्वितीयांशकम् ॥ १२ ॥

मार्तण्डवल्लभा—नामाक्षरसंख्यामाह—**आषष्ठादिति**। षष्ठं मर्यादीकृत्येत्याषष्ठं तस्मात् प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठानि दशमं त्रयोदशमिमे अष्टगृहाः द्व्यर्णाः द्व्यक्षराः षष्ठान्त्यं सप्तमं गृहं चतुरक्षरं चत्वारि अक्षराणि यस्मिंस्तत्तथा अन्ये गृहाः त्र्यक्षराः एवं षोडशगृहाः स्युः। "गृहाः पुंसि च भूम्न्येव निकाय्यनिलयालयाः" इत्यमरः अथांशकसाधनमाह—**गेहक्ष्मेति**। गेहक्ष्माफलयुग् व्ययः गृहक्षेत्रफलयुक्तः पूर्वानीतो व्ययः गृहभवैर्नामाक्षरैः संयुतः वह्निभिस्त्रिभिस्तष्टः शेषितः सन् अंशकाः स्युः। इन्द्रो यमो राजेति तन्नामानि ग्रन्थान्तरे उक्तानि तत्र द्वितीयांशकं पस्त्यं गृहं न शुभदम् अर्थात् प्रथमतृतीयांशकं शुभदमित्यर्थः। "निशान्तपस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्" इत्यमरः ॥ १२ ॥

वागीश्वरी—गृह नामों की अक्षर संख्या बताई जा रही है—

१।२।३।४।५ और ६ तक के घरों तथा १० और १३ संख्यक घर के नामों में

२, २ अक्षर सातवें घर के नाम में (मनोरम) ४ अक्षर अथ ७ घरों के नामों में प्रत्येक में ३ अक्षर स्पष्ट हैं।

अंश (इन्द्र-यम-और राज) ज्ञान—

अभीष्ट घर की लम्बाई को चौड़ाई से गुणा कर जो क्षेत्रफल उसमें व्यय संख्या और उस घर के नाम की अक्षर संख्या जोड़ने से जो अंक प्राप्त हो उसमें ३ का भाग देने से १ शेष में इन्द्र, २ शेष में यम और ३ या ० शेष में उस घर में राज का अंश समझना चाहिए। अतः यम अंश के घर का त्याग कर जैसी लम्बाई चौड़ाई में इन्द्र या राज अंश की प्राप्ति हो वैसा घर बनाना चाहिए ॥ १२ ॥

यावद्भूरिगुणं हृदि स्फुरति तत्तावद्विचार्यं करै-
श्चेत्तैर्नो तनुयादिहाङ्गुलमुखं क्षिप्त्वा विहायाथवा ।
श्रीगोपीपतिमेङ्गह्मालुगिमुखैरायासविच्छित्तये
स्वेष्टायर्क्षफलं निबद्धमिह तज्ज्ञात्वा स्थलं साधयेत् ॥ १३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ गुणविचारणावधिमाह—यावत्पर्यन्तं करैः हस्तैः कृत्वा भूरिगुणं बहुगुणं गृहं हृदि अन्तःकरणे स्फुरति तत्तावद्विचार्यम्। चेद्यदि तैः केवलैः करैः हस्तैः कृत्वा बहुगुणं न स्फुरति तदा अङ्गुलमुखमङ्गुलादिकं करेषु क्षिप्त्वाथवा विहाय तनुयात् कुर्यात्। अथोपायान्तरसूचनामाह—श्रीगोपीपतीति। गोपीपतिर्गोपीराजः मेंगः मेंगनाथदैवज्ञः ह्मालुगिर्ह्मालुगिदैवज्ञः एतन्मुखैर्ज्योतिर्विद्भिः आयासविच्छित्तये स्वेष्टायर्क्षफलं निबद्धम्। तदिहास्मिन् गृहाणां विषये ज्ञात्वा स्थलं स्वाभीष्टस्थलं साधयेत्। तथा च गोपीराजः "विष्णु व्येकायगोभू १९ हतिभयुजि फलं गोपिराजोभ २७ शेषात् सायं वाहाष्टिदृग्घ्ने २१६ ष्युतमहि ८ हता दृक् २ प्रकृत्याख्य २१ विश्वे १३। बाणः ५ सिद्धा २४ अष्टि १६ नाग ८ उडु २७ विधृति १९ गिरिश ११त्रि ३आकृती २२इन्द्र १४ऋतु ६तत्त्व २५अत्यष्टि १७अंक ९क्ष्मा १ नख २० इन १२ अर्णव ४विकृति २३दिन १५अद्रि ७उत्कृती २६धृति १८अथाशाः१०" इति। अस्यार्थः गोपीराजः विष्णुं विष्णुनामानं शिष्यं प्रत्याहेत्यन्वयः। किमाह। हेविष्णो व्येकायगोभू १९ हतिभयुजिभ २७ शेषात् अहि ८ हता दृक् २ प्रकृत्यादयः फलं स्यात्। विगतः एको यस्मात् स व्येकः स चासौ आयश्च व्येकायः व्येकायश्च गोभूश्च अनयोर्हतिर्गुणनं व्येकायगोभूहतिश्च भ च व्येकायगोभूहतिभे तयोर्युक् योगः तस्यां भशेषात् सप्तविंशतिहृच्छेषात् एकादिषु सप्तविंशतिपर्यन्तेषु अहिहता अष्टहता दृक्प्रकृत्यादयः फलं क्षेत्रफलं स्यादित्यर्थः। कथंभूतं फलं सायमायेन सह वर्तमानं सायमिष्टायसहितमित्यर्थः। एतत्स्वेष्टायनक्षत्रजं फलं भवति। न्यासः वा इत्यथवा तत्सायं फलमिष्टाष्टिदृ १२१६ घ्न्यायुतं सत्फलं स्यात्। इष्टश्च अष्टिदृक्च इष्टाष्टिदृक् तयोर्घ्निर्हतिः तया युतमित्यर्थः। इदमपि स्वेष्टायनक्षत्रजं फलं भवतीति। अत्राङ्कन्यास एव

व्याख्यानम्। तथा च मेंगनाथदैवज्ञस्य सूत्रम् "इष्टभात्यष्टिघातेय आयस्तेनोनितेष्टकः। त्रिहृल्लब्धहृतागाश्वि २७ युतेचेष्टायभं भवेत्॥" इति। अस्यार्थः—इष्टभात्यष्टिघाते इष्टभं च अत्यष्टिश्च तयोर्घातो गुणनं तस्मिन् पृथक् स्थापिते य आयस्तेन ऊनितेष्टकः यदि ऊनो न भवति। तदा अष्टौ प्रक्षिप्य स्फोटनीयः ऊनितेष्टायः त्रिहृल्लब्धहृतागाश्वियुते लब्धेन आहताश्च ते अगाश्विनश्च तैः पृथक्स्थापिते इष्टभैरत्यष्टिघाते युते सति इष्टायभं क्षेत्रफलं भवेत्। आयश्च भं च आयभे इष्टे आयभे यस्मिस्तत्तथा अत्र यदि त्रिभिर्निःशेषो भागो न गच्छति तदा तत्र तावत् अष्टौ क्षेप्याः यावत्त्रिभिर्भागो गच्छति। तथा च ह्यालुगिदैवज्ञस्य सूत्रम् "व्येकेष्टर्क्षहता द्विबाणशशिनो १५२ त्यष्टया युता १७ स्तेऽपि च, व्येकेष्टायहृतैकनाग ८१ सहिताः षण्मूर्च्छनाभि २१६ र्हृताः। शेषं क्षेत्रफलं भवेदभिमतस्वेष्टायनक्षत्रजं स्याद्दैर्घ्यं तदभीष्टविस्तृतिहृतं दैर्घ्योद्धृतिर्विस्तृतिः।" इति स्पष्टार्थोऽयं श्लोकः। इत्यादिविचारणया इष्टं क्षेत्रफलमवकाशानुरूपं हृदि धृत्वा स्थलं साधयेदित्यर्थः॥ १३॥

वागीश्वरी—एक प्रकार की मानसिक देन बताई जा रही है—

अभीष्ट लम्बाई चौड़ाई के पिण्ड से उक्त अभीष्टता की अप्राप्ति से, लम्बाई चौड़ाई में ऐसा परिवर्त्तन किया जाना चाहिए जिससे गृहक्षेत्र फल समीचीन है। भूमि की सीमा के तारतम्य को समझ कर लम्बाई चौड़ाई में यथेष्ट अंगुली की भी न्यूनाधिकता की जा सकती हैं जिससे गृह की सीमा भूमि शुभद हो सके।

आचार्य "श्री गोपीपति" आचार्य मेङ्ग और आचार्य ह्यालुगि प्रभृति दैवज्ञों ने, अभीष्ट फल दायक गृह पिण्ड साधन गणित में भूरिश्रम से भी अभीष्ट आय की अनुपलब्धि होने पर भूमि की सीमा के अनुसार पिण्ड की लम्बाई चौड़ाई आदि में जहाँ हाथ का ही मापदण्ड विशेष माना गया है वहां पर यवोदरैरंगुलमष्टसंख्यैः···इत्यादि तथा अंगुलैः षड्गुणितैश्चतुर्विंशतिभिश्च तैः से २४ अंगुल परिमाण को १ हाथ कहा है, अतः श्रमसाध्य हाथ परिमाण में अंगुलादि से आय साधन हाथ परिमाण में हाथ के अवयव अंगुल का भी उपयोग किया जाना चाहिए इत्यादि स्पष्ट सरल किया है इत्यादि···विवेचन द्वारा मकान बनाने के लिये उत्तम स्वच्छ भूमि में दीर्घायुष्य सफल जीवन के अभीष्ट आय घर का निर्माण करना चाहिए॥ १३॥

द्विघ्नायाममितं द्विपाशमजरत्सूत्रं विधायाङ्कयेत्
व्यायामांघ्रिमिते च विस्तृतिदले तौ कर्षकोणाभिधौ।
पाशौ क्षेत्रविरामशङ्कुनिहितौ कृत्वाद्यमाकर्षयेत्
कोणे शङ्कुरितीतरो विनिमयद्रज्ज्वन्तयोश्चापरौ॥ १४॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ स्थलसाधनाय सूत्रमोटनलक्षणमाह—अजरत्सूत्रं नूतनसूत्रं द्विघ्नायाममितं द्विपाशं च विधाय अन्तात् एकस्मात्सूत्रान्तात् अङ्कये-

दित्यन्वयः, द्विघ्नश्चासौ आयामश्च द्विघ्नायामः आयामो दैर्घ्यम्, तेन मितं द्विगुणित-दैर्घ्यं समानमित्यर्थः। द्विपाशं द्वौ पाशौ यस्मिन् तद्द्विपाशं एवं विधं सूत्र विधाय कृत्वा अन्तात् सकाशात् अङ्कयेत् चिह्नयेत् एतदुक्तं भवति। पूर्वकल्पितक्षेत्रस्य दैर्घ्यमितं सूत्रं द्विगुणं विधाय तदन्तयोः पाश कृत्वा अङ्कयेत्। कुत्र कुत्राङ्कयेदित्याह—आयामांघ्रिमिते च परं विस्तृतिदले अङ्कयेत् त्रयश्च ते आयामांघ्रयश्च ते तथा तैर्मितं तस्मिन्! एतदुक्तं भवति। क्षेत्रदैर्घ्यं चतुर्भिर्भक्तालब्धमघ्रिप्रमाणमेकस्मादन्तात् अंघ्रित्रयं हित्वा चिह्नयेत् विस्तृतिदले क्षेत्रस्य विस्तारार्धमिते अङ्कयेत् तौ अङ्कौ कर्षकोणाभिधौ स्तः अंघ्रित्रये कृतः कर्षाख्यः विस्तृतिदले कृतोङ्कः कोणाख्यः। एवं सूत्रमोटनमुक्त्वा स्थलसाधनमाह—पाशाविति। पाशौ क्षेत्रविरामशङ्कुनिहितौ कृत्वा आद्यमङ्कमाकर्षयेदित्यन्वयः। क्षेत्रस्य विरामौ अन्तौ तयोः शङ्कू निहितौ निक्षिप्तौ कृत्वा आद्यमङ्कं कर्षाख्यम् आकर्षयेत्। एतदुक्तं भवति। क्षेत्रस्य मध्यभागे साधित-दिक्सूत्रोपरि इष्टदैर्घ्यमितं सूत्रं प्रसार्य तदन्तयोः शङ्कुनिखातयोः शङ्कोः मोटित-सूत्रान्तपाशौ निधाय कर्षाख्यं चिह्नं धृत्वा एकस्यां दिशि आकर्षयेत् यथोभयशङ्कु-गता रज्जुः समाना आकृष्टा स्यात् तथा आकर्षयेदित्यर्थः। कोणे शंङ्कुरिति। कोणे कोणचिह्ने यत्र कोणचिह्नमागतं तत्र भुवि शङ्कुं निखायेत्यध्याहारः। इत्यमुना प्रकारेण इतरः शङ्कुर्निखेयः। एतदुक्तं भवति। तदेव कर्षचिह्नम् अन्यस्यां दिशि आकृष्य कोणे शङ्कुर्निखेयः। एवं कोणद्वयसाधनमभिधाय अन्यकोणद्वयसाधनमाह—विनिमयादिति। रज्ज्वन्तयोर्विनिमयात् विपरीतधारणात् अपरौ कोण शंङ्कू निखेयौ। एतदुक्तं भवति। रज्ज्वन्तौ विपरीतौ धृत्वा पूर्ववत्कर्षाकर्षणं कृत्वा कोणयोः शङ्कू निखेयौ ॥ १४ ॥

वागीश्वरी—गृह के भूमिपिण्ड में चारों कोणों का स्थान—

लम्बाई का द्विगुणित नया सूत्र में, लम्बाई के त्रिगुणित बिन्दु पर एक चिन्ह, तथा विस्तार के आधे पर एक विन्दु (संकेत) कर देने से दोनों चिन्हों में प्रथम को कर्ण चिन्ह एवं दूसरे चिन्ह को कोण चिन्ह कहते हैं। तथा लम्बाई के अन्त में दोनों तरफ अर्थात् उत्तर दक्षिण में दो खूटा (सीधी लकड़ी) द्विगुणित रस्सी के दोनों तरफ अर्थात् उत्तर-दक्षिण में एक गाँठ (फन्दा) बनाकर पूर्व के आदि चिन्ह जिसे कर्ण भी कहते हैं उसे खींचते हुए जहां दूसरा चिन्ह जिसकी कोण संज्ञा है वहां पर एक और खूंटा गाड़ देने से निश्चित रूप से दो कोण उत्पन्न हो जाते हैं। अतः रस्सियों के परिवर्त्तन से दूसरी तरफ भी उक्त प्रकार खींचने से अब दो कोण भी उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार मकान की भूमि के चार कोणों में ४ शङ्कु बनते हैं ॥ १४ ॥

आग्नेयादि दृढं प्रदक्षिणगतं सूत्रं समासादये-
न्मध्ये वामकपार्श्वसुप्तपुरुषं ध्यात्वा तमुत्तानकम् ।

अष्टाश्व्यंश२८ मगेन्दु१७ संमितलवान् पुच्छाद्विहायाग्रगो
भागो नाभिरितः खनेल्लवमितं वामेऽश्मभिः पूरयेत् ॥ १५ ॥

मार्तण्डवल्लभा—एवं क्षेत्रसाधनमुक्त्वा सूत्रन्यासमाह—**आग्नेयादिति**। आग्नेयादि दृढं प्रदक्षिणगतं सूत्रं आसादयेत्, मध्ये क्षेत्रमध्ये वामकपार्श्वसुप्तं पुरुषं प्रागुदक्शिरस्कं ध्यात्वा तं ध्यातं पुरुषमुत्तानकं ध्यायेत्। कथंभूतम् ? पार्श्वस्थं लघुमध्यगुरोः परं स्याद्यथोपरि तथैव पूरयेत्, पश्चिमं च गुरुभिः पुनः पुनः सर्वमेव लघुरित्येवं विधिरिति। कथंभूतम् अष्टाश्व्यंशमष्टाश्विनोंऽशा भागा यस्मिन् स तथा तम्। अयमर्थः। क्षेत्रप्रमाणं कृकलासरूपं वास्तुपुरुषं प्रकल्प्य ततोऽष्टाविंशतिधा कुर्यात् एवमष्टाश्व्यंशं प्रकल्प्य पुच्छात्सकाशात् अगेन्दुसंमितलवान् सप्तदशभागान् विहाय त्यक्त्वा अग्रगस्तदग्रगो भागो नाभिः इतो नाभेः सकाशात् वामे वामभागे लवसंमितं खनेत् अनन्तरं अश्मभिः पूरयेत्। तथा च ब्रह्मशम्भुः "सूत्रभित्तिशिलान्यासस्तम्भस्यारोपणं तथा। पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह काश्यपः ॥" इति नारदः "नभस्यादिषु मासेषु त्रिषु त्रिषु यथाक्रमम्। पूर्वादिदिक्शिरा वामपार्श्वशायी प्रदक्षिणम् ॥" इति। तथा च शिल्पशास्त्रे "वास्तोः शिरसि पुच्छे च याम्यकुक्षौ च पृष्ठतः। आयुःकामः खनेन्नैव वामकुक्षौ खनिः शुभा ॥ वास्तुक्षेत्रप्रमाणं च कल्पयित्वाऽस्यवामके। कुक्षौ खातं विधायादौ ग्रावभिः पूरयेत्ततः ॥" इति। तथा च लल्लः "त्यजेद्दशशिरोभागो ह्यग्रे सप्तदशांशकान्। मध्ये नाभि विजानीयात्तत्र शङ्कुं प्रतिष्ठयेत् ॥ अस्थिरस्य शिरो यत्र वास्तोस्तद्गणयेत्करैः। दैर्घ्यं वा विस्तृतिं चैव कृत्वाष्टाश्विमितांशकान् ॥" इति ॥ १५ ॥

वागीश्वरी—गृह पिण्ड अर्थात् मकान बनाने की भूमि के चारों कोणों में प्रदक्षिण क्रम से मजबूत रस्सी (सूत्र) को चारों कोनों के खूंटों में बांध देना चाहिए। अनन्तर गृह निर्माण की भूमि के मध्य भाग में घर की अभीष्ट लम्बाई के तुल्य वास्तु शिर की तरफ बायें करवट से सोये हुए उत्तान वास्तु पुरुष का ध्यान करते हुए उस वास्तु भूमि में २८ अट्ठाईस विभागों की कल्पना करनी चाहिए। तदनन्तर पुच्छ से १७ विभाग छोड़कर १८वें विभाग को वास्तु पुरुष की नाभि समझना चाहिए। उस नाभि के बायीं तरफ एक १ विभाग के बराबर खात खोदते हुए उस खात (गड्ढे) को प्रस्तर (गिट्टी, कंकड़, पत्थर के टुकड़े) से भरना चाहिए—यही मकान की नीव कही जाती है ॥ १५ ॥

नाकालेऽत्र निधेय उक्ततरुजोऽग्र्यात्सिद्ध२४विंशा२०ष्टय१६हः-
कृत् १२संख्याङ्गुलकस्त्रिभागचतुरस्राष्टास्रकान्त्यकः।
कं वक्षस्थलमूरुपादयुगुलं संस्पृश्य विप्रादिको
रेखां सूत्रवदग्निजेन रचयेत्तद्वच्च भित्तेः शिलाः ॥ १६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ शङ्कुन्यासमाह—नाकाले इति। अत्र कुक्षिस्थले ना नरः शङ्कुः काले मुहूर्तसमये निधेयः। कियत्प्रमाण इत्यपेक्षायां नृमानमाह—अग्र्यात् विप्रात् सकाशात् वर्णपरत्वेन सिद्धा २४ विश २० अष्टि १६ अहःकृत् १२ संख्याङ्गुलकः निधेयः प्रतिष्ठापनीयः। एतदुक्तं भवति। विप्रेण सिद्धसंख्याङ्गुलश्चतुर्विंशाङ्गुलो निधेयः क्षत्रियेण विंशाङ्गुलः वैश्येन अष्ट्यङ्गुलः शूद्रेणाहःकृत्संख्याङ्गुलो द्वादशाङ्गुलो निधेय इत्यर्थः। किं लक्षणो ना उक्ततरुजः शास्त्रोक्तवृक्षोद्भवः। पुनः किंलक्षणः त्रिभागचतुरस्राष्टास्रकानस्रकः त्रिभागेषु चतुरस्राष्टास्रकानस्रकाणि यस्मिन् स तथा। एतदुक्तं भवति। यथाप्रमाणं शङ्कुं त्रिधा विभज्य आद्यांशं चतुरस्रं द्वितीयांशमष्टास्रं तृतीयांशमनस्रं वर्तुलं कुर्यादितिभावः। तथा चोक्तं ग्रन्थान्तरे "स्याच्चतुर्विंशविंशाष्टद्वादशाङ्गुलकैः क्रमात्। विप्रादीनां शंकुमानं स्वर्णवस्त्राद्यलंकृतम्॥ खदिरार्जुनशालोत्थं युगपत्रतरूद्भवम्। रक्तचन्दनपालाशरक्तशालकिलालजम्॥ निम्बकारंजकटजं वैणवं बिल्ववृक्षजम्। शङ्कुं त्रिधा विभज्याद्यं चतुरस्रं ततः परम्॥ अष्टास्रं च तृतीयांशमनस्रमृजुमव्रणम्। एवं लक्षणसंयुक्तं परिकल्प्य शुभे दिने॥" इति॥ अथ रेखाकरणमाह-कमिति। अग्निजेन सुवर्णेन ब्राह्मणादिकः कादिसंस्पृश्य सूत्रवद्रेखां रचयेत्। सूत्रवदिति आग्नेय्यादिगृहप्रदक्षिण कुर्यादित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। ब्राह्मणः कं शिरः स्पृष्ट्वा तर्जन्या वा कृत्वा आग्नेयादिप्रदक्षिणं सूत्रानुगतां रेखां कुर्यात्। तथैव क्षत्रियो वक्षःस्थलं स्पृष्ट्वा रेखां कुर्यात्। वैश्यः ऊरुयुगुलं स्पृष्ट्वा रेखां कुर्यात्। शूद्रः पादयुगुलं स्पृष्ट्वा रेखां कुर्यात्। तथा च लल्लः "कृत्वा सूत्रनिपातं मध्याङ्गुल्याथवा प्रदेशिन्या। अङ्गुष्ठेन ह्यथवा कनकाक्षतरजतमुक्ताभिः॥ रेखां कुर्यात्" इत्यादि। तथा च भृगुः "विप्रः शीर्षं नृपो वक्षो वैश्यश्चोरू परः पदे। स्पृष्ट्वा रेखां गृहारम्भे कुर्यादग्नेः प्रदक्षिणम्॥" इति॥ अग्नेरित्याग्नेय्याः। तथा च कारिकायाम् 'अंगुष्ठकेन देशिन्या रेखां कुर्वीत सूत्रतः। स्वर्णेन मणिना रूप्यमुक्तादध्विफलाक्षतैः॥ कुसुमैर्वा न शस्त्रेण न लोहेन न भस्मना। काष्ठादिभिर्नापसव्यां न वक्रां दोषदर्शनात्॥ शस्त्रेण शस्त्रमृत्युः स्यादित्यादि स्पष्टमीरितम्॥' इति॥ तथा च बृहद्वास्तुपद्धतौ "शस्त्रेण शस्त्रमृत्युर्बन्धो लोहेन भस्मनाग्निभयम्। तस्करभयं तृणेन च लिखिता काष्ठेन राजभयम्॥ वक्रा च पादलिखिता रिपुभयदा क्लेशदा विरूपा च। चर्मांगारास्थिकृता दन्तेन च कर्तुरशुभाय॥ वैरमपसव्यलिखिता प्रदक्षिणा संपदो विनिर्देश्या॥" इति॥ अथ शिलान्यासमाह—भित्तेः शिला अपि सूत्रवदाचरेयुः आग्नेयादिप्रदक्षिणं स्थापयेयुरित्यर्थः। तथा च वराहः "दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमम्। शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं प्रतिष्ठाप्याः॥" इति॥ १६॥

वागीश्वरी--गृहारम्भ मुहूर्त्त के समय में भूमि में शंकु की भी स्थापना कर देनी चाहिए। शास्त्रों में शंकु की लकड़ी के लिए, रक्तचन्दन, पलाश, खैर, पद्म, अर्जुन, आदि पवित्र लकड़ियों का उपयोग कहा गया है। ब्राह्मणादि वर्णों के लिए—ब्राह्मण वर्ण के शंकु

का प्रमाण २४ अंगुल, क्षत्रिय २०, वैश्य १६ और शूद्र वर्ण का शंकु १२ अंगुल प्रमाण का कहा गया है। इस प्रकार शंकु निर्माण कर शंकु के तीन बराबर भाग करने चाहिए।

शंकु का प्रथम भाग चतुष्कोण, द्वितीय भाग अष्टकोण और तीसरे भाग को वृत्ताकार बनाना चाहिए। तदनन्तर शंकु को वास्तु पुरुष के बायें कुक्षिभाग में स्थापित करना चाहिए। तत्पश्चात् हाथ में सोना (सुवर्ण) लेकर ब्राह्मण ने वास्तु के मस्तक पर, क्षत्रिय ने हृदय, वैश्य ने दोनों जांघ और शूद्र ने दोनों पादों का स्पर्श कर सूत्र की तरह अग्निकोण से प्रदक्षिण क्रम से रेखा खींचते हुए पूर्वोक्त कथित क्रम से दीवाल की भी शिला स्थापित करनी चाहिए ॥ १६ ॥

पूर्वादौ त्रिषडर्थपञ्चमलवे द्वाः सव्यतोऽङ्कोद्धृते
दैर्घ्ये द्व्यंशसमुच्छ्रिताब्धिलवके सर्वासु दिक्षूदिता।
स्तम्भोऽग्नेर्दिशि पूजितः सुसमये स्थाप्यः शिरश्छत्रभाग्
विस्ताराष्टिलवान्वितैः कृतकरैस्तुल्यं गृहोच्चं विदुः ॥ १७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ भित्तिप्रसंगेन द्वारमाह—दैर्घ्ये गृहदैर्घ्ये अङ्कासे नवभिर्भाजिते सति पूर्वादौ दिशि क्रमेण सव्यतो वामभागात् त्रिषडर्थपञ्चमलवे द्वाः द्वारमुक्तं मुनिभिरिति शेषः। त्रयश्च षट् च अर्थाश्च पञ्च च त्रिषडर्थपञ्च एतेषां संख्यापूरका त्रिषडर्थपञ्चमास्ते च ते लवाश्च तेषां समाहारस्तस्मिन्। एतदुक्तं भवति। गृहदैर्घ्यं नवभागं कृत्वा पूर्वाभिमुखे गृहे क्रियमाणे वामभागात् अंशद्वयं त्यक्त्वा तृतीयांशे द्वारं कर्तव्यम्। दक्षिणाभिमुखे तथैवांशपञ्चकं त्यक्त्वा षष्ठेंऽशे कार्यम्। पश्चिमाभिमुखे तथैवांशचतुष्कं त्यक्त्वा पञ्चमांशे कार्यम्। उदङ्मुखे पश्चिमांशे एव द्वारं कर्तव्यम्। सर्वासु दिक्षु अब्धिलवके चतुर्भागे द्वारुदिताः। किंलक्षणा द्वाः द्व्यंशसमुच्छ्रिता द्विभागोच्चा। तथा च वराहः "दैर्घ्ये नवांशाः पदमत्र सव्याद् द्वारं शुभं प्राक् त्रिचतुर्थभागे। चतुर्थषष्ठे दिशि दक्षिणस्यां पश्चाच्चतुःपञ्चमके तथोदक् ॥" इति ॥ तथा च च्यवनः "मानाधिकोनदिग्भागे द्वारे नोचसुखक्षयः" इति। अथ निष्पन्नासु भित्तिषु स्तम्भप्रतिष्ठामाह—स्तम्भोऽग्नेर्दिशीति। अग्नेर्दिशि आग्नेय्यां सुसमये पूर्वोदिते स्तम्भः स्थाप्यः। अत्राप्युक्ततरुज इत्यनुवर्तते। किंलक्षणः स्तम्भः पूजितः स्रक्चन्दनार्चितः पुनः किंलक्षणः शिरश्छत्रभाक् शिरसि छत्रं भजते इति तथा छत्रं तु काकादिपक्ष्युपवेशनभयात् स्तम्भोपरि क्रियते। तथा च वराहः "छत्रस्रग्बन्धयुतकृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः। स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन ॥" इति। तथा चोत्पलः 'स्तम्भोपरि यदोलूककाकगृध्रादिपक्षिणः। व्यालादयश्च तिष्ठन्ति तदा कर्तुर्न शोभनम् ॥ तस्मात्स्तम्भोपरिच्छत्रं शाखां फलवतीं तु वा। धारयेदथवा वस्त्रं बुधै रत्नादि निक्षिपेत् ॥" इति ॥ गुर्जरदेशे क्वचित् कालसर्पमवलोक्य तच्छून्यदिशि प्रथमं स्तम्भप्रतिष्ठां कुर्वन्ति। तदसत्। यतस्तदवलोकनं विवाहवेद्यां कोणेषु शृङ्गारार्थं स्तम्भान्

रोपयन्ति तद्विषयम् । तदप्येकदेशीयं न बहुसंमतम् । कालसर्पस्तु यथा "ईशानतः सर्पति कालसर्पो विहाय सृष्टि गणयेद्विदिक्षु । पश्चाद्गतिस्तन्मुखमध्यपुच्छं त्रिकं त्रिकं वै वृषसंक्रमादेः ॥ अहेः फणायां मरणं वरस्य मध्ये कुमार्याः स्वजनस्य पुच्छे । विधेयमेकं किलशून्यदेशे विवाहवेद्यां निखनेच्च कीलम् ॥" इति । वृषादित्रिषु राशिषु रवौ आग्नेय्यां स्तम्भारोपणं कार्यम् । सिंहादिषु ईशान्यां वृश्चिकादित्रिषु वायव्या घटादित्रिषु नैर्ऋत्यां कर्त्तव्यमिति । एतद्विवाह एव गृहे सिंहादवलोकनीयं वृषाद्वेद्याम् । तथा च "वृषाद्वेद्यां गृहे सिंहान्मीना-त्रीणि सुरालये । मुखं मध्ये तथा पुच्छं हित्वा स्तम्भं नियोजयेत् ॥" इति । अन्यच्च गृहस्तम्भप्रतिष्ठापनं बहुभिग्रंन्थकारैराग्नेय्यां वाऽभिहितम् । तथा च ब्रह्मशम्भुः "सूत्रभित्तिशिलान्यासं स्तम्भस्यारोपणं तथा । पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः ॥" इति ॥ तथा च शार्ङ्गधरः "प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा । आग्नेय्यां प्रथमं स्तम्भं स्थापयेत्तद्विधानतः ॥" इति ॥ तथा च वराहमिहिराचार्याः "दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम् । शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं प्रतिष्ठाप्याः ॥" इति ॥ कात्यायनगृह्य कारिकायामप्युक्तम् "एकैकमुच्छ्रयेत् स्तम्भं मन्त्रैरेतैः शिलातले । श्रियोवसान इत्यन्तैरिमामित्यादिभिर्गृही । आग्नेय्यादिषु कोणेषु मन्त्रैरेतैः शिलां न्यसेत् ॥" इति । गृह्ये हरिहरभाष्ये शालापद्धतिष्वप्येवमेवोक्तम् । इत्यलमतिप्रसंगेन । उक्ततरुज इत्युक्तत्वात् शास्त्रान्तरात् काष्ठान्यवगन्तव्यानि । तथा च वास्तुशास्त्रे "श्रीपर्णी रोहिणी शाकसर्जाश्च सरलाः शुभाः । पतङ्गलोध्रशालाख्यास्तालार्जुनकर्शिशपाः ॥ चन्दनाशोकबदरीमधूकाश्च कदम्बकाः ।" नारदः "प्लक्षोदुम्बरचूताख्या निम्बस्नुहिविभीतकाः । दग्धाः कंटकिनो वृक्षा वटाश्वत्थकपित्थकाः ॥ अगस्तिशिग्रुतालाख्यास्तित्तिडीकाश्च निन्दिताः । अन्ये च गृहनिर्माणे योजनीयाः सदा द्रुमाः ॥" इति । तथा च वराहः "पितृवनमार्गसुरालयवल्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः । चैत्यसरित्संगमभवाश्च घटतोयसिक्ताश्च ॥ कुब्जानुजातवल्लीनिपीडिता वज्रमारुतोपहताः । स्वपतितहस्तिनिपीडितशुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः ॥ तरवो वर्जयितव्याः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः । सुरदारुचन्दनसमा मधुकरतरवः शुभा द्विजातीनाम् ॥ क्षत्रस्यारिष्टाश्वत्थखदिरबिल्वा वृद्धिकराः । वैश्यानां जीवखादिरकसिन्दूरकस्यन्दनाश्च शुभफलदाः ॥" इति । व्यासोऽपि "अन्यवेश्मस्थितं दारु नैवान्यस्मिन्प्रयोजयेत् । न तत्र वसतेः कर्त्ता वसेत्तत्र न जीवति ॥" इति । समरांगणे "इष्टकालोष्टपाषाणमृत्तिकाजीर्णमायसम् ॥ तृणं पर्णं बुधैः प्रोक्तं दारु नूनं गृहाय वै ॥" इति ॥ शार्ङ्गधरेऽपि "नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णे जीर्णं प्रशस्यते । जीर्णं च नूतनं श्रेष्ठं नो जीर्णं नूतने शुभम् ॥" इति । वृक्षच्छेदनप्रार्थना ग्रथान्तरे उक्ता "यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् । अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥" इति । अथ स्तम्भप्रसंगेन गृहोच्चतामाह—विस्तारेति । विस्तारस्य गृहविस्तारस्य अष्टिलवः षोडशांशस्तेन अन्वितैर्युक्तैः कृतकरैश्चतुर्हस्तै-

स्तुल्यं समानं गृहोच्चं विदुर्मुनय इत्यध्याहारः। तथा च रत्नकोशे "निस्तारषोडशांशश्चतुर्हस्तो भवेदिहोच्छ्रायः" इति। तथा च लल्लः "नात्युच्छ्रितं नातिनीचं कुड्योत्सेधं यथारुचि" इति ॥ १७ ॥

वागीश्वरी—मकान की भूमि की लम्बाई के ९ भाग दक्षिण मुख के घर में ६ठा भाग पश्चिम और उत्तर मुख में पाचवें विभाग में द्वार निवेश होना चाहिए। नवमभाग की द्विगुणित माप की द्वार की ऊँचाई होनी चाहिए। अभीष्ट शुभ समय में अग्निकोण में काष्ठमय स्तम्भ की पूजा पूर्वक स्थापना होनी चाहिए। स्तम्भ के शिर पर छत्र बनाना चाहिए। पक्षी आदि न बैठ सकें अत एव स्तम्भ पर छत्र बना देना चाहिए।

गृह की भूमि की चौड़ाई के १६वें भाग में ४ हाथ जोड़ कर जो हो इस संख्या तुल्य घर की ऊँचाई भी होनी चाहिए। जैसे २४ हाथ की चौड़ाई के घर का १६वाँ भाग $\frac{२४}{१६} = \frac{२}{३}$ = १६ अंगुल ४ हाथ में १६ अंगुल जोड़ देने से ४ $\frac{२}{३}$ हाथ ऊँचाई होती हैं इत्यादि ॥ १७ ॥

स्नानाग्निस्वपिवस्त्रभोजनपशुद्रव्यामरौकःस्थितिः
पूर्वादौ जलमीशितुर्दिशि परं वायोरपाङ्मूत्रकम्।
अल्पे शक्तिभुवोर्यथारुचि परे गेहस्य दक्षे घर-
ट्टाम्बूलूखलचुल्लिकापितृपदप्रक्षालनान्यूचिरे ॥ १८ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ मुख्यगृहात् कस्य गृहं कस्यां दिशि कर्तव्यं तदाह—**स्नानेति**। स्नानं प्रसिद्धम् अग्निः प्रसिद्धः स्वपिः शयनं वस्त्राणि प्रसिद्धानि भोजनं प्रसिद्धं पशवो गवादयः द्रव्याणि सुवर्णादीनि अमरा देवाः एषामोकांसि गृहाणि तेषां स्थितिः स्थापनं पूर्वादौ दिशि क्रमेण कार्यमित्यध्याहारः। तथा च नारदः "स्नानागारं दिशि प्राच्यामाग्नेय्यामग्निमन्दिरम्। याम्यायां शयनागारं नैर्ऋत्यां वस्त्रमन्दिरम् ॥ प्रतीच्यां भोजनागारं वायव्यां पशुमन्दिरम्। भाण्डकोशं तूत्तरस्यामीशान्यां देवमन्दिरम् ॥" इति ॥ अथ जलस्थानमाह—ईशितुरीशानस्य दिशि जलं कार्यं नान्यत्र। तथा च लल्लः "प्राच्यादिदिक्स्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयं च। स्त्रीकलहं स्त्रीदोष्ट्यं नैष्ठ्यं चिन्तात्मजविवृद्धिः स्यात् ॥" इति ॥ अथान्यदप्याह-परमिति। परमनुक्तं पदार्थजातं वायोर्दिशि कार्यम्। अन्यानि मारुत्यामिति लल्लोक्तत्वात्। अपाग् दक्षिणस्यां दिशि मूत्रकं कार्यम्। स्थलसंकोचे सति एतद्यत्प्रोक्तं तद्गृहमध्ये बाह्यतश्च स्वस्थाने तारतम्येन योज्यम्। अथ शक्तिभुवोः संकोचे सति कर्तव्यमाह—अल्पे इति। शक्तिभुवोरल्पे सति यथारुचि कार्यम्। गेहस्य दक्षे परे आचार्याः घरट्टादिकमूचिरे। घरट्टः पिष्टयन्त्रम् अम्बु उदकम् उलूखलादिकं प्रसिद्धम्। तथाचोक्तं ग्रन्थान्तरे "उलूखलं पिष्टयन्त्रमग्निस्थानं जलाश्रयम्। वेश्मनो दक्षिणे पार्श्वे पितॄणां पादशौचनम् ॥" इति ॥ १८ ॥

वागीश्वरी--मकान में गृहस्थी के उपयोग के नियत स्थान—

उक्त प्रकार नव निर्मित मकान के पूर्व दिशा के कमरे में स्नानघर, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा के कमरों में क्रमशः शयन कक्ष, भोजन और द्रव्य निवेश (कोष) के कमरे बनाने चाहिए।

इसी प्रकार अग्निकोण में—रसोई घर, नैऋत्य में वस्त्रादि रखने का स्थान, वायु कोण में पशु-गोशालादि और ईशान में ईश-ईश्वर देव गृह का निर्माण करना चाहिए। दक्षिण कोण के बाहर में शौचालय बनाना चाहिए। और अनुक्त आवश्यक पदार्थों का सुरक्षित स्थान के लिये वायु कोण उत्तम कहा गया है। यह सब सर्व सम्पन्न अधिक भूमि-पति के लिये ही संभव है। भूमि की यथा-स्थिति से सोच-समझ कर उक्त समस्याओं का सुविधाजनक स्थान ठीक कर लेना चाहिए। अन्य आचार्यों के मत से घर गृहस्थी के नित्य उपयोग के ओखल, जांता, चूल्हा, श्राद्ध आदि के लिये घर की दक्षिण दिशा ठीक कही गई है ॥ १८ ॥

वायु	उत्तर	ईशान
पशु सर्ववस्तु	द्रव्य	देव
पश्चिम भोजन		स्नान पूर्व
वस्त्र	शयन शौच	अग्नि रसोईंआदि
नैऋत्य	दक्षिण	अग्नि

द्वात्रिंशाधिकहस्तमब्धिवदनं तार्णं त्वलिन्दादिकं
नैष्वायादिकमीरितं तृणगृहं सर्वेषु मास्सूदितम् ।
छन्नं वश्यकपाटमर्चिततमं वेश्मोक्तरीत्या विशे-
दारम्भोदितमास्सु नारदमतान्माघोर्जशुक्रेषु तु ॥ १९ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ केषु केषु गृहेषु आयादिकं भाव्यं केषु न भाव्यमित्याह—द्वात्रिंशेभ्यः अधिकाः हस्ताः यस्मिन् गृहे प्रमाणं तत् द्वात्रिंशाधिकहस्तमब्धिवदनं चतुर्मुखं तार्णं तृणगृहम् अलिन्दादिकम् अलिन्दं पट्टिशालेति लोके प्रसिद्धम्। आदिशब्देन निर्व्यूहादि गृहभूषणं गृह्यते एषु आयादिकं न ईरितं नोक्तम्। तथा च दैवज्ञवल्लभे "अलिन्दनिर्व्यूहविनिर्गमाद्याश्चतुर्दिशं ये गृहभूषणाय ॥ आयादिकं तेषु न चिन्तनीयं यतो न ते वास्तुपरिग्रहे स्युः" इति। तथा च चिन्तामणौ "यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोऽधिकम् ॥ न तत्र चिन्तयेद्धीमान्गणनायव्ययादिकम्" इति। तथा च राजमार्तण्डे "आयव्ययौ मासशुद्धिं चिन्तयेन्न तृणालये।" इति। तथा च वसिष्ठः "एकादशे यवादूर्ध्वं यावद्द्वात्रिंशहस्तकम् ॥ तावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत्" इति। अथ तृणगृहे विशेषमाह—तृणगृहं सर्वेषु मास्सु उदितम् सर्वमासेषु कर्तव्यमित्यर्थः। अथ निष्पन्ने गृहे प्रवेशमाह—छन्नमिति। अरम्भोदितमासेषु शास्त्ररीत्या वेश्म गृहं विशेत् आरम्भाय उदिताः प्रोक्तास्ते च ते मासाश्च

तेषु शास्त्ररीत्या सूत्राद्युक्तविधिना गृहं प्रविशेत्स्वामीत्यर्थः। कथं भूतं वेश्म छन्नं कुड्यैराच्छादितम्। पुनः किंलक्षणं वश्यकपाटं वश्यमधीनं कपाटं यस्य तत्तथा तत् वश्यमिति लापित उद्घाटिते वा तथैव स्थिरं भवति। पुनः किं लक्षणम् अचिततमं तोरणमालाद्यलंकृतम्। तथा च नारदः "अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम्॥ गृहं न प्रविशेदेव विपदामाकरं हि तत्" इति। तथा च च्यवनः "स्वयमुद्घाटिते रोगोऽपिहिते च कुलक्षयः। नानाधिकोनदिग्भागे द्वारे नीचे सुखक्षयः" इति। अथ प्रवेशे मासविशेषमाह नारदमतात्। माघोर्जशुक्रेषु मासेषु गृहं प्रविशेत् माघः प्रसिद्धः ऊर्जः कार्तिकः शुक्रो ज्येष्ठः एषु गृहं प्रविशेदित्यर्थः। आरम्भोदितमास्वित्यनेन तृणगृहस्य सर्वमासेषु विहितत्वात् प्रवेशोऽपि सर्वमासेषु विहितः। तथा च नारदः "प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः॥ माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः" इति। तथा च ज्योतिःप्रकाशे "गृहारम्भोदितैर्मासैर्धिष्ण्यैर्वारैर्विशेद्गृहम्" इति। तथा च ग्रन्थान्तरे "विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारं तु सर्वदा" इति। तथा च व्यवहारसारतत्त्वे "सौम्यायने श्रावणमार्गपौषे जन्मर्क्षलग्नोपचयं दशांशे॥ वामं गतेऽर्के गृहवास्तुपूजां कृत्वा विशेद्वेश्म भकूटशुद्धम्" इति॥ १९॥

वागीश्वरी—आयादिक विचार कहीं पर आवश्यक है। घर का विचार—

जिस मकान की लम्बाई ३२ हाथ से अधिक हो और जो घर चतुर्मुख (चारों तरफ दरवाजे) हों और केवल तृण और काष्ठ से बना हुआ हो उस घर के अलिन्द बरामदा आदिक घर में आय विचार, क्षेत्रफल और व्यय आदिकों पर विचार अनावश्यक कहे गये हैं। केवल तृण और काष्ठ से बने हुये घरों के लिये मासों में कोई विशेषमास नहीं अर्थात् ऐसे मकान सभी मासों में बनाये जा सकते हैं। इनमें मासादि दोष नहीं है।

चतुर्दिक से दीवाल आदि से घेरते हुये और दरवाजे आदि से सुशोभित करते हुये, फूल-फल माला, ध्वजा तोरण आदि से घर को सजाते हुये शास्त्र मर्यादा के अनुसार स्वेष्टदेव आदि पूजा करते हुये गृहपति को ऐसे घर में प्रवेश करना चाहिए।

वैशाख-पौष-फाल्गुन-श्रावण और मार्गशीर्ष मासों में गृह का शुभारम्भ होना चाहिए। श्री नारद जी के कथनानुसार माघ-कार्तिक और ज्येष्ठ मासों में भी गृह प्रवेश शुभावह कहा गया है॥ १९॥

प्रारम्भोदितभैः प्रवेश उदितो पूर्वः सपूर्वः स्थिरै-
मैत्रैश्चाच्युतमूलदस्रसहितैरारम्भभैर्द्व्यात्मकः।
कृत्यं वेश्मभवं दिवैव विहितं रात्रौ प्रवेशः क्वचित्
सूर्यर्क्षादिभपञ्चकं मनुमितादष्टप्रवेशे न सत्॥ २०॥

मार्तण्डवल्लभा—इदानीमपूर्वादिप्रवेशानाह—**प्रारम्भेति**। प्रारम्भोदितभैः गृहप्रारम्भोदितनक्षत्रैरपूर्वः प्रवेशः उदितः मुनीन्द्रैरित्यध्याहारः। अप्रारम्भोदित-

भैरित्युपलक्षणम्, तेन प्रारम्भोदिततिथिभादिकं सर्वं ग्राह्यम् । अपूर्वो नाम नूतनगृहे प्रथमः प्रवेश उच्यते । स्थिरैर्मित्रैश्च नक्षत्रैः सपूर्वः प्रवेश उदितः । सपूर्वो नाम यात्रावसाने यः क्रियते । अथ अच्युतमूलदस्रसहितैरारम्भभैर्द्वयात्मकः प्रवेशः उदितः द्वयात्मको नाम अग्न्यादिना नष्टगृहे पुनर्यः क्रियते । तथा च ज्योतिःप्रकाशे "अपूर्वः प्रवेशो गृहारम्भधिष्ण्यैर्विधेयः करो मध्यमोऽत्रेति केचित् । सपूर्वः स्थिरैर्मिश्रभैरेव शुद्धैरतोऽन्योऽश्विमूलाच्युतारम्भधिष्ण्यैः" ॥ वसिष्ठः "अपूर्वसंज्ञं प्रथमं प्रवेशं यात्रावसाने च सपूर्वसंज्ञम् । द्वन्द्वाह्वयं चाग्निभयादिजातं गृहप्रवेशं त्रिविधं वदन्ति" ॥ अथ गृहकृत्यविषये दिनरात्रिविशेषनिर्णयमाह—कृत्यं वेश्मभवमिति । वेश्मभवं यत्किंचित्कृत्यं तद्दिवैव विहितं न रात्रौ क्वचिद्दिवामुहूर्ताभावे सति रात्रौ प्रवेशो विहितः नान्यत् । तथा च वसिष्ठः "दिवाप्रवेशः शुभदः सपुत्रपौत्रादिवृद्धयै निशि भास्करेन्द्वोः । बलेन मत्स्यध्वजवासरस्य रात्रिं विना सूर्यतिथिश्च रात्रिम्" ॥ इति । अथ कलशवास्तुनक्षत्रशुद्धिमाह—सूर्यर्क्षादिति । सूर्यनक्षत्रादिभपञ्चकं नक्षत्रपञ्चकं तथा सूर्यर्क्षादिमनुमिताच्चतुर्दशमितान्नक्षत्रादष्टनक्षत्राष्टकं प्रवेशे न सत् न शुभं स्यात् । अन्यानि शुभानीत्यर्थात्सिद्धम् । अत्र पूर्वोक्तानां नक्षत्राणां शुभाशुभत्वं ज्ञातव्यम् ॥ २० ॥

वागीश्वरी—घर में अपूर्व तथा उत्तम नक्षत्र आदि में प्रवेश बताया जा रहा है—

प्रवेश शब्द से तीन प्रकार के अर्थ स्पष्ट होते हैं—१. प्रथम प्रवेश = अपूर्व प्रवेश, २. सपूर्व प्रवेश (कभी प्रवेश हुआ था), ३. द्वन्द्व प्रवेश = यदा कदा प्रवेश इत्यादि । भय से किसी के घर में शरण लेकर, भयमुक्ति के अनन्तर अपने घर में प्रवेश द्वन्द्व प्रवेश है। राजा के या अन्य साधारण जनता के दीर्घ यात्रा आदि से लौट कर अपने घर में आने को सपूर्व प्रवेश कहा गया है।

(१) गृह आरम्भ में कथित शुभ नक्षत्रों अर्थात् मृ चि. रे. अनु. स्वा. ह. पु. धनि. तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्रों में अपूर्व प्रवेश शुभ होता है।

(२) सपूर्वप्रवेश—स्थिर और मैत्र संज्ञक नक्षत्रों में सपूर्व प्रवेश शुभ कहा गया है।

(३) द्वन्द्व प्रवेश—श्रवण-मूल-अश्विनी सहित गृहारम्भ नक्षत्रों में द्वन्द्व प्रवेश शुभ होता है। गृहारम्भ के सभी कार्य सूर्योदयादस्त के पूर्व दिन में ही सम्पन्न होने चाहिए। दिन में उक्त शुभ मुहूर्त्त के अभाव में रात्रि में भी प्रवेश हो सकता है।

सूर्य नक्षत्र से प्रथम ५ नक्षत्र, और सूर्य नक्षत्र से १४ चौदहवें नक्षत्र से ८ नक्षत्र गृह प्रवेश योग्य नहीं होते। सूर्यनक्षत्र से ६ षष्ठ और २२ वें नक्षत्र से ६ नक्षत्र प्रवेश में शुभ कहे गये हैं। गृह प्रवेश में कथित उक्त नक्षत्रों को चक्र से भी शुभ होना चाहिए ॥२०॥

लग्ने चोपचयस्थितैरविमुखैः प्रारम्भवत्संस्थितैः
सूर्ये वामगते स्वदिग्वदनभैर्वेश्मप्रवेशः शुभः ।

रन्ध्रेषु द्विभवेभ्य आसुतगतः सूर्यो यदा स्यात्तदा
पूर्वाद्याननमालयं प्रविशतां स्याद्वामगोऽसौ क्रमात् ॥ २१ ॥

इति श्रीनारायणदैवज्ञविरचिते मुहूर्तमार्तण्डे वास्तुप्रकरणं समाप्तम् ।

मार्तण्डवल्लभा—अथ प्रवेशे लग्नशुद्धिमाह—लग्नेशः शुभः स्यात् । रविमुखैः सूर्याद्यैः प्रारम्भवत्संस्थितैः गृहारम्भार्थमुक्तं तद्वत्संस्थितैरित्यर्थः । कस्मिन्सति सूर्ये वामगते सति । पुनः कैः स्वदिग्वदनभैः यद्दिङ्मुखं गृहं तद्दिङ्मुखैः प्रवेशोदितैर्नक्षत्रैरित्यर्थः । अथ वामसूर्यलक्षणमाह—रन्ध्र इति । रन्ध्र ८ इषु ५ द्वि २ भवे ११ भ्यः लग्नादि अष्टमपञ्चमद्वितीयैकादशेभ्यः सकाशात् आसुतगतः आपञ्चमगतः सूर्यो यदा स्यात्तदापूर्वाद्याननमालयं पूर्वादिमुखं गृहं प्रविशतां मनुष्याणामसौ सूर्यः क्रमाद्वामगतः स्यात् । एतदुक्तं भवति । अष्टमात्पञ्चसु वर्तमानोऽर्कः पूर्वामुखगृहे प्रविशतां वामो भवति । पञ्चमात्पञ्चसु गतो दक्षिणामुखे गृहे प्रविशतां वामो भवतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

इतिस्वोपज्ञमुहूर्त्तमार्तण्डटीकायां मार्तण्डवल्लभायां वास्तुप्रकरणं समाप्तम् ।

वागीश्वरी—गृहस्वामी की जन्म राशि या जन्म लग्न से उपचयस्थान, ३।६।१०।११ की राशियों में जो स्थिर हो उस राशि लग्न में सूर्यादिक ग्रहों की कथित शुभ स्थानीय स्थिति सम्बन्धी शुभ लग्न में, लग्न से वाम रवि विचार करते हुये, तथा गृह के द्वार की दिशा के नक्षत्रों का, जो प्रवेश और कुम्भ चक्र से शुद्ध हैं यह सब समीचीन विचारपूर्वक नवीन घर में प्रवेश करना चाहिए ।

वाम रविविचार—पूर्व मुख के घर में लग्न से ८।९।१०।११।१२ स्थानों, दक्षिणमुख के घर में ५।६।७।८।९, पश्चिममुख घर में २।३।४।५।६ और उत्तरमुख घर में ११।१२।-१।२।३ उक्त इन स्थानों में सूर्य ग्रह की स्थिति होने से गृहप्रवेश कर्त्ता स्वामी का उस घर का निवास उत्तम, सुखद शुभद होता है अर्थात् गृह प्रवेश समय में रवि ग्रह का वाम होना ही शुभप्रद है ॥ २१ ॥

मुहूर्त्तमार्तण्ड ग्रन्थ की श्री केदारदत्त जोशी पर्वतीय कृत वागीश्वरी व्याख्या सुसम्पन्न ।

यात्राप्रकरणम्

वारे चोपचयावहस्य सुदशास्विष्टप्रयाणं जगुः
कर्णान्त्यादितिभद्विकेषु मृगमैत्रार्केषु नो जन्मभे ।
सार्पार्द्राग्नियमाजपादपितृषु त्वाष्ट्रत्रये चाशुभं
रिक्ता ४, ९, १४ पर्व १५, ३० गुहा ६ ष्टमी ८
हरि १२ सितास्येषु ज्ञशुक्रोन्मुखम् ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ यात्राप्रकरणं व्याख्यायते। तत्रादौ यस्मिन्काले यात्रा कर्तव्येत्याह—सुदशासु शोभना दशान्तर्दशाविदशोपदशासु उपचयावहस्य ग्रहस्य वारे गोचराष्टकवर्गादौ शुभफलग्रहस्य वारे प्रयाणमिष्टं शुभं जगुराचार्याः। केषु कर्णान्त्यादितिभद्विकेषु कर्णः श्रवणः अन्त्यं रेवती अदितिभं पुनर्वसुः एषां द्विकाः श्रवणधनिष्ठे रेवत्यश्विन्यौ पुनर्वसुपुष्यौ एष्वित्यर्थः। पुनः केषु मृगमैत्रार्केषु मृगः प्रसिद्धः मैत्रमनुराधा अर्को हस्तः एषु नवनक्षत्रेषु प्रयाणं शुभमित्यर्थः। तत्र विशेषमाह—नो जन्मभ इति। जन्मभे जन्मनक्षत्रे श्रवणाद्यन्यतमेऽपि यानं शुभं नो जगुः। अथ येषु अशुभं तान्याह—सार्पेति। सार्पमाश्लेषा आर्द्रा प्रसिद्धा अग्निः कृत्तिका यमो भरणी अजैकपादः पूर्वाभाद्रपदा पितरो मघा त्वाष्ट्रत्रये च एषु नवनक्षत्रेषु यानमशुभं जगुः। अन्यानि नवनक्षत्राणि मध्यमानीत्यर्थतः सिद्धम्। अथ यासु तिथिषु अशुभं तदाह—रिक्तेति। चतुर्थी नवमी चतुर्दश्यः पर्वणी पूर्णिमावास्ये गुहः षष्ठी अष्टमी प्रसिद्धा हरिर्द्वादशी सितास्यं शुक्लप्रतिपत् तेषु प्रयाणं यानमशुभं जगुः अर्थादन्यासु तिथिषु शुभम्। अन्यदुक्तमाह—ज्ञेति। ज्ञो बुधः शुक्रः प्रसिद्धः तयोरुन्मुखं संमुखयानमुक्तेष्वपि तिथिनक्षत्रादिषु यानमशुभं जगुः। बुधशुक्रसंमुखं गमनं न कर्तव्यमित्यर्थः॥ १॥

वागीश्वरी—इस प्रकरण में अभीष्ट यात्रा शुभ फलदायिनी हो बताया जा रहा है—

अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति या अभीष्ट कार्य की सफलता में मित्रादिक के सहयोग (मन्त्रणा) आदि उद्देश्य से अपने स्थान सीमा से दूर अथ राज्य, नगर-ग्राम तीर्थ आदि में गमन यात्रा कही जाती है—

यहाँ पर यात्रा करने वाले पुरुष, या महिला या सपरिवार सपरिकर के मुख्य व्यक्ति की जन्मपत्रिका (जातक कुण्डली) का विचार आवश्यक है कि यात्री (पुरुष या स्त्री या परिवार में मुख्य) की जन्म कुण्डली के अनुसार शुभाभीष्ट फल देने वाले ग्रह की दशा या अन्तर आदि के साथ (यहाँ आचार्य ने तो उल्लेख नहीं किया किन्तु यात्रा में स्वर शास्त्र ज्यो. का उपयोग अधिक सार्थक समझता हूँ) उसी शुभग्रह के दिन वारमुहूर्त्तादि में यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए।

श्रवण, धनिष्ठा, रेवती (धनि··· रेवती पञ्चक में दक्षिण की यात्रा दिशा निषेध) अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृग, अनुराधा और हस्त नक्षत्रों में किसी एक में जो यात्री के लिये शुभ होती हो—यात्रा शुभ कही गई है। जन्म नक्षत्रों में यात्रा शुभ नहीं होती। तथा आश्लेषा, आर्द्रा, कृतिका, भरणी, पूर्वाभाद्र, मघा, चित्रा, स्वाती और विषाखा--इन नक्षत्रों की यात्रा अशुभ कही गई है।

रिक्ता अर्थात् चतुर्थी-नवमी और चतुर्दशी तिथि तथा पूर्णिमा, अमा, षष्ठी, अष्टमी द्वादशी और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि भी यात्रा में त्याज्य कही गयी हैं।

बुध और शुक्र ग्रह के उदय की दिशा (पूर्व या पश्चिम) में भी सम्मुख होने से उस दिशा की यात्रा निषेध होती है। उक्त कथित तिथिवार नक्षत्रों में भी बुध-शुक्र की सम्मुख दिशा की यात्रा वर्ज्य कही गई है ॥ १ ॥

प्राक् चन्द्रासितशक्रभं वसुपरार्द्धात्पञ्चभेज्यानपाक्
पश्चात्कार्कसितानुदक्कुजबुधार्यम्णस्त्यजेच्छूलकान् ।
त्रिशाष्टौ नवभूमयोऽग्निगिरिशा विश्वेषवोऽर्काब्धयः
षट्शक्रास्तिथिपर्वता दशदृशोऽप्येतांस्तिथीनीशतः ॥ २ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ शूलानाह—**प्रागिति** । प्राक् पूर्वस्यां दिशि चन्द्रासितशक्रभं त्यजेत् चन्द्रः सोमवारः असितः शनिवारः शक्रभं ज्येष्ठा एतत्त्रयं पूर्वदिशि त्यजेदित्यर्थः । अपाक् दक्षिणस्यां वसुपरार्द्धात् धनिष्ठोत्तरार्द्धात् पञ्च नक्षत्राणि ईज्यो बृहस्पतिवारः एतान् दक्षिणस्यां त्यजेत् । पश्चात्पश्चिमायां दिशि कार्कसितान् त्यजेत् कः रोहिणी अर्को रविः सितः शुक्रः एतान्पश्चिमायां त्यजेदित्यर्थः । उदक् उत्तरस्यां दिशि कुजबुधार्यम्णस्त्यजेत् कुजो मंगलवारः बुधः प्रसिद्धः अर्यमानामोत्तराफाल्गुनी एतान् शूलकान् उत्तरस्यां त्यजेत् । शूलपदस्य प्रत्येकं सबन्धः । अथ योगिनीमाह—त्रिशाष्टाविति । एतान् प्रत्येकपदगतान् तिथीन् ईशतः ईशान्याः सकाशात् प्रदक्षिणक्रमेण एतांस्तिथीन् त्यजेत् । एते के त्रिश३० अष्टौ८ ईशान्यां, नव९ भूमयः १ प्राच्यां, अग्निः३ गिरिशाः११ आग्नेय्यां, विश्व१३ इषवः५ दक्षिणस्याम्, अर्क१२ अब्धयः४ नैर्ऋत्यां, षट्६ शक्राः१४ पश्चिमायां, तिथि१५ पर्वताः७ वायव्यां, दश१० दृशः२ उत्तरस्यां, अत्राङ्कन्यास एव व्याख्यानम् ॥ २ ॥

वागीश्वरी—तिथि-वार-नक्षत्र शूल—

पूर्व दिशा की यात्रा में सोम, शनिवार और ज्येष्ठा नक्षत्र, दक्षिण में गुरुवार और धनिष्ठा तथा धनिष्ठा के उत्तरार्ध (कुम्भचन्द्र) से रेवती तक (पञ्चक नक्षत्रों), पश्चिम में रवि, शुक्रवार रोहिणी नक्षत्र, और उत्तर दिशा की यात्रा में वारों में मंगल, बुध और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, ये दिशा शूल कहे जाने से उक्त दिशाओं में दिक्शूल दोष होने से इन बार नक्षत्रों में यात्रा निषेध है।

ईशान कोण से प्रदक्षिणा क्रम से, ईशान कोण में अमा अष्टमी, पूर्व में प्रतिपद नवमी, अग्नि में तृतीया एकादशी, दक्षिण में त्रयोदशी पञ्चमी, नैर्ऋत्य में द्वादशी चतुर्थी, पश्चिम में षष्ठी चतुर्दशी, वायु में पूर्णिमा सप्तमी और उत्तर में दशमी द्वितीया तिथियाँ यात्रा में शूल दोष होने से उक्त दिशाओं की यात्रा वर्ज्य कही गई है ॥ २ ॥

ऐन्द्रयाद्यग्निभसप्तसप्तभगणो वाय्वग्निकाष्ठास्थितो
नोल्लङ्घ्यः परिघस्त्वपाक् वरुणभैः प्राच्यैरुदङ् नो व्रजेत् ।

सर्वाशासु रवीज्यमित्रतुरगैर्यायादथावश्यके
हित्वा शूलमनिष्टभैर्यदि निजाशेष्टाङ्गलब्धिर्व्रजेत् ॥ ३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथान्यन्निन्द्यमाह—**ऐन्द्रयेति** । ऐन्द्र्यादिषु दिक्षु अग्निभात् कृत्तिकायाः सकाशात् सप्त सप्तभगणो भवेत् । एतदुक्तं भवति सप्तशलाकाचक्रं निष्पाद्य पूर्वगतासु सप्तसु रेखासु ईशानतः कृत्तिकादीनि सप्त नक्षत्राणि न्यसेत् । तत्पुरःस्थानि सप्त दक्षिणगतरेखासु न्यसेत् एवं पश्चिमोत्तररेखासु क्रमेण न्यसेत् । ततो वायव्याग्नेयदिग्गतां रेखां कुर्यात् अस्या रेखायाः परिघ इति संज्ञा । एवं निष्पादिते चक्रे प्रयोजनमाह—वाय्वग्निकाष्ठास्थित इति । वायुः प्रसिद्धः अग्निः प्रसिद्धः अनयोः काष्ठे दिशौ वायव्याग्नेय्यौ तत्र स्थितः परिघः नोल्लङ्घ्यः । अथान्यत्प्रयोजनमाह—अपागिति । अपाग् दक्षिणस्यां वरुणभैः प्रतीच्यैर्नक्षत्रैर्न व्रजेत् । प्राच्यैर्नक्षत्रैः उदक् उत्तरस्यां दिशि न व्रजेत् न गच्छेत् तत्तद्दिक्स्थापितनक्षत्रैस्तत्तद्दिग्गमनं सिद्धमेव । सर्वासु सर्वदिक्षु रवीज्यमित्रतुरगैर्यायात् रविर्हस्तः ईज्यः पुष्यः मित्रमनुराधा तुरगोऽश्विनी एभिर्नक्षत्रैः सर्वासु दिक्षु गमनं शुभमित्यर्थः । अथावश्यके कृत्ये अस्यापवादमाह—अथावश्यकेति । आवश्यके कृत्ये सति निन्द्यैः अनिष्टभैः यद्दिक्षु यानि निन्द्यानि तैः पूर्वोक्तैर्नक्षत्रैस्तस्यां दिशि तदा व्रजेत् तदा कदा यदा निजाशेष्टाङ्गलब्धिर्भवेत् निजाशायां निजगमनदिशायामिष्टाङ्गलब्धिः इष्टलग्नलाभः स्यात् । इष्टलग्नं वक्ष्यमाणलक्षणम् तद्यथोक्तगुणसंपन्नं यदा स्यात्तदा गच्छेदित्यर्थः । नोचेन्नेत्यर्थात्सिद्धम् । किं कृत्वा शूलभं हित्वा पूर्वोक्तशूलनक्षत्रं त्यक्त्वा शूलनक्षत्रे सति निजाशेष्टाङ्गलब्धावपि न गच्छेदित्यर्थः ॥ ३ ॥

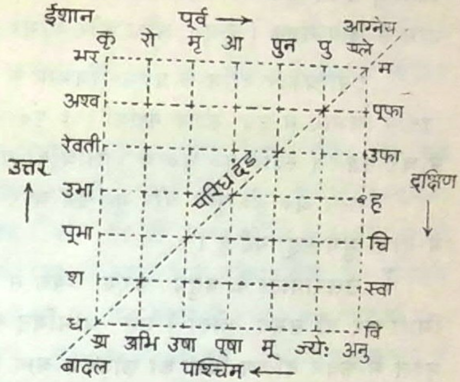
वागीश्वरी--यात्रा चतुर्दिक गमन में शुभ नक्षत्र—

अभिजित् सहित २७+१ = २८ नक्षत्रों को ४ चारों दिशाओं में प्रत्येक दिशा में २८÷४=७, ७ नक्षत्र होते हैं। नीचे के चक्र से जो स्पष्ट भी हो रहा है कि ईशान कोण से पूर्व तक कृतिकादि श्लेषा तक, आग्नेय से नैऋत्य तक मघा से विशाखा तक, दक्षिण से नैऋत्य तक अनुराधा से श्रवण तक, नैऋत्य से वायु तक और धनिष्ठा से भरणी तक, वायु से ईशान तक स्थापित करने से इन इन दिशाओं के उक्त नक्षत्र कहे गये हैं।

वायु दिशा से अग्नि दिशा तक लगे हुये सूत्र का नाम परिघ दण्ड कहा जाता है। अर्थात् इस परिघ दण्ड के दोनों तरफ १४, १४ नक्षत्र होते हैं चक्र देखने से स्पष्ट होता है—

अतः पूर्व और उत्तर दिशा के नक्षत्रों में पश्चिम और दक्षिण एवं दक्षिण और पश्चिम के नक्षत्रों में उत्तर और पूर्व दिशा की यात्रा नहीं होनी चाहिए। अतः अपनी दिशा के नक्षत्रों में अपनी ही दिशा यात्रा शुभ होती है। हस्त, अनुराधा, पुष्य और अश्विनी इन चारों नक्षत्रों को दिग्द्वार (दिशा के दरवाजे) नक्षत्र कहा जाने से इन नक्षत्रों में चारों दिशाओं की यात्रा शुभ कही गई है।

यदि यात्रा आवश्यक हो जाती है और दिग्द्वार नक्षत्र की प्राप्ति नहीं हो रही है, यात्रा की गन्तव्य दिशा की यात्रा का शुभ फलद लग्न की उपलब्धि से दिग्विरुद्ध नक्षत्रों में भी आवश्यकता वश यात्रा की जा सकती है ऐसे लग्न बल की यात्रा से परिध दोष का परिहार भी हो जाता है किन्तु आवश्यकता पर भी दिक्शूल का परिहार नहीं होता, यात्रा में सर्वत्र लग्न बल समीचीन शुभ होना ही सभी दोषों के परिहार में सामर्थ्य समझा जाता है ॥ ३ ॥



मिश्राख्यैर्ध्रुवभैर्दिनादिमलवे तीक्ष्णैर्द्वितीयेऽन्तिमे
क्षिप्रैर्न क्रमशो मृदूग्रचरभै रात्रित्रिभागेष्वियात् ।
श्रुत्यर्केज्यमृगेष्वयं न नियमो वैश्वान्त्यपादश्रव-
स्तिथ्यंशस्त्वभिजिद्गमे सफलदो यामीं विनापि क्षणः ॥ ४ ॥

मार्त्तण्डवल्लभा—अथान्यदाह—**मिश्राख्यैरिति** । दिनादिमलवे त्रिधा भक्तस्य दिनस्याद्येशं मिश्राख्यैः साधारणैर्नक्षत्रैः ध्रुवभैश्च न इयात् न गच्छेत् । द्वितीयभागे तीक्ष्णैः अन्तिमे तृतीयभागे क्षिप्रैर्नक्षत्रैर्नयात् । अथ रात्रित्रिभागेषु क्रमशो मृदूग्रचर-भैर्नयात् । अथ विशेषमाह—श्रुतीति । श्रुत्यर्केज्यमृगेषु अयं नियमो न । श्रुतिः श्रवणः अर्को हस्तः ईज्यः पुष्यः मृगः प्रसिद्धः एभिनक्षत्रैः सर्वभागेषु गन्तव्यमिति भावः । अथाभिजिल्लक्षणं तत्फलं चाह—वैश्वेति । वैश्वमुत्तराषाढा तस्यान्त्यपादश्चतुर्थचरणः श्रवणस्य आद्यस्तिथ्यंशः प्रथमः पञ्चदशांशः एतत्प्रमाणोऽभिजित्स्यात् सोभिजिद्यामीं दक्षिणां दिशं विना सर्वदिक्षु फलदः क्षणो मुहूर्तोऽपि अभिजिद्यामीं विना फलदः यातृणामभीष्टफलदो भवतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

वागीश्वरी—दिन और रात्रि मान की घटिकाओं में ३ से भाग देकर दिन और रात्रि के त्रिभाग प्रमाण का ज्ञान करना चाहिए । जैसे दिन प्रमाण यदि ३३।० घटी तो रात्रि प्रमाण २७ घटी होता है । दिनमान का तृतीयांश ३३ ÷ ३ = ११, घटी होता है । अतः सूर्योदय से ११ घटी तक दिन का प्रथम त्रिभाग, १२ घटी से २२ घटी तक दिन का द्वितीय भाग एवं २३ घटी से ३३ घटी इष्टकाल तक दिन का तृतीय भाग होता है इसी प्रकार रात्रि के भी त्रिभाग काल का ज्ञान करना चाहिए । तदुपरि दिन के प्रथम त्रिभाग में मिश्र और ध्रुव संज्ञक (वि० कृ० तीनों उ० रो०) नक्षत्रों में, (२) द्वितीय त्रिभाग में

मध्याह्न समय में तीक्ष्ण संज्ञक मू० ज्ये० आर्द्रा, आश्ले० नक्षत्रों में तथा (३) दिन के तृतीय भाग में क्षिप्र संज्ञक (ह-पु० अश्वि और अभि०) नक्षत्रों में यात्रा नहीं करनी चाहिए।

इसी प्रकार रात्रि के प्रथम त्रिभाग में (१) मृदु संज्ञक (मृ० रे० चि० अनु०) द्वितीय त्रिभाग में उग्र संज्ञक नक्षत्रों (३ पू० भ० म०) (३) रात्रि एवं द्वितीय भाग में चर संज्ञक (स्वा० पु० ध० श) रात्रि की यात्रा शुभ नहीं होती है।

तथा श्र० ह० पुष्य और मृग इन चार नक्षत्रों में दिन और रात्रि के सभी त्रिभागों में यात्रा शुभ कही गई है।

उत्तराषाढ़ा के चतुर्थ चरण प्रवेश से और श्रवण नक्षत्र का प्रथम १५वाँ भाग मिला कर जो समय होता है उसे अभिजित् काल कहते हैं, इस समय में और अभिजित मुहूर्त्त में केवल दक्षिण दिशा को छोड़कर अन्य दिशाओं की यात्रा शुभ कही गई है ॥ ४ ॥

एकार्केन्द्वयनानुकूलमनिशं भेदे दिवारात्रयो-
र्भौमे प्राक्छनिचन्द्रयोर्गतमपाक्पश्चाज्ज्ञगुर्वोर्हितम् ।
भृग्वर्कोह्न्युदगर्कभाद्युभमगैस्तष्टं द्विसप्ताडल-
स्त्र्यङ्गाभ्यां विडलोऽनयोर्न गमनं श्रीदेवलोक्त्या हितम् ॥ ५ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथान्यदाह—एकार्केन्द्वयनानुकूलमिति। अर्कश्च इन्दुश्च तयोरयनमर्केन्द्वयनम् एकं च तदर्केन्द्वयनं च तत्तथा तस्यानुकूलं गतं गमनमनिशमहर्निशं हितं स्यात्। भेदे सति दिवारात्रयोः क्रमेण शस्तं स्यात्। अयमर्थः। सूर्यो दिनस्वामी चन्द्रो रात्रिस्वामी द्वौ चेदुत्तरायणे स्यातां तदाऽहर्निशमुदग्गमनं शस्तं द्वौ चेद्दक्षिणायने भवतस्तदा अहर्निशं दक्षिणगमनं शस्तं रात्रौ चन्द्रायनदिशं प्रति गमनं शस्तं स्यात्। अर्थात् अन्यथा न शस्तं स्यात्। अत्र प्राची उत्तरसंबन्धिनी ज्ञेया तस्माद्यदा उदग्गमनं शस्तं तदा प्राग्गमनमपि शस्तं भवति। प्रतीची दक्षिणसंबन्धिनी ज्ञेया तेन यदा दक्षिणदिग्गमनं शस्तं तदा प्रतीचीगमनमपि शस्तं स्यात्। तथा च रत्नकोशे "दिनकरकरप्रतप्तां मकरादावुत्तरां च पूर्वां च। यायाच्च कर्कटादौ याम्याशास्यं प्रतीचीं च"॥ अथान्यदाह—भौमे इति। भौमे प्राक् पूर्वादिशि गतं गमनं हितं स्यात् शनिचन्द्रयोरपाक् दक्षिणस्यां ज्ञगुर्वोः बुधगुर्वोः पश्चात्पश्चिमायां भृग्वर्कोह्नि शुक्ररविदिने उदगुत्तरस्यां गतं हितं स्यात्। अथाडलं विडलं चाह—अर्कभादिति। सूर्यनक्षत्रात् द्युभं दिननक्षत्रं अगैः सप्तभिस्तष्टं शेषितं सत् द्विसप्त द्वौ वा सप्त वा यदा भवन्ति तदाडलः स्यात्। त्र्यङ्गाभ्यां त्रिषट्संख्यकाभ्यां विडलः स्यात्। अनयोरडलविडलयोर्गमनं श्रीदेवलोक्त्या देवलर्षिवचनेन हितं स्यात् ॥ ५ ॥

वागीश्वरी—सूर्य-चन्द्र दोनों के एक ही अयन या उत्तर-दक्षिण अयन गमन में यात्रा विचार—

यदि सूर्य-चन्द्रमा दोनों का एक ही अयन हो तो उस अयन सम्बन्धिनी दिशा की यात्रा दिन और रात्रि दोनों समयों में हो सकती है। फलतः दोनों उत्तरायण में हो तो दिन और रात्रि दोनों समयों में उत्तरदिग्यात्रा शुभ, एवं दक्षिणायन में हो तो दक्षिण दिग्गमन दिन रात्रि दोनों में शुभ है।

दोनों सूर्य चन्द्रमा भिन्न अयन हों तो सूर्य की अयन दिशा दिन में और चन्द्रायन दिशा की यात्रा रात्रि में शुभ होती है। शंका होती है दिशा तो चार १–पूर्व २–दक्षिण ३–पश्चिम और ४–उत्तर हैं तो पूर्व पश्चिम दिशा की भी यात्रा होती है—वह कब की जाय ? इस शङ्का के निराकरण के लिये, पूर्व दिशा को उत्तर और दक्षिण दिशा को पश्चिम दिशा मान कर अयन सम्बन्धी यात्रा विचार का समन्वय होता है। वार क्रम से यात्रा—पूर्व दिशा में मंगलवार, शनि सोम को दक्षिण, बुध-गुरु को पश्चिम और रवि-शुक्रवार के दिनों में उत्तर दिशा की यात्रा शुभावह कही गई है। एतदतिरिक्त वारों में उक्त उन-उन दिशाओं की यात्रा में दिक्शूल काल पाशादिका भय होता है।

सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक की संख्या में ७ से भाग देने से यदि २ या शून्य शेष हो तो आडल योग तथा ३ या ६ शेष हो तो विडल योग होता है। श्री देवलाचार्य के मत से यात्रा में उक्त दोनों योग शुभ फलद कहे गये हैं ॥ ५ ॥

आज्यं दुग्धगुडौ तिलान्दधियवान्माषानिनात्प्राश्य नो
शूले यानमनिष्टमिन्द्रककुभोऽथाज्यं तिलान्नं तिमीन् ।
दुग्धं प्राश्य च हस्त्यनोहयनरैर्यानं सुयानं तयो-
र्ध्यानाद्वा भवति ब्रुवेऽथ हरिजं तिथ्यादि लक्षाधिकम् ॥ ६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वारशूलदोहदमाह—सुगमम्। इनात्सूर्यवारात्सकाशात् आज्यादीनि प्राश्य प्राशयित्वा शूले वारशूले यानं प्रयाणमनर्थकृन्नो भवति। अथ दिग्दोहदमाह—आज्यमिति। घृतादिकं प्राश्य ऐन्द्र्यादिषु पूर्वादिषु हस्त्यादिभिर्यानं सुयानं भवति। हस्ती प्रसिद्धः अनः शकटः हयो अश्वः नरः शिबिकावाहकः। एतदुक्तं भवति घृतं प्राश्य हस्तिना प्राग्गमनात्सिद्धिः, तिलान्नं तिलौदनं प्राश्य रथेन दक्षिण-गमनात्सिद्धिः, मत्स्यान्प्राश्य अश्वेन पश्चिमगमनात्सिद्धिः, दुग्धं प्राश्य नरैरुदग्गमना-त्सिद्धिः स्यादित्यर्थः। असति संभवे अभक्ष्ये च निर्णयमाह—तयोर्भक्षवाहनयोर्ध्यानाद्वा यानं सुयानं भवति। अथ लग्नशुद्धि सहेतुकामाह—ब्रुवेऽथ हरिजमिति। अथ हरिजं लग्नं ब्रुवे वच्मि। कथंभूतं तिथ्यादिलक्षाधिकं तिथ्यादिभ्यो लक्षाधिकं बलिष्ठ-मित्यर्थः ॥ ६ ।

वागीश्वरी—दिक्शूल दोहद बताये जाते हैं—

दोहद का अर्थ शुभ फल प्राप्ति से है यहां पर यात्रा में क्वचित्-मुहूर्त्त त्रुटि हो तो दोहद···से निराकरण हो जाता है कि रविवार के दिन घी, सोम को दूध, मंगल में

गुड़, बुध में तिल, गुरु के दिन दही, शुक्रवार के दिन जौ, और शनिवार के दिन उरद (माष दाल) का भोजन कर वार शूल में भी यात्रा करने से हानि नहीं होती है।

इसी प्रकार घी खाकर और हाथी पर सवार होकर जाने से पूर्व में, तिल और अन्न भक्षण कर सवारी से जाने में दक्षिण में, मछली खाकर घोड़े पर या घोड़ा गाड़ी पर जाने से पश्चिम में, नरयान (पालकी) में दूध पीकर उत्तर दिशा में जाने से यात्रा शुभ होती है। भक्ष भोज्य और वाहन के अभाव में उन पदार्थों और सवारियों का ध्यानादि स्मरण करने से यात्रा शुभ होती है।

यह सब के काठिन्य पर लक्षगुणित उत्तम शुभ फलद लग्न का बल तिथिवार नक्षत्रों के दौर्बल्य का दोष दूर करता है। अतः एव लग्न बल पर ही विशेष ध्यान देना चाहिए ॥ ६ ॥

स्वर्क्षानर्द्धिघटास्तभानृजुगृहान्षष्ठं रिपोर्भादनु
स्वर्क्षांगेशरिपुं खलं जनिबलत्यक्तं तथा सांप्रतम् ।
यात्रालग्नगतं त्यजेदथ दिशामीशोऽर्कशुक्रौ कुजो
राहुर्मन्दशशाङ्कसौम्यगुरवः केन्द्रे दिगीशे व्रजेत् ॥ ७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—स्वर्क्षे स्वर्क्षानर्द्धिघटादिकं यात्रालग्नगतं त्यजेत् स्वर्क्षं स्वराशिः अनर्द्धिः स्वराशेरनुपचयभवनं घटः कुम्भः अस्तभमस्तगतग्रहस्य राशिः अनृजुगृहं वक्रग्रहस्य राशिः एतान् रिपोर्भात् वैरिराशेः षष्ठं अनुपृष्ठोदयम्। तथा च बृहज्जातके "गोजाश्विकर्किमिथुनाः समृगा निशाख्याः पृष्ठोदया विमिथुनाः कथितास्त एव" इति। वृषमेषधनकर्कमकराः पृष्ठोदयाः। स्वर्क्षांगेशरिपुमृक्षं च अङ्गमृक्षांगे- तयोरीशः स्वामी तस्य रिपुः तं खलः प्रसिद्धः निजबलत्यक्तं जन्मनि बलहीनं ग्रहं तथा सांप्रतं प्रस्तुतं बलत्यक्तमित्युक्तं सर्वं यात्रालग्नगतं त्यजेत्। अथ दिक्पतीनाह— दिशामिति। दिशां पूर्वादीनामीशाः स्वामिनः अर्कशुक्रादयः पाठक्रमात्स्युः। केन्द्रे दिगीशे १, ४, ७, १० सति व्रजेद्गच्छेत्। यस्मिन्केन्द्रे लालाटगत्वं भवति। तत्केन्द्रं वर्जयित्वा अन्यकेन्द्रे दिगीशे सति व्रजेत्। इदमग्रिमश्लोके वक्ष्यति ॥ ७ ॥

वागीश्वरी—यात्रा लग्न से त्याज्य ग्रहस्थिति बताई जा रही है—

अपनी जन्म राशि से अनुपचय राशि, अस्त और वक्री ग्रह की राशियाँ अपनी जन्मराशि से अपने शत्रु की छठी राशि तथा पृष्ठोदय राशियाँ, अपने राशीश और लग्न स्वामी के शत्रु ग्रह, पाप ग्रह, जन्म और यात्रा कालिक निर्बल ग्रह इत्यादि यात्रा लग्न में यात्रा त्याज्य होती हैं। उक्त तिथि के लग्न में यात्रा निषेध कहा गया है। सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्र, बुध और गुरु ये ग्रह क्रमशः पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायु, उत्तर और ईशान दिशा के स्वामी होते हैं। जिस दिशा की यात्रा करनी है उस दिशा का अधिपति जो ग्रह, वह यदि यात्रा लग्न से केन्द्रस्थित हो तो ऐसे लग्न की यात्रा शुभ कही

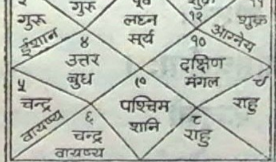
गई है। तथापि पूर्व में कथित ललाटी योग के केन्द्र को छोड़ कर अन्य केन्द्रों में किसी एक में अभीष्ट दिग्यात्रा का दिगीश ग्रह को केन्द्र में होना चाहिए ॥ ७ ॥

दिक्पे न प्रवसेल्ललाटग इनः प्राच्यं तनौ भालगः
स्यात्पश्चान्मदनेऽर्कजोऽम्बुगबुधः सौम्यां खगोऽपाक्कुजः।
ऐश्यां द्वित्रगतो गुरुर्ज्वलनदिश्यायव्ययस्थो भृगु-
र्वायौ षट्सुतगो विधुर्निर्ऋतिदिश्यष्टाङ्कसंस्थं तमः ॥ ८ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ दिक्पतो लालाटगत्वं तद्दिग्गमननिषेधं लालाटक्षणं चाह—दिक्पे लालाटगे सति न प्रवसेत् प्रवासं न कुर्यात्। तनौ लग्ने वर्तमान इनः सूर्यः प्राक् प्राच्यां दिशि भालगः ललाटस्थितः स्यात्। मदने सप्तमे वर्तमानोऽर्कजः शनिः पश्चिमायां ललाटस्थितः स्यात्। अम्बुगबुधः चतुर्थगतो बुधः सौम्यामुत्तरस्यां ललाटस्थितः स्यात्। खं दशमं तद्गतः कुजो भौमः अपाक् दक्षिणस्यां ललाटस्थितः स्यात्। द्वित्रिगतो गुरुः ऐश्यामोशान्यां ललाटस्थितः स्यात्। आयव्ययस्थः भृगुः कविः ज्वलनदिशि आग्नेय्यां ललाटगः स्यात्। षट्सुतगो विधुश्चन्द्रः वायौ वायव्यां ललाटस्थितः स्यात्। अष्टाङ्कसंस्थं तमः अष्टमनवमस्थानस्थो राहुः निर्ऋतिदिशि ललाटसंस्थः स्यादिति ॥ ८ ॥

वागीश्वरी—ललाट योग और ललाट योग सम्बन्धेन यात्रा निषेध बताया जा रहा है—

स्पष्ट समझने के लिये चक्र देखें



अभीष्ट दिशा की यात्रा के समय दिशा के स्वामी की ललाट योग की स्थिति में यात्रा नहीं करनी चाहिए। पूर्व की यात्रा में, लग्नगत सूर्य, सप्तमस्थ शनि से पश्चिम में, चतुर्थ बुध से उत्तर में, दशम मंगल से दक्षिण में, वृहस्पति द्वितीय या तृतीयस्थ से ईशान में, एकादश द्वादशस्थ शुक्र से अग्नि कोण में, पञ्चम षष्ठस्थ चन्द्रमा से वायव्य में और अष्टम नवम राहु से गत ललाट योग अर्थात् दिशा के स्वामी ग्रह यात्रा लग्न में यदि उसी दिशा में स्थित हो तो ललाट योग होता है ॥ ८ ॥

वक्री केन्द्रगतस्तदीयदिवसो लग्नेऽस्य वर्गो भवे-
द्यातुर्नाशकरः शुभोऽपि तनुगो जन्मर्क्षलग्नेड्रिपुः।
द्वीशाग्न्यम्बुजभाग्यभानि गुरुभं पौष्णान्तके सार्पभं
जन्मर्क्षाणि रवेरुपप्लवहतं खेटस्तनौ हानिकृत् ॥ ९ ॥

मार्तण्डवल्लभा—वक्रीति। वक्री ग्रहः केन्द्रगतः सन् यातुर्गमनकर्तुर्नाशकरः स्यात्। तदीयदिवसोऽपि वक्रग्रहस्य दिवसोऽपि यातुर्नाशकरः स्यात्। लग्नस्य वर्गोऽपि नाशकरः स्यात्। जन्मर्क्षलग्नेड्रिपुः शुभोऽपि तनुगो यातुर्नाशकरः स्यात्। जन्मराशि-जन्मलग्ने तयोः ईशौ तयोः रिपुः। अथ सूर्यादीनां जन्मनक्षत्रमाह—द्वीशेति। रवेः अर्कतः ग्रहाणां द्वीशादीनि जन्मर्क्षाणि जन्मनक्षत्राणि स्युः। द्वीशं विशाखा सूर्यस्य अग्निः कृत्तिका चन्द्रस्य अम्बु पूर्वाषाढा भौमस्य अजः श्रवणो बुधस्य भाग्यभं पूर्वा-फाल्गुनी गुरोः गुरुः पुष्यः शुक्रस्य पौष्णं रेवती शनेः याम्यं भरणी राहोः सार्पमाश्लेषा केतोः। उपप्लव इति। उपप्लवगतो नाम यदीयभं यस्य ग्रहस्य भं जन्मनक्षत्रं हतं त्रिविधोत्पातहतं स्यात्। असौ ग्रहो लग्ने स्थितो हानिकृत्स्यात्॥ ९॥

वागीश्वरी—वक्री ग्रह सम्बन्धी यात्रा अनिष्ट फलद होती है—

यात्रा समय में कोई भी वक्रगत ग्रह यात्रा लग्न के यदि केन्द्र में १।४।७।१० हो तथा वक्री ग्रह के दिन (वार) की यात्रा, तथा लग्नगत वक्री ग्रह का षड्वर्गादि में कोई वर्ग हो तो ऐसे समय की यात्रा अनिष्ट फलद कही गई है।

तथा यात्रा समय में कोई भी शुभ ग्रह यदि जन्मराशीश, और जन्म लग्नेश का शत्रु हो ऐसा ग्रह लग्न में हो तो भी यात्रा अशुभ होती है।

विषाखा नक्षत्रस्थ सूर्य, कृतिकागत चन्द्र, पूर्वाषाढ़ा में मंगल, श्रवण में बुध, पूर्वा फाल्गुनी का गुरु, शुक्र का पुष्य, शनि की रेवती, राहु की भरणी, और केतु का जन्म नक्षत्र श्लेषा बताया गया है। अतः जिस ग्रह का जन्म नक्षत्र यात्रा दिवस नक्षत्र हो उस नक्षत्र में यदि वह दिव्य, भौम, या अन्तरिक्ष (वाराही संहिता देखिये) आदि में किसी भी उत्पात से युक्त होता है और वही ग्रह यात्रा लग्न में बैठा होने से यात्री की यात्रा में हानि होती है। ऐसे अशुभ समय की यात्रा त्याज्य है॥ ९॥

वेशिः सौम्ययुतस्तनौ जनुषि ये सद्भिर्युता राशयो
जन्माब्जोपचयस्थिता अपि तनोः स्वर्क्षोच्चमित्रर्क्षगाः।
पापा अप्यतिशोभनास्तनुगता जन्मेश्वरौ केन्द्रगौ
स्वारात्यह्नि तनौ शुभो न फलदो मित्राह्नि पापोऽर्थदः॥ १०॥

मार्तण्डवल्लभा—वेशिरिति। सूर्याद् द्वितीयो राशिर्वेशिः स सौम्ययुतः सन् अङ्गगो लग्नगोऽतिशोभनः स्यात्। जनुषि जन्मकाले सद्भिर्ग्रहैर्युता ये राशयः तनुगताः अतिशोभनाः स्युः। जन्माब्जोपचयस्थिताः जन्माब्जो जन्मचन्द्रः तस्मादुपचयानि त्रिषडेकादशतमानि तेषु स्थिता ग्रहास्ते तनु गता अतिशोभनाः तनोरपि जन्मलग्ना-दप्युपचयस्थलग्नगता अतिशोभनाः स्युः। स्वर्क्षोच्चमित्रर्क्षगाः जन्मनि ये स्वर्क्षगाः उच्चगाः मित्रर्क्षगास्ते अपि शोभनाः स्युः। जन्मेश्वरौ जन्मराशिजन्मलग्नस्वामिनौ केन्द्रगौ अतिशोभनौ स्याताम्। स्वारात्यह्नि स्ववैरिवारे शुभः शुभग्रहः तनौ लग्ने

वर्तमानो न फलदो भवति। मित्राह्नि पापः तनौ वर्तमानोऽर्थदः स्यात्। तथा च यवनः "रक्षका वर्द्धकाश्चैव ये स्युर्जन्मनि नायकाः। तान्पापानपि निःशङ्को यात्रालग्ने नियोजयेत्।" इत्यादि ॥ १० ॥

वागीश्वरी—जन्मकुण्डली में या यात्रा लग्न में सूर्य ग्रह से दूसरे स्थान का नाम वेशि स्थान कहा गया है जो यात्रा लग्न ही वेशि स्थानस्थ राशि हो तो यात्रा शुभ कही गई है।

जन्म कुण्डली में जो राशि शुभग्रहों से युक्त हो, तथा जन्मराशि जन्म लग्न से उपचयस्थ (३।६।१०।११) राशियों में कोई भी यात्रा लग्न हो, तो यात्रा अभीष्ट शुभ फलदा होती है।

अपनी राशि या अपनी उच्चराशि गत पाप ग्रह भी यात्रा समय शुभफलद होता है।

जन्म राशीश एवं जन्म लग्नेश भी यदि यात्रा लग्न से केन्द्रस्थ होने पर भी यात्रा शुभ होती है।

शुभ ग्रह के वार (दिन) में शुभ ग्रह यदि लग्न गत हो तो अशुभ फलद एवं पाप ग्रह भी यदि अपने मित्रग्रह के वार में लग्न गत हो तो यात्रा शुभ होती है ॥ १० ॥

त्र्यायार्यन्यगताः खलाः ख इनजोऽब्जोन्त्याद्यषण्ठाष्टगो
भूयः सोपचितोऽस्तखाम्बुसुतगः शुक्रोऽस्त ईज्यो मृतौ।
नष्टज्ञो व्ययगो ग्रहान्वितशशो यातुर्महाविघ्नदा
अन्यस्थानगता जयार्थसुखदास्त्याज्यं पुरोक्तं न चेत् ॥ ११ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ यात्रालग्ने इष्टाननिष्टांश्च श्लोकेनैकेनाह—त्र्यायार्यन्यगताः खलाः त्रि ३ आय ११ अरिभ्यः ६ अन्यानि १, २, ४, ५, ७, ८, ९, १०, १२ तत्र गताः खलाः पापग्रहाः खे दशमे इनजः शनिः। त्र्यायार्यन्यगताः खला इत्यनेनैव सिद्धेऽपि विशेषदुष्टफलज्ञापनार्थं ख इनज इत्युक्तम्। अन्त्य १२ आद्य १ षष्ठ ६ अष्ट ८ गोऽब्जश्चन्द्रः भूयः पुनः स चन्द्रः अपचितः क्षीणचन्द्रः कृष्णपक्षचन्द्रः अस्त ७ ख १० अम्बु २ सुत ५ गः अस्त ७ शुक्रः ईज्यो गुरुर्मृतौ ८ नष्टज्ञोऽस्तमितबुधो व्यय १२ गतः ग्रहान्वितः शशी येन केनापि ग्रहेण ग्रहाभ्यामपि ग्रहैर्वा युक्तश्चन्द्रमाः एते प्रत्येकं यातुर्महाविघ्नदाः स्युः। नानाप्रकारेण मरणभङ्गादीन् ददतीत्यर्थः। अन्यस्थानगताः उक्तेभ्योऽन्यस्थानगताः सन्तस्तदा जयार्थसुखदाः। तदा कदा चेद्यदि पुरोक्तं त्याज्यं न स्यात् ॥ ११ ॥

वागीश्वरी—ग्रहों की शुभाशुभ स्थिति बताई जा रही है—

यात्रा लग्न से १।२।४।५।७।८।९।१० और १२ स्थानों में पापग्रह हो, दशम शनि (विशेष अनिष्टप्रद) १२।१।६।८ स्थान गत चन्द्र यदि क्षीण भी हो, शुक्र ७।१०।४।५

स्थानों में, सप्तम में बृहस्पति, अष्टमगत अस्त बुध हो, किसी भी ग्रह के साथ दशमस्थ चन्द्रमा से यात्रा करने वाले यात्री के लिये विशेष कष्टप्रद कहे गये हैं।

उक्त अनिष्ट-अशुभ स्थानों से रहित उक्त ग्रह, उन उक्त स्थानों में यदि त्याज्य नहीं हैं तो ऐसी ग्रह स्थिति की यात्रा जयदा, अर्थलाभप्रदा के साथ सुखप्रद भी होती है ॥ ११ ॥

स्वग्रामैकपुरात्मसद्मसु चतुर्वक्त्रे चतुःशालके
तूद्वाहेषु वधूप्रवेशनृपभीदुर्भिक्षपीडासु च।
तीर्थस्वामिनिदेशयोर्भृगुवसिष्ठात्र्यङ्गिरःकाश्यपे
भारद्वाजजवात्स्ययोर्हितकरं यानं सितज्ञोन्मुखम् ॥ १२ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ प्रतिबुधशुक्रापवादमाह—**स्वग्रामेति**। स्वग्रामः प्रसिद्धः एकपुरं प्रसिद्धम् आत्मसद्म आत्मगृहं चतुर्मुखे चतुर्वक्त्रे चतुःशालकं प्रसिद्धम् उद्वाहाः विवाहाः ब्राह्मादयः विवाहाः तेषु वधूप्रवेशः नृपभी राजभयं दुर्भिक्षपीडाः प्रसिद्धाः तासु तीर्थस्वामिनि देशयोः तीर्थं तीर्थगमनं स्वामिनिदेशः स्वाम्याज्ञा तयोः भृगु-वसिष्ठात्र्यङ्गिरःकाश्यपे भृग्वादिगोत्रसमूहे भारद्वाजजवात्स्ययोर्गोत्रयोः एषूक्तेषु सितज्ञोन्मुखं शुक्रबुधसंमुखं यान गमनं हितं स्यात्। अत्र वधूप्रवेशे प्रतिशुक्रदोषो नोक्तः तत्तु भर्त्रा सहगमनविषयम्। भर्त्रा विना गमने दोषो दृश्यते नवोढायास्तु वन्ध्यात्व-मिति। तथा च भीमपराक्रमे "स्वामिना नीयमानायां प्रतिशुक्रो न विद्यते" इति। तथा च मतान्तरे "नवोढायास्तु वन्ध्यात्वं यदुक्तं संमुखे भृगौ। तदत्र विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागमे।" इति। तथा च लल्लः 'स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विग्रहे तथोद्वाहे। नववध्वा गृहगमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति।" इति। तथा च मत्स्यपुराणे "चतुः शालचतुर्द्वारमलिन्दैः सर्वतो युतम्। नाम्ना तत्सर्वतोभद्रं न तत्र प्रतिशुक्रता।" इति। तथा च वसिष्ठः "काश्यपेषु वसिष्ठेषु भृग्वत्र्यांगिरसेषु च। भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रो न विद्यते।" इति ॥ १२ ॥

वागीश्वरी—यात्रा में सम्मुख बुध शुक्र का परिहार—

किसी स्थानान्तर से स्वग्रामनगर में प्रवेश करते समय प्रयोजन वश एक ही ग्राम में स्थानान्तर गमन करने से अपने आवास (घर) में आने में, विशाल चतुर्मुख चतुर्द्वार अन्य घर जाने में, ब्राह्म विवाह में, कन्या के घर में आने में, नूतन वधू प्रवेश में, राजभय अर्थात् राजा से दण्ड मिलने के भय की सम्भावना, दुर्भिक्षादि पीडा आदि से स्थानान्तर गमन समय में, तीर्थादि पवित्र यात्रा के सम्बन्ध समय विचार में, आश्रयदाता मालिक की आज्ञापालन में स्थानान्तर गमन समय में सम्मुखस्थ बुध और शुक्र की स्थिति होते हुये भी यात्रा की जा सकती है।

भृगु-वसिष्ठ-अत्रि-अङ्गिरा-कश्यप-भरद्वाज और वत्स गोत्र समाज की जनता में बुध और शुक्र का सम्मुखस्थ दोष नहीं होता है ॥ १२ ॥

चन्द्रे पूषभमेषगे सति सितोऽन्धः स्यात्तदा संमुखं
यानं सत्परपूर्वयोः सितविपर्यासात्सदावश्यके ।
राजा तर्पितवह्निभूसुरसुहृत्स्नेहानुवृत्ति त्यजं-
स्तृप्तः कार्यमना व्रजेत्त्रिदिवसैरेकाब्धिषट्क्रोशकान् ॥ १३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथान्यं चापवादमाह—चन्द्रे इति । चन्द्रे पूषभमेषगे सति सितः शुक्रः अन्धः स्यात् । तदा संमुखं यानं सत् शुभं स्यात् । तथा च गर्गः "पौष्णादिवह्निभाद्यंघ्रौ यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः । तावदन्धो भवेच्छुक्रः प्रवेशे निर्गमे शुभः ।" इति । अथ आवश्यके प्रवृत्तिमाह—परपूर्वयोरिति परपूर्वयोः पश्चिमपूर्वयोः । सितविपर्यासात्, शुक्रविपर्यासात् आवश्यके कृत्ये सति यानं सत्स्यात् । एतदुक्तं भवति । शुक्रे पूर्वकपालं गते सति पश्चिमां गच्छेत् पश्चिमकपालं गते सति पूर्वां गच्छेत् । तथा च ज्योतिःप्रकाशे "अत्युत्सुकेषु यावत्प्राक्कपालस्थो भृगुर्भवेत् । तावत्पाशिदिशं गच्छेत्प्राचीं प्रत्यक्स्थितस्तथा ।" इति । अथ प्रयाणविधिमाह—राजेति । राजा त्रिदिवसैरेकाब्धिषट्क्रोशकान् व्रजेत् । एतदुक्तं भवति । प्रथमदिने क्रोशं गच्छेत् द्वितीयदिने चतुःक्रोशान् तृतीये षट्क्रोशान् अर्थात्परतो यथेच्छं गच्छेत् । कथभूतो राजा तर्पितवह्निभूसुरसुहृत् वह्निरग्निः भूसुरा ब्राह्मणाः सुहृदो बान्धवाः ते तर्पिताः वह्निभूसुरसुहृदो येन स तथा । अत्रायं भावः समिच्चरुतिलादिना वह्नि तर्पयित्वा दक्षिणान्नादिभिर्भूसुरांस्तर्पयित्वा वस्त्रालङ्करणादिभिः सुहृदः कलत्रादींस्तर्पयित्वा व्रजेदिति । किंकुर्वन् स्नेहानुवृत्ति त्यजन् सन् स्नेहेन अनुवृत्तिः पुनर्गृहागमनम् । अयं भावः यात्रार्थं बहिर्गत्वा पुत्रादिस्नेहवशात्तदवलोकनार्थं गृहं नागच्छेदिति । कथंभूतो राजा तृप्तः बुभुक्षितो न गच्छेदितिभावः । पुनः किंलक्षणः कार्यमनाः कार्याय उत्कण्ठितान्तःकरणः । तथा च रत्नावल्यां "स्वनिकेतात्सुरभवनात्प्रधानादाश्रमाद्गुरुगृहाद्वापि । यायात्कृताग्निकार्यः प्राश्य हविष्यं द्विजानुमतम्" इति । तथा च बृहस्पतिः "दैवज्ञं पूजयित्वा तु विदुषः पूज्य शक्तितः । प्रदक्षिणमिमान् कृत्वा तिष्ठन्ध्यायेदुमापतिम् ।" इति । तथा च ज्योतिःप्रकाशे "सन्तोष्य स्वाङ्गनां विप्रान् जह्यात्प्रतिरथादिकम् । शुचिः शुक्लाम्बरोष्णीषो नत्वेष्टं सुमना व्रजेत् ।" इति । तथा च कश्यपः 'यात्रासमये वृद्धानुपरागे ग्रहस्य वैषम्ये । गोभूहिरण्यवस्त्रैः संपूज्य श्रद्धया च दैवज्ञम्" । इति । बृहद्यात्रायां "स्नातो भुक्तोऽनुलिप्तश्च सर्वालङ्कारभूषितः । शुक्लाम्बरधरः श्रीमानध्वगः सुखमेधते" इति । भूपालवल्लभे "ब्राह्मणान्नावमन्येत कोपयेन्न निजाङ्गनाम् । यात्रां कृत्वा गृहं नैव सिद्धिकामो विशेद्गृहम्" इति । लल्लः "यात्रायां प्रस्थितो यश्च ब्राह्मणानवमन्यते । तदन्तं जीवितं तस्य नासौ प्रतिनिवर्तते" इति । बृहद्यात्रायाम्

"यस्तु संप्रस्थितो यात्रां स्वभार्या नाभिनन्दति। भार्या वा नाभिनन्देत नास्य प्रतिनिवर्तनम्" इति। तथा च रत्नावल्याम् "क्रोशं वा यदि वाप्यर्धं प्रथमेऽहनि शस्यते। द्वितीये योजनं गत्वा निवसेत महीपतिः। तृतीये योजनं सार्द्धं वसेदाक्रम्य दूरतः। ततः परं यथेष्टं तु यायान्मार्गं महीश्वरः" इति ॥ १३ ॥

वागीश्वरी—सम्मुख शुक्र का परिहार बताया जा रहा है—

जब तक चन्द्रमा रेवती के आरम्भ से कृतिका के १ चरण तक में रहता है तब तक शुक्र के अन्धा हो जाने से शुक्र का सम्मुखत्व दोष नहीं होता, सम्मुख शुक्र होने पर भी यात्रा की जा सकती है। यात्रा यदि अत्यन्त आवश्यक ही हो तो शुक्र ग्रह की व्यत्यास स्थिति में भी पूर्व पश्चिम की यात्रा हो सकती है अर्थात् पूर्व कपाल की शुक्र की स्थिति में पश्चिम दिशा की, और परकपाल की स्थिति में पूर्व दिशा की यात्रा की जा सकती है।

अग्नि में हवन आदि से अग्नि पूजन, देव ब्राह्मणों की पूजा-भोजन दक्षिणा वस्त्रालंकार से, मित्रवर्ग की पूजा सम्मान, स्वयं भोजनादि तुष्टि के साथ-साथ अन्तः करण कार्यसिद्धि की भावना करते हुये राजा या सर्व साधारण यात्री भी अपनी स्थिति के अनुसार पारिवारिक पुत्रादि के अति स्नेहाधिक्य को समझकर भावावेश में यात्रा अवरोध न करते हुये प्रथम दिन एक १, द्वितीय दिन दो २, दो और तृतीय दिन ६ कोश मापतक की यात्रा करते हुये चौथे दिन से यथेष्ट माप से यात्रा की जानी चाहिए ॥ १३ ॥

क्रोधक्षौररतिश्रमामिषगुडद्यूताश्रुदुग्धासव-
क्षाराभ्यङ्गभयासिताम्बरवमीस्तैलं कटूज्झेद् गमे।
क्षीरक्षौररतीः क्रमात्त्रिशरसप्ताहं परं तद्दिने
रोगं स्त्र्यार्तवकं सितान्यतिलकं प्रस्थानकेऽपीति च ॥ १४ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ यात्रिकस्य नियमानाह—क्रोधः प्रसिद्धः रतिर्मैथुनं श्रमः क्लेशः आमिषं मांसं गुडः प्रसिद्धः द्यूतं द्यूतवरणं अश्रु अश्रमोचनं दुग्धं प्रसिद्धम् आसवो मद्यं क्षारं क्षारधान्यं माषादि अभ्यङ्गस्तैलाभ्यङ्गः भयं शंका रिपुभयमित्यर्थः। असिताम्बराणि अशुभ्रवस्त्राणि रक्तकृष्णादीनि वमिर्वमनं तैलं प्रसिद्धं कटुमरीचादि इत्येतद्गमे गमने उज्झेत् त्यजेत्। अथ उक्तेषु किं किं कतिदिनं त्यजेदित्याह—क्षीरेति। क्षीरक्षौररतीः क्रमात् त्रि३ शर५ सप्ताहं७ त्यजेत् क्षीरं दुग्धं त्र्यहं३ क्षौरं शराहं पञ्चाहं५ रतिं सप्ताहं ७ त्यजेदित्यर्थः। परमुर्वरितं तद्दिने प्रयाणदिने त्यजेत् रोगं व्याधिं यावद्बाधं त्यजेत् स्त्र्यार्तवं बीजदानपर्यंतं त्यजेत् सितान्यतिलकं श्वेतव्यतिरिक्तं तिलकं पीतकौंकुमादिकं तद्दिने त्यजेत्। प्रस्थानकेऽपि इत्येतत् त्यजेत् प्रस्थानकं नाम मुहूर्तसमये किंचिदभीष्टवस्तुचालनम्। तदुक्तं रत्नमालायां "छत्रायुधाद्यं मनसस्त्वभीष्टं प्रचालयेद्वैजयिकं जयार्थी" इति। एतत्तु कार्यवशात्क्रियते प्रस्थाने संपूर्णफलं नास्ति। तथा च रत्नकोशे "कार्यवशात्स्वयमगमे भूभर्तुः केचिदा-

चार्याः। छत्रायुधाद्यभीश्च वैजयिकं निर्गमे कुर्युः" इति। तथा च गर्गः "स्वशरीरेण यः कश्चिन्निर्गच्छेच्छ्रद्धयान्वितः। तस्य यात्राफलं सर्वसंपूर्णं पथि सिद्ध्यति" इति। तच्चालनावधिर्ग्रंथान्तरात् "गृहाद्गृहान्तरं गर्ग आह सीमान्तरं भृगुः। शरक्षेपाद्भूरद्वाजा वसिष्ठो नगराद्बहिः" इति। एवं प्रस्थाने कृतेऽपि स्वयमन्यस्मिन्सुदिने गच्छेत्। तथा च ज्योतिःप्रकाशे "प्रस्थानेऽपि कृते नेयान्महादोषान्विते दिने॥ गर्भयोगं विना कालवृष्ट्यादौ चाप्लुते तथा" इति। रत्नमालायाम् "वसेन्न चैकत्र दश क्षितीशो दिनानि नो सप्त च माण्डलीकः॥ यः प्राकृतः सोऽपि च पञ्चरात्रं भद्रेण यात्रा परतः प्रयोज्या" इति। एवंविधे प्रस्थानेऽपि क्रोधक्षौररत्यादीन्वर्जयेदित्यर्थः। गर्गः "क्रोधं क्षौरं तथा वान्ति तैलाभ्यङ्गाश्रुमोक्षणम्॥ द्यूतं मांसं गुडं तैलं यानं मद्यं परित्यजेत्" इति। रत्नकोशे "कालोयकं हिंगुलकः कुंकुमं रक्तचन्दनम्॥ पीतं रक्तं च वसनं यातुर्नेष्टानि तत्क्षणात्" इति। बृहद्यात्रायाम् "कटुतैलगुडक्षीरपक्वमांसाशनं तथा॥ भुक्त्वा यो याति मोहेन व्याधितः स निवर्तते" इति। लल्लः "प्रमत्तो व्याधितो भीतः शान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः॥ अध्वानं न प्रपद्येत क्लीबवेषस्तथैव च"॥ रत्नावल्यां "स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव वा॥ ताडयित्वा तु यो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम्" इति। भृगुः "त्रिरात्रं वर्जयेत्क्षीरं पञ्चाहं क्षुरकर्म च॥ तदहश्चावशेषाणि सप्ताहं मैथुनं त्यजेत्" इति। यात्रायां गमनलक्षणं गर्गोक्तं ज्ञेयम् "मुहूर्त्तसमये प्राप्ते हंसचारांघ्रिणा व्रजेत्। दैवज्ञामात्यविप्राद्यपुरोगैः स्वजनैर्वृतः॥ पूर्वं दक्षिणमुद्धृत्य पादं यात्रां नराधिपः॥ द्वात्रिंशतं पदं गत्वा यानमारुह्य संव्रजेत्॥ ततो निरीक्षयेत्सम्यक् शकुनांश्च शुभाशुभान्॥ तथैव सदसच्छब्दान् निमित्तानि च संव्रजेत्" इति॥ १४॥

वागीश्वरी--यात्री के यात्रारम्भ के समय त्याज्य कार्य—

यात्रारम्भ में क्रोध, क्षौर कर्म (हजामत), मैथुन, परिश्रम, मांस भोजन, गुड़, द्यूत (जुआ आदि), नेत्र अश्रुपूर्ण, दूध, मद्य आदि का पान, क्षार अन्न उरद आदि भोजन, उबटन लगाना, शत्रुवर्ग से भीति (डर) करना, मैला और रंगीन वस्त्र धारण (श्वेत वस्त्र यात्रा में उत्तम) वमन (कै करना), भोजन व मालिश में तेल सेवन और कटु भोजन तीव्र (मिर्चा मसाला का) कटु भोजन इत्यादि उक्त पदार्थों का यात्रा समय में सेवन नहीं करना चाहिए।

यात्रा दिन के मुहूर्त्त से तीन दिन पहिले से दूध, ५ दिन पहिले से क्षौर (हजामत) और ७ दिन पहिले से मैथुन त्याज्य कहा है। रोगावस्था में रोगी के लिए यात्रा का निषेध कहा है। रजस्वला (स्त्री के मासिक धर्म में) स्त्री की शुद्धि पर गर्भाधानपूर्वक ही यात्रा करनो चाहिए। गर्भाधान किये जाने पर ही यात्रा आवश्यक होती है ?

यात्रा समय लाल-पीला-आदि चन्दन की जगह श्वेत चन्दन ही श्रेयसे कहा गया हैं कथित उक्त विषयों का यात्रा में त्याज्य होते हुए यात्रा का पूर्वाङ्ग अर्थात् प्रस्थान में भी उक्त वर्ज्य कहे गये है। दैवात् यात्रा शुभ मुहूर्त्तसमय में यात्रा करने में वाधा होने की

सम्भावनाएं जो आकस्मिक होती रहती हैं इसलिये यात्रा समीचीन शुभ हो एतदर्थ यात्रा मुहूर्त्त में बाधा भय से कुछ दिन पूर्व यात्रा साफल्य के लिये प्रस्थान किया जाता है ॥ १४॥

वस्त्रालङ्करणातिपूर्णकलशस्तौर्यध्वनिः पुत्रवान्
शङ्खादर्शनृपाश्वदन्तिसुरभिस्त्रीपुष्पधान्यादि च।
दोलादीपविधूमवह्निसुरभिद्रव्याणि शुभ्रो वृषो
वेश्याछत्रवितानचामरकुमार्यो मीनगोरोचने ॥ १५ ॥

मार्तण्डवल्लभा—इदानीं शकुनानाह—**वस्त्रेति**। वस्त्राणि श्वेतवस्त्राणि अन्यान्यपशकुनमध्ये पठितानि, अलङ्करणानि सुवर्णादिनिर्मितानि भूषणानीत्यर्थः। पूर्णकलशः प्रसिद्धः तौर्यध्वनिः वाद्यध्वनिः पुत्रवान् वर्द्धमानः पुरुषः शङ्खः प्रसिद्ध आदर्शो मुकुरः नृपो राजा अश्वः प्रसिद्धः दन्ती हस्ती सुरभिर्गौः स्त्री सौभाग्यवती पुष्पाणि श्वेतानि धान्यानि अकृष्णानि कृष्णानि त्वपशकुनमध्ये पठितानि आदिशब्देन सुवर्णादिधातवः दोला प्र० दीपः प्र० विधूमवह्निः धूमरहितोऽग्निः सुरभिद्रव्याणि सुगन्धद्रव्याणि कर्पूरचन्दनादीनि शुभ्रो वृषः श्वेतवृषभः वेश्या प्र० छत्रं प्र० वितानं वस्त्रनिर्मितं प्र० चामरं प्र० कुमारी प्र० मीनो मत्स्यः जलादुद्धृतः गोरोचनं प्रसिद्धम् ॥ १५ ॥

वागीश्वरी—आरम्भ यात्रा के वातावरण में शुभ शकुनों से सफल यात्रा विचार—

यात्री के यात्रा के आरम्भ में, श्वेत वस्त्र, सुवर्ण आदि आभूषण, जलपूर्ण कलश, तुरही, शंख, घण्टादि वाद्यों के कर्णगोचर के शब्द, सुलक्षण पुत्रवान् पुरुष का दर्शन, शंख, राजा दर्शन, दर्पण, हाथी, घोड़ा, गाय, सौभाग्यवती स्त्री दर्शन, श्वेत पुष्प दर्शन, काले वर्ण से अतिरिक्त अन्य पदार्थों का दर्शन, दोला, दीपदर्शन, धुवाँ रहित प्रज्वलित अग्नि, चन्दन केशर कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य दर्शन, श्वेत बैल, वेश्या, छाता, वितान (सामियाना आदि) छत्र चँवर, कुमारीकन्या, मछली इत्यादि उक्त पदार्थों के दर्शन से यात्रा सफल होती है उक्त वस्तु दर्शन से अभीष्ट कार्य की सिद्धि की सूचना मिलती है ॥ १५ ॥

यद्यत्स्वान्तनितान्ततोषकरणं कोरुद्धृतं गोमयं
मृच्चाम्भोऽर्थघटान्वितः सहचरो धौताम्बरो मौत्रकः।
दूर्वा दर्भरथाः पलास्त्रमदिरा वर्णी गुरुर्दैवविद्
विप्रौ मित्रमृगावरोदनशवं सिद्धार्थदुग्धादि च ॥ १६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ संकोचेनाह—**यद्यदिति**। यद्यद्वस्तु स्वान्तनितान्ततोषकरणं स्वान्तमन्तःकरणं तस्य नितान्तमतिशयेन तोषकरणं संतोषजनकं तत् किं बहुनोक्तेन एवं संकोचेनोक्त्वेदानीं येषु संतोषाभावस्तानि पूर्वाचार्यैः शकुनमध्ये पठितानि तान्याह—कोरुद्धृतं गोमयम् कोः पृथिव्या उद्धृतं गोमयम् मृच्च पृथिव्याः

उद्धृता मृत्तिका अम्भोर्थंघटान्वितः सहचरः उदकार्थं कुम्भयुक्तो जनः सन् सहचरः सहचरतीति सहचरः "जलार्थी रिक्तकुम्भस्तु पथिकेन सह व्रजेत् ॥ निवर्तते यथापूर्णः कृतार्थः पथिकस्तथा" इत्युक्तत्वात्। धौताम्बरो मौत्रकः धूतवस्त्ररजकः दूर्वा प्रसिद्धा दर्भः प्रसिद्धः दूर्वादर्भौ तृणे अपि शुभे अपशकुनमध्ये यत्तृणं पठितं तदेतद्व्यतिरिक्तं रथः प्र० पलं मांसम् अस्रं रक्तं मदिरा मद्यम् वर्णी ब्रह्मचारी गुरुः प्रसिद्धः दैवविज्ज्योतिषी विप्रौ द्वौ ब्राह्मणौ मित्रमिष्टः मृगः 'प्र० अरोदनशवं रोदनरहितं प्रेतम् सिद्धार्था गौरसर्षपाः दुग्धादि दुग्धदध्याज्यम्। ननु यद्यत्स्वान्तनितान्ततोषकरणमित्यनेन दुग्धग्रहणत्वात् सिद्धम् पुनः किमुक्तं दुर्ग्धामति। सत्यम्। दुग्धभक्षणे निषेधितं तत्संदेहनिवृत्त्यर्थं दुग्धपठनमित्यदोषः एवमेवात्र विचारणीयम्। तथा च वसन्तः "दध्याज्यदूर्वाक्षतपूर्णकुम्भसिद्धान्नसिद्धार्थकचन्दनानि ॥ आदर्शशंखामिषमीनमद्यगोरोचनागोमयमुद्धृतं गोः" इति ॥ भारद्वाजः "राजा विप्रौ सुहृद्वेश्या सपुत्रा स्त्री कुमारिका ॥ अभिरूपो नरो स्त्री वा गजो वाजी वृषः सितः ॥ रज्ज्वाधृतान्यवर्णे गौः सवत्सा च विशेषतः ॥ उद्धृतं गोमयं नीतं मृत्तिका चोद्धृता तथा ॥ रजको धौतवस्त्रश्च वेश्या तौर्यत्रिकध्वनिः ॥ जयमङ्गलशब्दश्च शान्तिपाठः सदीपकः ॥ दीपो वा प्रज्वलद्वह्निः पूर्णकुम्भो नृपासनम् ॥ मद्यं मांसं च रुधिरं भक्ष्याणि विविधानि च ॥ इक्षवो मधु ताम्बूलं वस्त्रालङ्करणानि च ॥ रौप्यं ताम्रं मणि स्वर्णं द्रव्यं दर्पणमक्षताः ॥ वितानं चामरं छत्रं दूर्वा दर्भतृणध्वजाः ॥ दोला चारु रथो वृद्धः पुत्रपौत्रार्थयुक् शुचिः ॥ चन्दनानि सुगन्धीनि तथा पुष्पाणि रोचना ॥ घृतं दधि पयः पेया सिद्धमन्नं वचः शुभम् ॥ दैवज्ञः सगुरुर्देवश्चित्तोत्साहकराणि च। दृष्ट्वैतानि नरो यायात्सर्वार्थं लभते तु सः" इति ॥ १६ ॥

वागीश्वरी—यात्रारम्भ में अन्य भी शुभ शकुन—

जीवन के प्रारम्भ से वर्त्तमान तक की यात्रा अपनी जीवन यात्रा में अनुभूत जिन-जिन वस्तु जीव-आदि से भेट-मुलाकात दर्शनादि से मानसिक सुख सन्तोष का अनुभव हुआ है उन सबका यात्रा समय में दर्शनादि भी शुभप्रद होता है। विपरीत जिस मानवादि के दर्शन संसर्ग से कटुता की दिनचर्या हुई है, यात्रा समय में उनका दर्शन स्मरण भी यात्रा की असफलता सूचित करती है। शकुनों में भी विशिष्ट शकुन—

भूमि से उठाया गोवर, खोदी गई मिट्टी, रिक्त घट लिया हुआ मनुष्य (जो जल से परिपूर्णता के लिये ले जाया जा रहा है), साफ किये हुए वस्त्र के साथ धोबी, दूर्वा, कुशा, रथ, मांस, शोणित, मदिरा, ब्रह्मचारी, गुरु, ज्योतिशशास्त्रज्ञ, ब्राह्मण, दैवज्ञ (ज्योतिषी) युग्म ब्राह्मण, अभिन्न मित्र, मृग, रोदन रहित शव, श्वेत सरसों, दूध दही और घी—उक्त सभी पदार्थों की यात्रा समय में दर्शन श्रवण यात्रा की शुभता को सूचित करते हैं ॥ १६ ॥

कुर्वन्दक्षिणतः सदेतदितरद्वामे प्रकुर्वन्व्रजेद्
भस्मास्थीन्धनविट्तुषाश्मलवणोपानत्तृणायस्कराः ।
पिण्याकौषधकृष्णधान्यरुदनं तक्रं सधूमानलः
कार्पासारुणपुष्पचर्म च गुडस्तैलायसी कर्दमः ॥ १७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथाशुभान्याह—**कुर्वन्निति** । एतत् अनन्तरोक्तं सत् शुभं दक्षिणतः दक्षिणभागे कुर्वन् सत् इतरत् अशुभं वक्ष्यमाणं वामे कुर्वन् सन् व्रजेत् गच्छेत् । भस्मेति । भस्म प्र० अस्थि प्र० इन्धनं प्र० विट् विष्ठा तुषं धान्यादीनां त्वक्फलगु अश्मा पाषाणः लवणं सामुद्रिकं उपानहौ प्रसिद्धौ तृणं प्र० अयस्करो लोहकारः । पिण्याकं मर्दिततिलाः औषधं प्र० कृष्णधान्यं माषादि रुदनं रोदनादि तक्रं प्र० सधूमानलः धूमसहितोऽग्निः कार्पासः प्र० अरुणपुष्पं जपादि चर्म प्र० गुडः प्र० तैलं प्र० अयो लोहं कर्दमः पङ्कः ॥ १७ ॥

वागीश्वरी—यात्रा में अशुभ शकुन—

श्लोक १६ में कथित यात्रा के शुभ पदार्थों को यात्रारम्भ में से अपने दाहिनी तरफ हों उस तरह करते हुये यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये ।

भस्म, हड्डी, लकड़ी, विष्ठा, भूसा, पत्थर, नमक, जूता, घास, लौहास्त्र निर्माता लोहार, छिलके रहित तिल, औषधि, काले अन्न यात्रारम्भ का रोदन (रोना), मट्ठा, कपास, लाल फूल, चमड़ा, गुड़, तेल, लोहार और कीचड़ इत्यादि का यात्रारम्भ में दर्शन से यात्रा में यात्रा की असफलता द्योतित करती है । यदि उक्त वस्तु का दर्शन हो तो उन्हें अपने से बांये करते हुये यात्रा करनी चाहिए ॥ १७ ॥

मत्तो वान्तबुभुक्षितान्तकखला मुण्डी जटी व्याधितः
खञ्जव्यङ्गदिगम्बरा यतिररिः काषायिमुक्तालकौ ।
चौराभ्यक्तमलाविलाश्च पतितः पाश्यर्गली गुर्विणी
वन्ध्या कृष्णवृषाहिभेकसरठा गोधा वराहः शशः ॥ १८ ॥

मार्तण्डवल्लभा—मत्त इति । मत्तः उन्मत्तः वान्तः वमितः बुभुक्षितः प्र० अन्तकः प्राणिहिंसकः खलो दुर्जनः मुण्डी मुण्डितः जटी जटिलः व्याधितो रोगी खञ्जः पादेन खञ्जः व्यङ्गोऽङ्गहीनः दिगम्बरो नग्नः यतिः संन्यासी अरिर्वैरी काषायी गैरिकरंजितवस्त्रः मुक्तालको मुक्तकेशः चौरः प्र० अभ्यक्तः तैलाभ्यक्तः मलाविलो मलिनः पतितो जातिभ्रष्टः पाशी प्राणिबन्धनार्थं पाशवान् अर्गली अर्गलावान् गुर्विणी सगर्भा वन्ध्या निरपत्या कृष्णवृषः कृष्णोऽनड्वान् अहिः सर्पः भेको मण्डूकः सरठः प्र० गोधा प्र० वराहः प्र० शशः प्रसिद्धः ॥ १८ ॥

वागीश्वरी—यात्रा में और भी अशुभ शकुन—

मदोन्मत्त पागल मनुष्य, उल्टी (कै करना) करने वाला, भूखा, व्याधा, दुर्जन, माथ मुड़ा हुआ मनुष्य (मुण्डी), जटाधारी मनुष्य, रोगी, लंगड़ा, अंगहीन, नग्न (वस्त्रहीन), संन्यासी, अपना शत्रु, गेरुवा वस्त्र धारी मनुष्य, खुले बाल वाले, चोर, तेल मालिश किया हुआ व्यक्ति, मलिन मनुष्य, संस्कार हीन पतित व्यक्ति, प्राणी हिंसा में तत्पर पाश लिया हुआ व्यक्ति, अर्गलाधारित व्यक्ति, गर्भिणी स्त्री, वन्ध्या स्त्री, काला बैल, सांप, मेढ़क, गिरगिट, गोहशूकर, सियार, गदहा इत्यादि का दर्शन···यात्रा में अशुभ फलद कहे गये हैं। दैवात् उक्त अशुभ वस्तु का दर्शन हो भी जाय तो यात्री व्यक्ति ने इन्हें वांया करते हुए यात्रा करनी चाहिए ॥ १८ ॥

जाहौतू महिषः खरोष्ट्रमहिषारूढाश्च रिक्तो घट-
श्छिक्का प्राणिशिरोऽङ्गकम्पपदवीबन्धाः कुवागाहवौ ।
पातो यानपलायनं श्वकलहः षण्ढं क्षुतं गोर्ज्वल-
द्वेश्मेति प्रतिबन्धकाः कुशकुनाश्छिक्कादिका मृत्युदाः ॥ १९ ॥

मार्तण्डवल्लभा—जाह इति । जाहः मण्डली लोके सेहलीति प्रसिद्धा "जाहको गात्रसंकोची मण्डली च बुधैः स्मृतः" इतिहलायुधः। ओतुर्मार्जारः महिषः प्रसिद्धः खरोष्ट्रमहिषारूढाः प्रसिद्धाः रिक्तो घटः प्र० छिक्का क्षुत् प्राणिशिरोङ्गकम्पः प्राणिनां गोऽश्वादीनां प्राणिनां शिरोझाटनम् अङ्गझाटनं वा पदवीबन्धो मार्गबन्धः ऊर्णनाभादिभिर्मार्गो बध्यते कुवाक् कुत्सितवाक्यश्रवणम् आहवः संग्रामः बिडालमहिषादीनां पातः पतनं वस्त्रादीनां स्खलनम् यानमश्वादि तस्य पलायनम् श्वकलहः शुनां कलहः षण्ढं नपुंसकम् गोक्षुतं प्रसिद्धम् ज्वलद्वेश्म ज्वलद्गृहदर्शनम् इत्येतेऽपशकुनाः प्रतिबन्धकाः कार्यप्रतिबन्धकाः स्युः छिक्कादिकाः अपशकुना मृत्युदाः स्युः। तथोक्तमागमान्तरे "तृणतैलादि कार्पासभस्मचर्मतुषौषधम् ॥ सामुद्रं गुडपङ्काहि मत्तं वान्तं बुभुक्षितम्" इत्यादि ॥ १९ ॥

वागीश्वरी—यात्रा समय में प्रतिबन्धक योग—

जोक या सेहली गात्र संकोची जन्तु विशेष, बिडाल, भैंस, गधा, ऊंट, महिषारूढ़ व्यक्ति, रिक्त घड़ा, छीक, चतुष्पद जानवरों के शिर कन्धे को या पैर आदि अंग कम्प, मकड़ी जाल से मार्ग बन्धन, कुवाक्य श्रवण, विडालों का युद्ध, स्वयं या पहने हुए वस्त्र का गिरना, घोड़ा आदि वाहन का भागना, कुत्तों का युद्ध, नपुसंक व्यक्ति, दर्शन, गाय की छींक, अग्नि से जलते हुये घर का दर्शन आदि यात्रारम्भ समय में इनका दिखना आदि प्रतिबन्धक योग होते हैं। छींक आदि भी यात्रा में अशकुन मृत्यु सूचक होते हैं कदाचित् मृत्यु भय की भी सूचना देते हैं ॥ १९ ॥

भृङ्गाल्युष्ट्रपठच्छुकाश्च नखिनः स्त्रीसंज्ञका वामतः
काळीकुक्कुटपुंप्रथाश्च सुरभिर्दक्षे मनोऽभीष्टदाः ।
भारद्वाजशिखण्डिचाषनकुला हंसोऽज एते दृशं
याता इष्टफलाः स्यु रासभरवो वामेऽपि पृष्ठेऽर्थदः ॥ २० ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ शकुनान्तरमाह—भृङ्गो भ्रमरः अलिर्वृश्चिकः उष्ट्रः प्रसिद्धः पठच्छुकाः शब्दं कुर्वाणा राजशुकाः नखिनः श्वानादयः स्त्रीसंज्ञकाः चटकादयः एते वामतः मनोऽभीष्टदाः स्युः । काली महिषी कुक्कुटः प्र० पुंप्रथाः पुरुषसंज्ञकाः काकादयः सुरभिर्गौः एते दक्षे मनोऽभीष्टदाः स्युः । भारद्वाजः शिखण्डी मयूरः चाषः प्र० नकुलो बभ्रुः हंसः प्र० अजो बस्तः एते भारद्वाजादयः दृशंयाताः सन्तः इष्टफलाः स्युः । अयमर्थः । भारद्वाजादयो वामे वा दक्षिणे वाग्रे वा दृष्टमात्रा इष्टफलाः अभीष्टफलदा भवन्तीत्यर्थः । रासभरवो गर्दभध्वनिर्वामे पृष्ठेऽपि अर्थदः अभीष्टार्थदो भवति ॥ २० ॥

वागीश्वरी—यात्रा समय में यात्री के दाहिने बांये जीवों का विचार—

भंवर, विच्छू, ऊंट, पढ़ता हुआ सुग्गा, नाखून वाला कुत्ता आदि तथा स्त्री वाचक (कोकिल-पल्ली-आदि) पक्षी यात्री के बांये भाग में हो तो यात्रा शुभ फलदायिनी होती है। और भैंस मुर्गी, पुरुष वाचक कौआ आदि पक्षी गौ···ये दाहिने भाग में होने से शुभ फल देते हैं।

विपरीत अर्थात् उक्त जीव वांये होने पर अशुभ फलद होते हैं। इसी प्रकार भारद्वाज मयूर (मोर) चाष पक्षी, नेवला हंस और छाग आदि का दर्शन (दाहिने या वांये) शुभ फलद होता है। तथा पीछे और वांये यदि गर्दभरव हो (गदहे की बोली) बांये होने से शुभ विपरीत में सम्मुख और दक्षिण में गदहे बोलना अशुभ होता है ॥ २० ॥

नद्युत्तारभयप्रवेशसमरद्यूतेषु नष्टेक्षणे
व्याधौ स्युः शुभदा विलोमशकुना नाड्या इडाया भरे ।
आद्ये दुःशकुने निवृत्य च शुचिर्भूत्वाऽष्टधा स्वायमं
कृत्वेयादपरेऽष्टिवारमपरे दत्वा सुवर्णं व्रजेत् ॥ २१ ॥

इति यात्राप्रकरणम् ।

मार्तण्डवल्लभा—अथ येषु येषु कृत्येषु विपरीतशकुनाः शुभाश्च तानाह—नद्युत्तार इति । नद्युत्तारो नद्युत्तरणं भयं नृपादीनां प्रवेशो ग्रामादिप्रवेशः समरः संग्रामः द्यूतं प्र० नष्टेक्षणं नष्टवस्तुनोऽवलोकनं व्याधौ रोगोपचारे एषु विलोमशकुना विपरीतशकुनाः शुभदाः स्युः । अयमर्थः । गमने येऽपशकुनास्ते नद्युत्तारादिषु शुभदाः

स्युरित्यर्थः । तथा इडाया नाड्या भरे पूर्णतायां विलोमशकुनाः शुभदाः स्युः । तथा च वसन्तः "भवेदिडायां परिपूरितायां सर्वोऽपि वामः शकुनः प्रशस्तः । स्यात्पिङ्गलायां परिपूरितायां सर्वेऽपि सव्याः शकुनाः प्रशस्ताः ॥ संगेरणे कर्मणि च प्रवेशे शुक्ले ग्रहे नष्टविलोकने च । व्याधौ सरिद्दुर्गवनादिकेषु शस्तः प्रयाणाद्विपरीतभावः ॥" इति ॥ अन्यच्च "नद्युत्तारे भये युद्धप्रवेशे नष्टवीक्षणे । शकुना व्यस्तगाः शस्ता नृपालोके प्रयाणवत् ।" इति । अथ प्रथमे अपशकुने जाते सति किंकर्तव्यमाह—आद्ये इति । आद्ये प्रथमे दुःशकुने जाते सति निवृत्य निवर्तनं कृत्वा तत्र शुचौ देशे उपविश्य शुचिः प्रक्षालितपाणिपादः आचान्तः कृताचमनः असवः प्राणास्तेषां आयामः प्राणायामः अष्टधा अष्टवारं कृत्वा इयात् गच्छेत् । चेद्यदि पुनः दुःशकुनः स्यात्तदा निवृत्य शुचिराचान्तोऽष्टिवारं षोडशवारमसून्नियम्येयात् । अपरे तृतीये दुःशकुने जाते सति सुवर्णं दत्त्वा इयात् । एतदावश्यकगमनविषयम् । प्राणायामानधिकारी तावत्कालं स्थित्वा व्रजेत् । तथा च ज्योतिर्निबन्धे "विरुद्धे शकुने पूर्वं प्राणायामाष्टकं चरेत् । द्वितीये द्विगुणान् कृत्वा तृतीये च व्रजेत्क्वचित् ।" इति ॥ तथा च वसन्तराजः "जाते विरुद्धे शकुनेऽध्वनीनो व्यावृत्य कृत्वा करपादशौचम् । आचम्य च क्षीरतरोरधस्तात्तिष्ठन्प्रपश्येच्छकुनान्तराणि" इति । तथा च आर्ष्टिषेणिः "यदाऽपशकुनं पश्येद्विपरीतमुपस्थितम् ॥ सघृतं काञ्चनं दत्त्वा निर्विशंकः सुखं व्रजेत्" इति ॥ २१ ॥

इति स्वोपज्ञमुहूर्तमार्तण्डटीकायां यात्राप्रकरणं समाप्तम् ॥

वागीश्वरी—विपरीत शकुनों में भी शुभता होती है—

राजभय से, नदी के पार करते समय, ग्रामान्तर प्रवेश समय में गृह प्रवेश, युद्ध में, द्यूत क्रियारम्भ में, नष्ट वस्तु की खोज में, रोग चिकित्सा में यात्रोक्त अपशकुन शुभफलद होते हैं। इडा नाडी वामश्वास के प्रचलन में भी उक्त अपशकुन शुभ होते हैं।

दुःशकुन में परिहार—प्रथम अपशकुन के दृष्टि गत होने पर वापस आकर, पवित्र होकर ८ आठ प्राणाम कर यात्रा करनी चाहिए। तत्रापि यदि द्वितीय अपशकुन दृष्टिगत हो तो १६ सोलह प्राणायाम के अनन्तर यात्रा करनी चाहिए। तथा यदि तीसरे बार भी अपशकुन की प्राप्ति हो रही हो तो वापस आकर पवित्रता पूर्वक प्राणायाम करते हुए सुवर्णादि का दान करते हुये तब यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए। आवश्यकता से तृतीय अपशकुन में भी यात्रा की जा सकती है। वस्तुतः तीसरे अपशकुन की प्राप्ति पर तो यात्रा से रोक ही होना उचित है। (जैसे "तृतीये न क्वचिद् व्रजेत्")

"मुहूर्तमार्तण्ड" ग्रन्थ के मूल और मार्तण्डवल्लभा संस्कृत व्याख्या के साथ पर्वतीय श्री केदार दत्त जोशी कृत हिन्दी "वागीश्वरी" व्याख्या सुसम्पन्न।

मिश्रप्रकरणम्

जन्माङ्गर्क्षदशेशसद्ग्रहकुजैः सार्कैर्बलिष्ठैर्मृदु-
क्षिप्रेन्द्रध्रुवभैः स्थिरर्द्धिनृतनौ व्यारान्हि भूपस्थितिः ।
स्वस्वर्क्षैः समृदुध्रुवर्क्षचरभक्षिप्रैः सुरस्थापनं
प्रोचुर्माघयुगे च राधयुगले व्यारान्हि पूर्वाह्णके ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ मिश्रप्रकरणं विवक्षुरादौ राजाभिषेकं वृत्तार्द्धेनाह—**जन्मेति** । जन्माङ्गर्क्षदशेशादिभिर्बलिष्ठैः तथा मृद्वादिभिः स्थिरर्द्धिनृतनौ व्यारान्हि भूपस्थितिः शस्ता स्यादित्यध्याहारः । अङ्गं च ऋक्षं च अङ्गर्क्षे जन्मनि अङ्गर्क्षे जन्माङ्गर्क्षे जन्मलग्नजन्मराशी ते च दशा च जन्माङ्गर्क्षदशाः दशा वर्तमाना तस्या ईशाः ते च सद्ग्रहाश्च कुजश्च सूर्यश्च ते च तैः सार्कैः अर्को रविः तेन सह बलिष्ठैः स्थानादिबलसमृद्धैः सद्भिः तथा मृदुक्षिप्रेन्दुध्रुवभैः स्पष्टम् । स्थिरर्द्धिनृतनौ ऋद्धि गतनृतनुः स्थिरा चासौ ऋद्धिर्नृतनुश्च सा तथा तस्यां जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यां स्थिरोपचयनृलग्ने व्यारान्हि भौमरहितदिने भूपस्थितिः राजप्रतिष्ठा शुभा स्यादित्यर्थः । लग्नबलं प्राग्वत् । प्रायश्चन्द्रं त्यजेत्याद्यवलोकनीयम् । अथ देवस्थापनमुत्तरार्द्धेनाह—स्वस्वर्क्षैरिति । स्वस्वर्क्षैः यस्य देवस्य प्रतिष्ठा क्रियते तस्य नक्षत्रैः समृदुध्रुवर्क्षचरभक्षिप्रैः शेषं स्पष्टम् । माघयुगे माघफाल्गुनयोः तथा राधयुगले राधो वैशाखः तस्माद्युगलं तस्मिन् वैशाखज्येष्ठयोरित्यर्थः । तथा व्यारान्हि विगत आरो यस्मात् एवंविधमहस्तस्मिन् भौमरहिते दिन इत्यर्थः । पूर्वाह्णके अत्र दिनस्य द्वौ भागौ पूर्वभागः पूर्वाह्णः तस्मिन् आचार्याः सुरस्थापनं प्रोचुः । शेषं स्पष्टम् । सर्वामरस्थापनमितिशेषः लग्नबलं प्राग्वत् ॥ १ ॥

वागीश्वरी—देव प्रतिष्ठा और राजा का अभिषेक बता रहे हैं—

राजगद्दी पर उत्तराधिकारी नये राजा की जन्मराशि और जन्म लग्न स्वामी, दशा के स्वामी शुभ ग्रह, मंगल और सूर्य ग्रह की बलशालीनता के साथ, मृदु-क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों, ज्येष्ठा, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों, जन्मराशि जन्मलग्न से उपचय ३।६।१०।११ स्थानों में स्थिर राशियों और पुरुष संज्ञक राशि लग्नों, मंगल रहित वारों में राजा का राजकुमार (उत्तराधिकारी) का राजाभिषेक शुभ कहा गया है ।

माघ-फाल्गुन-वैशाख और ज्येष्ठ मासों में, मंगल रहित शेष ग्रह वारों में जिस देवी देव की प्रतिष्ठा उस देवी देव देवता के नक्षत्रों, मृदु-ध्रुव-चर-स्थिर क्षिप्र संज्ञक किसी भी नक्षत्र में देवी, देव की स्थापना शुभोदय कारक कही गई है ॥ १ ॥

धार्यं वस्वदितोनपञ्चगुरुभाश्व्यन्त्यध्रुवैर्ज्ञत्रये
ज्ञोने क्षाल्यमिहाखुभक्षितमसन्मध्यत्रिभागेऽम्बरम् ।

स्त्रीरक्ताम्बरभूषणेऽत्र बिभृयाद्व्यादित्यपुष्यध्रुवे
श्वेतेऽब्जोऽरुणरुक्मयोः कुजरवी कृष्णे शनिः शस्यते ॥ २ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वस्त्रपरिधानं तस्य क्षालनमुन्दुरादिभक्षितफलं चाह—धार्यमिति। वसुर्धनिष्ठा अदितिः पुनर्वसुः इनपञ्चकं हस्तपञ्चकं गुरुभं पुष्यः अश्वि अश्विनी अन्त्यं रेवती ध्रुवाणि पूर्वोक्तानि एतैर्नक्षत्रैः ज्ञत्रये बुधगुरुशुक्रवारे अम्बरं वस्त्रं धार्यं नान्यत्र। यत उक्तं "रवौ जीर्णं विधौ स्तोकं जलार्द्रं दुःखदं कुजे ॥ बुधे धनं गुरौ ज्ञानं शुक्रे सौख्यं शनौ मलम् ।" इति। लग्नबलं प्राग्वत्। अथ क्षालनमाह—इहास्मिन्वस्त्रधारणे नक्षत्रादौ क्षाल्यं प्रक्षालनीयं। कथंभूते ज्ञोने बुधवाररहिते। उक्तं च "वस्त्रहेमाद्यलंकारधारणोक्तैश्च भादिभिः॥ तत्संहतिश्च निर्माणं विदध्यात्क्षालनादिकम् ॥" इति। यद्यपि यस्याङ्गं यददोऽङ्गिनो गदितभे कुर्यादिति पूर्वमेव अङ्गभूतं कर्मोक्तम्, तथापि क्षालने बुधवर्जनार्थं ज्ञोने इह क्षाल्यमित्युक्तं बुधनिषेधश्रवणात्। उक्तं च "शनौ सोमसुते श्राद्धे षष्ठ्यामावास्ययोस्तथा। वस्त्राणां क्षालनं चैव दहत्यासप्तमं कुलम् ॥" इति। अथोन्दुरादिभक्षितफलमाह—आखुभक्षितमिति। आखुः उन्दुरः तेन अम्बरं मध्यत्रिभागे भक्षितमसत् दुष्टफलं स्यात्। एतदुक्तं भवति वस्त्रं त्रिगुणं कृत्वा यदि भक्षितभागो मध्यत्रिभागे पतति तदा तद्दुष्टमित्यर्थः। आखुरित्युपलक्षणम् तेनाग्निदग्धं गवादिभक्षितं मष्यादिलिप्तं ज्ञेयम्। तथाचोक्तं वृत्तशते "दग्धं वा स्फुटितं च गोमयमषीपंकैर्विलिप्तं तदा दष्टं मूषकपूर्वकैरशुभदं मध्यत्रिभागेऽशुकम् ॥" इति। अथ स्त्रिया रक्तवस्त्रधारणं भूषणधारणमनुक्तग्रहाणां कुत्र कुत्र प्राशस्त्यं तदुत्तरार्धेनाह—स्त्रीति। स्त्री अत्र उक्ते वस्त्रधारणभादौ अम्बरं भूषणं सुवर्णादिभूषणं बिभृयात् धारयेत् कथंभूते व्यादित्यपुष्यध्रुवे विगतानि आदित्यपुष्यध्रुवाणि यस्मात्तत्तथा तस्मिन्। यतोऽत्र स्त्रिया रक्तवस्त्रभूषणधारणे दोषो दृश्यते। तथा चोक्तम् "पुष्यादित्यध्रुवैर्धिष्ण्यैः स्वर्णरक्ताम्बरादिकम् ॥ नवीनं भूषणं 'धार्यं नार्या दयितुरायुषे ॥" इति। लग्नबलं प्राग्वत्। अथ चन्द्रादीनां प्राशस्त्यमाह—श्वेते वस्तुनि रौप्यमुक्ताफलादिके अब्जश्चन्द्रो हितः सोमवारे श्वेतवस्तु धार्यमित्यर्थः। कुजरवी अरुणरुक्मयोः शस्येते शनिः कृष्णे वस्तुनि नीलवस्त्रादिके शस्यते शनौ तद्धार्यमितिभावः। ज्ञत्रये तु सर्वं धार्यमितिपुरैवोक्तम् ॥ २ ॥

वागीश्वरी—धनिष्ठा-पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, विषाखा, अनुराधा, पुष्य, अश्विनी, रेवती और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों, बुध-गुरु और शुक्र वारों में नवीन वस्त्र धारण करने का शुभ मुहूर्त्त उत्तम होता है।

बुध वार को त्याग कर शेष उक्त वस्त्र धारण मुहूर्त्त में धोबी से या स्वयं वस्त्र धुलाना मुहूर्त्त उत्तम कहा गया है। अकस्मात् वस्त्र के फटने या जल जाने से भी उस वस्त्र को शुभाशुभ विचार के अनुसार वस्त्र के नौ भागों में मध्य के तीन भाग यदि

जल जाय या फट जाय या मूषकादि से कट जाय या कीचड़ आदि दाग लग जाय तो पुनः वह वस्त्र धारण योग्य नहीं होता, शेष दो भागों में उक्त दोष के होने पर भी वह वस्त्र धारण किया जा सकता है।

ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों के साथ, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रों को छोड़ कर अन्य नक्षत्रों में सधवा स्त्री को रक्तवस्त्र और आभूषणादि धारण करने चाहिए। श्वेत वस्त्र, चाँदी, शंख मोती आदि धारण के लिए सोमवार ठीक कहा गया है। रवि और मंगल वारों में लाल-पीला रंग के वस्त्र धारण करने चाहिए। तथा कृष्ण वस्त्र के लिए शनिवार ठीक होता है ॥ २ ॥

वस्त्रोक्तैर्व्यनिलद्वयाश्विभिरगेऽङ्गे नुर्विभूषा हिता
विप्राज्ञोत्सवलब्धिषूदितमनुक्तेऽपीष्टकृद्धारणम् ।
मैत्रार्कानिलमूलदस्रहरिभेन्द्वीज्याजपादोत्तरे
पण्यानां क्रयविक्रयौ घटपरद्व्यङ्गे स्वशुद्धौ तनु ॥ ३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ नराणां भूषणधारणं वृत्तचरणेनाह—**वस्त्रोक्तैरिति।** वस्त्रोक्तैर्भादिभिर्वस्वदितीत्यत्रोक्तैः अगेंगे स्थिरलग्ने नुः नरस्य अलंकृतिरलंकरणं हितं स्यात्। किंलक्षणैर्वस्त्रोक्तैः व्यनिलद्वयाश्विभिः अनिलद्वयं स्वातीयुगं स्वाती-विशाखेति अश्विनी प्रसिद्धा विगते अनिलद्वयाश्विन्यौ येभ्यस्तानि तथा तस्मिन् स्वातीविशाखाश्विनीरहितैरित्यर्थः। लग्नबलं प्राग्वत्। अथ द्वितीयचरणेन विशेषमाह—विप्राज्ञेति। विप्राज्ञा ब्राह्मणाज्ञा उत्सवो विवाहादिकः लब्धिर्लाभः आसु सत्सु अनुक्तेऽपि भादौ धारणं वस्त्रादिधारणमिष्टकृत्स्यात्। तथाचोक्तं व्यासेन "लब्धं राजप्रसादेन विप्रादेशात्करग्रहे ॥ प्रीत्या दत्तोत्सवे वस्त्रं धार्यं निन्द्येऽपि भादिके ॥" इति। अथोत्तरार्द्धेन पण्यानां क्रयविक्रयावाह—मैत्रेति। मैत्रमनुराधा शेष सुगमम्। घटपरद्व्यंगे घटः कुम्भस्तस्मात्परमन्यतमं तच्च तत् ऋद्व्यंगं च ऋद्व्यंगमुपचयलग्नं तस्मिन्कुम्भव्यरिक्तोपचयलग्ने पण्यानां पूगफलखर्जूरादीनां क्रयविक्रयौ तनु विस्तारय कुर्वित्यर्थः। कस्यां सत्याम् स्वशुद्धौ सत्यां स्वं धनभावः तस्य शुद्धिः पापराहित्यं तस्यां सत्याम् शेषं प्राग्वत्। तथाचोक्तं "दशमैकादशे लग्ने वित्तकेन्द्रत्रिकोणगैः ॥ शुभैः पण्यस्य कर्मोक्तं वर्जयित्वा घटोदयम्।" इति ॥ ३ ॥

वागीश्वरी—पुरुषों के लिए वस्त्र धारण मुहूर्त्त बताए जा रहे हैं—

स्वाति-विषाखा-अश्विनी इन नक्षत्रों को छोड़ अन्य वस्त्रधारणोक्त नक्षत्रों और स्थिर लग्नों में पुरुषों को वस्त्र धारण मुहूर्त्त शुभ होता है। विवाह यज्ञोपवीतादि उत्सव कार्यों के शुभ अवसर पर निन्दित नक्षत्रादिकों में भी ब्राह्मणवर्य से आज्ञा लेकर नव वस्त्र धारण किया जा सकता है।

अनुराधा, हस्त, स्वाति, मूल, अश्विनी, श्रवण, मृगशिरा, पुष्य, पू. भा. और तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में, कुम्भ लग्न को छोड़ कर शेष उपचय लग्नों में व्यापार सम्बन्धी पदार्थों का क्रय और विक्रय के शुभ मुहूर्त्त कहे गये हैं ॥ ३ ॥

प्रेतज्वालनशय्यकावितनने स्तम्भोच्छ्रयं याम्यदि-
ग्यानं काष्ठतृणोच्चयं परिहरेत्कुम्भद्वयस्थे विधौ ।
सेवेष्टाध्रुववारुणान्त्यवसुभैः खाये रवौ वा कुजे
संन्यासः स्थिरभे खलैर्गतबलैः षष्ठान्त्यगे भार्गवे ॥ ४ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वृत्तार्द्धेन धनिष्ठापञ्चके वर्ज्यमाह—**प्रेतेति** । कुम्भद्वयस्थे विधौ सति कुम्भमीनगे चन्द्रे सति परिहरेत् सर्वथा नाचरेत् स्पष्टम् । अथोत्तरार्द्ध-चरणेन सेवामाह—सेवेति । ध्रुवादिभिर्नक्षत्रैः सेवा इष्टा स्यात् । सुगमम् । कस्मिन्सति खाये रवौ सति वा इत्यथवा कुजे सति खं दशमम् आयमेकादशम् अनयोरन्यतमे रविभौमयोरन्यतमे सतीत्यर्थः । यस्मिल्लग्ने सेवा क्रियते तस्माल्लग्नाद्दशमे एकादशे वा रवौ भौमे वा सति सेवा इष्टा हितकरा स्यादित्यर्थः । शेषं प्राग्वत् । अथ चतुर्थ-चरणेन संन्यासमाह—संन्यास इति । स्थिरनक्षत्रे स्थिरलग्ने च संन्यास इष्टः स्यात् । कैः खलैः गतबलैः पापग्रहैर्हीनबलैरित्यर्थः । सप्तम्यर्थे तृतीया कस्मिन्सति भार्गवे शुक्रे षष्ठ्यान्त्यगे ६, १२ सति । शेषं लग्नबलं प्राग्वत् । उक्तं च "त्रिषडेकादशे सौरिर्व्यये षष्ठे च भार्गवः ॥ सबले धर्मपे जीवे केन्द्रे दीक्षाविरक्तिकृत् ।" इति ॥ ४ ॥

वागीश्वरी—पञ्चक नक्षत्रों में वर्ज्य कृत्य—

कुम्भ और मीन राशिस्थ चन्द्रमा में अर्थात् धनिष्ठार्द्ध से रेवती तक के इन पाँच नक्षत्रों में, मृत मानव या स्त्री (शव) को दाह (जलाना), शय्या खाट-चटाई-पलङ्ग आदि का बिनना, घर में काष्ठ आदि का स्तम्भ गाड़ना, दक्षिण दिशा की यात्रा, तृण काष्ठ व लकड़ी आदि का सञ्चय सर्वथा निषिद्ध है ।

ध्रुव संज्ञक, शतभिषा, रेवती और धनिष्ठा नक्षत्रों में, सूर्य या मंगल लग्न से दशम या एकादश ११ में हो तो सेवा कार्य (नौकरी आदि) शुभ होता है ।

पापग्रहों की निर्बलता पर, स्थिरसंज्ञक नक्षत्रों में तथा शुक्र ग्रह छठे हो या ग्यारहवें हो तो संन्यास ग्रहण (दण्डपाणि) करने का मुहूर्त्त उत्तम होता है ॥ ४ ॥

उद्वाहर्क्षचरद्विपेन्द्रलघुभत्वाष्ट्रैः शुभा स्यात्कृषि-
र्व्यार्किज्ञारखगाह्नि युग्मझषगोकन्याविलग्ने तिथौ ।
व्यङ्क्लौजे सदिशि प्रणम्य खगभूमुख्यान् सिताच्छादनः
स्वर्णोद्घृष्टहलं समुष्कसुवृषैः सौम्यो पटुस्त्रिर्नयेत् ॥ ५ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वृत्तद्वयेन कृषिकर्माह—**उद्वाहेति**। उद्वाहर्क्षाणि पूर्वोक्तानि मूलान्त्यार्केत्यादीनि एकादशसंख्याकानि चराणि प्रसिद्धानि द्विपं विशाखा इन्द्रो ज्येष्ठा लघुभानि प्र० त्वाष्ट्रं चित्रा तैर्व्यार्किज्ञारखगाह्नि आर्किः शनिः ज्ञो बुधः आरो भौमः विगता आर्किज्ञारा येभ्यस्ते तथा ते च ते खगाश्च तेषामह्नः दिनं तस्मिन् शनिबुधभौमरहितवारे इत्यर्थः। युग्मझषगोकन्याविलग्ने युग्मं मिथुनम् झषो मीनः गौर्वृषः कन्या प्रसिद्धा एषामन्यतमविलग्ने तिथौ व्यङ्कौजे विगतः अङ्कः नवमी यस्मात् असौ व्यङ्कः स चासौ ओजश्च ओजो विषमस्तस्मिन् नवमीव्यतिरिक्तविषमतिथावित्यर्थः। किंलक्षणे व्यङ्कौजे तिथौ सदिशि दिग्दशमी तया सह वर्तमाने १, ३, ५, ७, ११, १३, १५, १० कृषिः शुभा स्यात्। तथा चोक्तम् "चन्द्रे शुभे शुभतिथौ शुभवारयोगे वारे गुरौ शशिजशुक्रगभस्तिवारे। लग्ने वृषे मिथुनके झषकन्यकायां शस्तं कृषिप्रकरणं प्रवपेन्निधाने॥" इति। अन्यच्च "दशम्येकादशी चैव तृतीया च त्रयोदशी। सप्तमी पञ्चमी चैव प्रतिपच्च सुखावहा॥ हन्त्यष्टमी बलीवर्दान्नवमी सस्यघातिनी। चतुर्थी कीटजननी पतिं हन्ति चतुर्दशी॥ रवौ बृहस्पतौ चन्द्रे शुक्रे कुर्याद्विशेषतः। बुधार्किभूमिपुत्राश्च न भवन्ति फलप्रदाः॥" इति।

अथ विधिमाह—सिताच्छादनः श्वेतवस्त्रधरः पटुः कुशलः कर्ता खगभूमुख्यान् देवान् प्रणम्य कृष्यारम्भपूर्वोक्तः सीतायज्ञः क्रियते तत्र पूजितान् खगभूमुख्यान् ग्रहभूम्यग्न्यादीन् प्रदक्षिणापूर्वकं प्रणम्य मनोवाक्कायकर्मभिर्नमस्कृत्य स्वर्णोद्घृष्टहलं सुवर्णघर्षिताग्रहलं समुष्कसुवृषैः मुष्का वृषणास्तैः सह वर्तमानाः समुष्काः शोभना वृषाः सुवृषाः गुणावयवपूर्णाः निरोगाः समुष्काश्च ते सुवृषाश्च तथा तैः कृत्वा सौमीमुत्तरां दिशं प्रति त्रिवारं नयेत् हलेन पद्धतीः कुर्यादितिभावः। उत्तरां दिशं प्रति त्रिवारं नयनेन पञ्चरेखा उत्पद्यन्ते। तद्यथा प्रथमगमनेनैका आवर्तने द्वितीया पुनरुत्तरां प्रति द्वितीयगमनेन तृतीया पुनरावर्तने चतुर्थी पुनरुत्तरां प्रति तृतीयगमनेन पञ्चमीरेखा उत्पद्यते अधिका न कार्या इति भावः। सौमीं पटुस्त्रिर्नयेदित्यत्र पटुपदग्रहणमखण्डऋजुरेखाकरणार्थम्। तथा चोक्तं "शस्तासु चन्द्रतारासु शुचिः शुक्लेन वाससा। स्नात्वा गन्धैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा विशेषतः॥ पृथिवीं ग्रहसंयुक्तां पूजयित्वा प्रजापतिम्। अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दातव्या चैव दक्षिणा॥ कृष्णौ वृषौ नियोक्तव्यौ जीवनश्च युतेन वा। विबलं छिन्नलांगूलं कपिलं वृषभं त्यजेत्॥ हलप्रवाहणं कार्यं नीरुग्भिर्वृषकर्षकैः। हलादिभिर्दृढैः क्षेमं कुदृढैरशुभं भवेत्॥ वृषभा यदि युध्येयुस्तस्य विघ्नं सदा भवेत्। हेमघृष्टहलाग्रेण छिन्नरेखां न कारयेत्॥ उत्तराभिमुखो भूत्वा क्षीरेणार्घ्यं प्रदापयेत्। तस्य सर्वप्रकारेण निर्विघ्नं कारयेत्तदा॥ एका जयकरी रेखा तृतीया चार्थवृद्धिदा। पञ्चमी च भवेद्रेखा बहुसस्यफलप्रदा॥ अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या महादोषस्ततो भवेत्। स्मर्तव्या वसवः शुक्रः पृथुनामा सुचन्द्रमाः॥ पराशरो हली चैव सर्वविघ्नोपशान्तये॥" इति। अत्र दुर्निमित्तानि तत्रैवोक्तानि "हले प्रवाह्यमाणे तु कर्म उत्पद्यते यदि। गृहिणो मृतये तस्य ततोऽग्नेश्च

भयं भवेत् ॥ ईषाभङ्गो यदा क्रष्टुः संशयो जीवितस्य च । सुतनाशो युगे भग्ने समाने म्रियते शिशुः ॥ योक्त्रच्छेदे तु व्यासंगः सस्यहानिश्च जायते ॥ हले प्रवाह्यमाणे तु गौरेकः प्रपतेद्यदि ॥ प्रपतेद्युक्तमात्रस्तु बन्धनं च प्रयच्छति । ज्वरातिसाररोगेण कृषिभंगं विनिर्दिशेत् ॥ प्रवहेद्युक्तमात्रस्तु ततो गौः खनते यदि । हलेन युक्तमात्रस्तु तदा सस्यं चतुर्गुणम् ॥" इति ॥ ५ ॥

वागीश्वरी—कृषि कर्म (खेती करना) का मुहूर्त्त बताया जा रहा है—

विवाह संस्कार में कथित नक्षत्रों के साथ, चर संज्ञक नक्षत्रों लघु संज्ञक नक्षत्रों में शनि-बुध और मंगल वार को छोड़ कर शेष दिनों (वारों), मिथुन-मीन-वृष लग्नों में, दशमी सहित और नवमी रहित, शेष तिथियों में कृषि कर्म (खेती करना) शुभ कहा गया है।

खेती कर्म आरम्भ में निपुण हलवाहा (हल चलाने वाला) ने, श्वेतवस्त्र धारण के साथ, वृषणसहित बैलों से हलाग्र में सुवर्णादि पवित्र धातु स्थापना पूर्वक उत्तराभिमुख होकर हल चलाना चाहिए। इस प्रकार तीन वार भूमि में हल जोतने पर उत्तर से दक्षिण तक जैसे तीन रेखाएँ होती हैं तथा हल चलाना चाहिए। प्रथम दिन में ही उक्त विधि से हल चलाना चाहिए शेष कार्य द्वितीयादि दिन से प्रारम्भ करने चाहिए ॥ ५ ॥

त्रित्रित्रीष्वनलार्थरामहुतभुग्भेष्वर्कभुक्तादसत्
सद्भूयः कृषिभैर्विवारुणहरीन्द्रैर्बीजवापः शुभः ।
सूर्यर्क्षादितृतीयतोऽतिधृतितश्चाष्टाष्टभैः सत्फलः
प्रोक्तोऽन्यैः फणिसप्तमाद्रविमितैस्तच्छेदनं वापभैः ॥ ६ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ कृषिविषये लांगलचक्रमाह—**त्रित्रीति** । अर्कभुक्तात्सूर्यभुक्तनक्षत्रात् सकाशात् त्रित्र्यादिषु स्थानाष्टस्थितेषु नक्षत्रेषु असत्सदित्येतत्फलद्वयं भूयः वारं वारं स्यात् । एतदुक्तं भवति । सूर्याक्रान्तनक्षत्रस्य आदिमान्नक्षत्रात् सकाशात् त्रिषु असत् दुष्टफलं स्यात् । तदनन्तरं त्रिषु सत् शुभं स्यात् । ततस्त्रिषु असत् ततः इषुषु पञ्चसु सत् ततोऽनलेषु त्रिषु असत् ततः अर्थेषु पञ्चसु सत् ततो हुतभुक्षु त्रिषु सत्स्यादित्यर्थः । अथ बीजोप्तिमाह—कृषिभैरिति । कृषिभैः कृषिनक्षत्रैः उद्वाहर्क्षचरद्विपेत्यादिभिर्बीजवापः शुभः प्रोक्तः । किंलक्षणैः कृषिभैः विवारुणहरीन्द्रैः वारुणं शततारका हरिः श्रवणः इन्द्रो जेष्ठा विगताः वारुणहरीन्द्रा येभ्यस्तानि तथा तैः शततारकाश्रवणज्येष्ठारहितैरित्यर्थः । कृषिभैरित्युपलक्षणम् तस्मात्कृष्युक्तं सर्वं तिथिवारादिकं ज्ञेयम् । तथा चोक्तम् "मूषकानां भयं भौमे मन्दं शलभकीटयोः । नवमे च तिथौ रिक्ते हीने सोमे विशेषतः ॥ वृषलग्नेऽथवा मीने कन्यायां मिथुनेऽथवा ॥ वापयेत्सर्वसस्यानि यदीच्छेत्सस्यसंपदः" इत्यादि । लग्नबलं प्राग्वत् । अथ बीजवापविषये द्विभेदं फणिचक्रमाह—सूर्यर्क्षादिति । सूर्ययुक्तनक्षत्रादि तृतीयम्, तस्मादतिधृतिरेकोनविंशम्, तस्मात् अष्टाष्टभिः तृतीयादष्टभिः एकोनविंशादष्टभिर्नक्षत्रैर्बीजवापः

सत्फलः । अथ द्वितीयभेदमाह—अन्यैरिति अन्यैराचार्यैः फणिसप्तमात् राहुसप्तमात्सकाशात् रविमितैर्द्वादशभिर्नक्षत्रैः बीजवापः शुभः प्रोक्तः । एतदुक्तं भवति । राहुर्यस्मिन्नक्षत्रे भवति तस्माद्यत्सप्तमं नक्षत्रं तत्फणिसप्तममुच्यते तस्मात् सकाशात् द्वादशभिरित्यर्थः । राहोस्तु फणीतिनाम ग्रन्थान्तरे प्रसिद्धम् । वराहमिहिराचार्येण राहुस्वरूपविकल्पा ग्रन्थान्तरोक्ता उद्घाटिताः स्वकृतसंहितायाम् "अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम् । प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥ इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात्किल न दृश्यते गगने । अन्यत्र पर्वकालाद्वरप्रधानात्कमलयोनेः ॥ मुखपुच्छविभक्ताङ्गं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये" इति ॥ भुजङ्गमाकारकथनात्फणीत्यभिधानं प्रसिद्धम् । रत्नमालायामपि "फणिभाद्बीजोप्तिकाले स्फुट" इति । तथाचागमान्तरे "राहुभादष्टमं यावद्बीजोप्तिः परिवर्जयेत्" इति । अथ धान्यच्छेदनमाह—तच्छेदनं वापभैरिति । तेषां धान्यानां छेदनं तच्छेदनम् वापभैः बीजवापनक्षत्रैः प्रोक्तम् । ननु 'यस्याङ्गं यददोंगिनो गदितभे कुर्यादि' तिपुरैवोक्तं तत्कथं पुनरुक्तं तच्छेदनं वापभैरिति । सत्यम् । कृषिनक्षत्राणां बीजवापनक्षत्राणां च किंचित् भेदोऽस्ति द्वयोः कृष्यङ्गत्वात् । कैः कार्यमितिसंदेहनिवारणार्थं तच्छेदनं वापभैरित्युक्तम् ॥ ६ ॥

वागीश्वरी—बीज बोना, लाङ्गल चक्र और फणिचक्र—

सूर्य से त्यक्त नक्षत्र के अग्रिम ३ नक्षत्रों में कृषि कर्म अशुभ पुनः ३ नक्षत्रों में शुभ ततः पुनः ५ में शुभ, पुनः ३ में अशुभ और अन्तिम ३ नक्षत्रों में हल प्रवहण शुभ कहा गया है । पूर्व श्लोकोक्त कृषि कर्म नक्षत्रों को उक्त विधि से शुद्ध समझ कर कृषि कर्म का प्रारम्भ होना चाहिए ।

शतभिषक् श्रवण और ज्येष्टा नक्षत्रों को छोड़कर कृषिकर्मोपयोगी अन्य नक्षत्रों में बीज बपन करना चाहिए ।

सूर्य नक्षत्र से तृतीय नक्षत्र से ८ नक्षत्र तक और १९वें नक्षत्र से ८ नक्षत्र बीज वपन में शुभ फलद होते हैं । शेष अन्य नक्षत्र बीज वपन में (उचित) शुभ नहीं हैं । आचार्यों के मतान्तर से राहुग्रस्त नक्षत्र से ७वें नक्षत्र से आगे के १२ नक्षत्र बीज बोने में शुभ कहे गये हैं ॥ ६ ॥

मेथिं क्षीरतरोरुफानुरहितैरुद्वाहभै रोपये-
दन्नप्राशनवद्वसन्तशरदोः प्रोक्तं नवान्नं बुधैः ।
मैत्रार्कान्त्यवसूत्तरेज्यवरुणैः सेन्द्रैः शुभं नर्तनं
लग्ने ज्ञे गुरुवीक्षिते हिबुकगैः सौम्यैश्च संगीतकम् ॥ ७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ निष्पन्ने धान्ये क्रमप्राप्तं मेथिरोपणं वृत्तचरणेनाह—मेथिमिति । क्षीरतरोर्वटवृक्षादेर्मेथिमुद्वाहभैर्विवाहनक्षत्रैर्मूलान्त्यार्कैत्याभिरारोपयेत्

निखनेत् । मेथिर्नाम खले धान्यमर्दनार्थं वृषपंक्तियोजनार्थं काष्ठमारोप्यते मेथ्यन्ते संगम्यन्ते वृषभा अस्मिन्निति मेथिः "पुंसि मेथिः खले दारु न्यस्तं यत्पशुबन्धने" इत्यमरः। किंलक्षणैरुद्वाहभैः उफानुरहितैः उफा उत्तराफाल्गुनी अनुः अनुराधा ताभ्यां रहितैः। उक्तं च "रेवती रोहिणी मूलं स्वाती हस्तो मृगस्तथा। आषाढोत्तरा हस्तश्च तथा भाद्रपदा मता॥ बन्धने सर्वबीजानां तथा शालाप्रवेशने। दुःखदा वनदा चैवानुराधोत्तरफाल्गुनी॥ वटश्च सप्तपर्णश्च गम्भारो शाल्मली तथा। औदुम्बरी तथा धात्री या चान्या क्षीरवाहिनी॥ स्रोनाम्नी कर्षकैर्नित्यं मेथिः कार्यफलप्रदा।" इति। अथ नवधान्यप्रसंगेन नवान्नकर्म द्वितीयचरणेनाह—अन्नप्राशनभैरिति। वसन्तशरदोः ऋत्वोः अन्नप्राशनभैर्नवान्नं नवान्नकर्म बुधैः प्रोक्तम्। अन्नप्राशनभैरित्युपलक्षणं तस्मादन्नप्राशनोक्ततिथिवारादिकमत्र ग्राह्यम्। साग्निकस्य नवान्नकर्मणा विना व्रीह्यादीनां नवनवमितानां धान्यानां भक्षणे दोषप्रङ्गादावश्यकं कर्मैतत्। नवधान्यानीमानि "व्रीहयो यवगोधूमा नीवाराः कङ्गुवेणकाः। शालयो मुद्गमाषाश्च नवधान्यानि च क्रमात्॥" एषां मध्ये शरत्संभवानि धान्यानि व्रीह्याग्रयणेन विना न भक्षणीयानि वसन्तभवानि यवाग्रयणेन विना न भक्षणीयानीति नियमादिदं कर्म शरद्वसन्तयोः क्रियत इति यत् तत् अन्नप्राशनोदितैस्तिथिभादिभिः मासे षष्ठेऽष्टमे वेत्यत्रोक्तैर्नवान्नं कर्तव्यमित्यर्थः। अथोत्तरार्द्धेन नृत्यसंगीतयोरारम्भमाह—मैत्रार्केऽन्त्येति। मैत्रमनुराधा अर्को हस्तः अन्त्यं रेवती वसवो धनिष्ठा उत्तरास्तिस्रः ईज्यः पुष्यः वरुणः शततारका इन्द्रो ज्येष्ठा तैर्नर्तनमारभेत् संगीतकं च आरभेत् कस्मिन्सति लग्ने वर्तमाने ज्ञे गुरुवीक्षिते सति कैः हिबुकगैः सौम्यैः चतुर्थस्थानस्थितैः सौम्यग्रहैः शेषं प्राग्वत्॥ ७॥

वागीश्वरी—मेथि (मेह जिसमें बैलोंको बाँधकर दौनी दी जाती है) उसका आरोपण मुहूर्त्त बताया जा रहा है—

उत्तराफा. और अनुराधा रहित शेष विवाह के नक्षत्रों दुधारु वृक्ष (गुलर, वट···) का मेंथ रोपण मुहूर्त्त शुभ कहा गया है।

शाठी शाम आदि धान शरद और वसन्त ऋतु में, जो गेहूँ चना दोनों में दो फसलें तय्यार होकर अन्न देती हैं अतः नवान्न भक्षण भोजन में अन्नप्राशन में कथित तिथि नक्षत्रादि में नवान्न भक्षण मुहूर्त्त शुभ कहा गया है।

ज्येष्ठा, अनुराधा, हस्त, रेवती, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, पुष्य और शतभिषा नक्षत्रों, लग्नगत बुध पर बृहस्पति की दृष्टि, लग्न से चतुर्थगत शुभ ग्रह की स्थिति में नृत्य और संगीत का शुभारम्भ मुहूर्त्त शुभ होता है॥ ७॥

द्वीशार्केन्द्वदितीज्यवासवशिवाश्व्यन्त्याग्निपाशीन्द्रभैः

पूर्वाभिः शुभदा विसिंहभतनौ नानापशूनां क्रिया।

वारेष्वर्कचतुर्षु कोत्तरहरित्वाष्ट्रेष्वमारिक्तयो-
रष्टम्यां न हितोदितास्वभगभे न स्याद्भदोषः किल ॥ ८ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ नानापशूनां कर्म वृत्तेनैकेनाह—**द्वीशेति** । द्वीशं विशाखा अर्को हस्तः इन्दुर्मृगः अदितिः पुनर्वसुः ईज्यः पुष्यः वासवो धनिष्ठा शिवः आर्द्रा अश्विनी प्रसिद्धा अन्त्यं रेवती अग्निः कृतिका पाशी शततारका इन्द्रो ज्येष्ठा तैः पूर्वाभिस्तिसृभिः विसिंहभतनौ विगतः सिंहो येभ्यस्तानि विसिंहानि तानि च तानि भानि विसिंहभानि सिंहरहितराशयस्तेषां तनुः लग्नं तस्मिन् नानापशूनां क्रिया शुभदा उदिता पशूनां क्रयविक्रयादिकर्म शुभदं प्रोक्तमित्यर्थः । अथोत्तरार्धेन वर्ज्यमाह—अर्कचतुर्षु वारेषु रविचन्द्रभौमबुधवारेषु कोत्तरहरित्वाष्ट्रेषु कः रोहिणी उत्तरास्तिस्रः आसां समाहारः कोत्तरं हरिः श्रवणः त्वाष्ट्रं चित्रा एषु अमातिरिक्तयोः अमा अमावास्या रिक्ता चतुर्थीनवमीचतुर्दशीनामन्यतमा तयोः अष्टमी प्रसिद्धा तस्यां नानापशूनां क्रिया हिता न उदिता । अपवादमाह—स्वभगभे सति भदोषो नक्षत्रदोषः कचित्पशुकर्मणि न स्यात् लग्नबलं प्राग्वत् । उक्तं च "द्व्यादित्यद्विवसुद्व्यान्त्य-केन्द्रद्वीशः क्रियादिगोः । दर्शभूताष्टमीचित्राध्रुवकर्णैर्गमाद्यसत् ॥ सोमार्कवैधृतौ पाते लग्ने पञ्चानने बुधे । भद्रासंक्रान्तिरिक्तासु पशुकर्म विवर्जयेत् ॥ शुभग्रहोदये शुद्धनैधने स्वर्क्षयोनिषु । रक्षावृद्धिक्रिया शस्ता पशूनां मुनिभिः स्मृता ॥" इति । तथा चागमान्तरे "सोमे भौमे बुधे गावो न चाल्यास्तुरगाः शनौ ॥" इति । अन्यच्च "पूर्वात्रया-मृतमयूखहुताशनेषु शुक्राग्निवाजिवसुवारुणशांकरेषु । एतेषु गोमहिषदन्तितुरङ्गमादि नानाप्रकारपशुजातिगतिः प्रशस्ता ॥" इति ॥ ८ ॥

वागीश्वरी—पशुओं का क्रय-विक्रय मुहूर्त—

विषा-ह-मृग-पुन-पुष्य-धनिष्ठा-आर्द्रा-अश्वि-रेवती-कृति-शतता-ज्ये. और तीनों पूर्वा नक्षत्रों में सिंह लग्न रहित किसी भी लग्न में पशुओं का क्रय, विक्रय पालन-पोषणादि कर्म शुभ होते हैं ।

रवि-चन्द्र-मंगल और बुध ग्रह के वारों, रोहिणी तीनों उत्तरा श्रवण और चित्रा नक्षत्रों में, रिक्ता-अमा और अष्टमी तिथियों में पशुकर्म अशुभ होता है । पशु योनि संज्ञक नक्षत्र में उस पशु के पशु कर्म में दोष नहीं होता । पशु योनि नक्षत्र विवाह प्रकरण में कहे गये हैं ॥ ८ ॥

द्व्यादित्यद्विवसुस्थिराश्विभमृदुस्वात्यर्कभैर्ज्ञत्रया-
र्काराह्वीज्यभृगूदये द्विकमदेष्विन्दौ क्रियाऽश्वो हिता ।
तत्राप्यर्कभतः क्रमात्तिथिमितैः पञ्चात्त्रिभिः साभिजि-
च्छस्ता या नृसमा तदुक्तभमुखैः कार्या परा भैर्बुधैः ॥ ९ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथाश्वकर्म वृत्तेनाह—**द्व्यादित्येति**। द्व्यादित्यं पुनर्वसुपुष्यौ द्विवसु धनिष्ठाशततारके स्थिराणि प्रसिद्धानि अश्विनी प्रसिद्धा मृदूनि प्रसिद्धानि स्वाती प्रसिद्धा अर्को हस्तः तैः ज्ञत्रयार्कारह्नि ज्ञत्रयं बुधगुरुशुक्राः अर्कः सूर्यः आरो भौमः एषामहः दिनं तस्मिन् ईज्यभृगूदये उदये लग्ने ईज्यभृगौ इति ईज्यभृगूदयम् तस्मिन् गुरुशुक्रयुते लग्ने इत्यर्थः। द्विकमदेषु इन्दौ द्वि द्वितीयं कं चतुर्थम् मदः सप्तमम् एषु चन्द्रे सतीत्यर्थः। अश्वीक्रिया क्रयविक्रयादिकी हिता शुभकर्त्री स्यात्। अथाश्वचक्रमाह—तत्रापीति। तत्रापि द्व्यादित्यादिषु नक्षत्रेषु सत्स्वपि अर्कभतः सूर्यनक्षत्रात्सकाशात् क्रमात्तिथिमितैर्नक्षत्रैः पश्चादुत्क्रमतस्त्रिभिर्नक्षत्रैः साभिजित् यथा तथा अश्विनीक्रिया शस्ता शोभना स्यात्। एवं सामान्यतोऽश्वकर्मोक्त्वेदानीं विशेषमाह—येति। या अश्वीक्रिया नृसमा मनुष्यसदृशा सा क्रिया तदुक्तं भमुखैः कार्या तस्मै मनुष्याय उक्तानि भमुखानि नक्षत्रादीनि तैः कार्येत्यर्थः। परा या नृसमाना भवति सा एभिः सामान्यैर्द्व्यादित्यादिभिर्बुधैः कार्येत्यर्थः। लग्नबलं प्राग्वत्। तथा च नारदः "विविष्णुचरभे क्षिप्रे स्थिरभे मृदुभेषु च। वाजिकर्माखिलं सूर्यवारे कार्यं विशेषतः॥" इत्यादि। तथा चोक्तम् "घृतान्नचणकक्षीरतृणमुद्गादिभक्षणे। अन्नप्राशनवद्दक्षं स्नानं सौम्यग्रहोदये॥ चौलोक्तं क्षुरकर्मादौ भेषजे भेषजोदितम्। गर्भाधानोक्तमश्वानां मैथुने तु विलोकयेत्॥ गृहारम्भोदिते काले हयशाला विधीयते। शिक्षा विद्योक्तकाले च भूषणं भूषणोदिते॥ चर्मकर्मादिकं कार्यं जययोगे शुभोदये। एवं खरोष्ट्रादिकं कार्यं पूर्वाह्णे वाहनादिकम्॥" इति॥ ९॥

वागीश्वरी—घोड़े का क्रय-विक्रय विशेष—

पुन. पुष्य. धनि. शत. स्थिर और मृदु. संज्ञक नक्षत्र, अश्वि. स्वा. और हस्त नक्षत्रों, बुध-गुरु-शुक्र और मंगल के दिनों में गुरु और शुक्र की उदित स्थिति में, चन्द्रमा जन्मराशि से १।४।७ स्थानों में हो तो ऐसे समय घोड़े का क्रय-विक्रय लालन-पालन सभी शुभ होते हैं।

सूर्य नक्षत्र से सहित अभिजित आगे के १५ और पीछे के ३ नक्षत्र उक्त अश्व कर्म में शुभ अन्य अशुभ कहे गए हैं। प्रायः मनुष्य के स्वभाव और कर्म के समान घोड़े का भी स्वभाव होता है। अतः मानव के शुभ कर्म मुहूर्त्तों के समान घोड़े के (भक्ष भोजन स्नान मैथुनादि) के कर्मों का मुहूर्त्त विचार होना चाहिए॥ ९॥

भद्रासंक्रमपातवैधृतिसितेज्यार्कारषष्ठ्यादिषु

श्राद्धाहे प्रतिपद्द्वये परिहरेद्धेतुं विनाऽभ्यञ्जनम्।

माङ्गल्यं विजयोत्सवोऽब्दवदनं दीपावलिर्हेतवोऽ-

भ्यङ्गस्य क्वथितादितैलमनसन्निन्द्येऽह्नि नित्येऽखिलम्॥ १०॥

मार्तण्डवल्लभा—अथाभ्यङ्गनिषिद्धकालमाह—**भद्रेति**। भद्रा प्रसिद्धा संक्रमः संक्रान्तिः पातो व्यतीपातः वैधृतिः प्रसिद्धा सितः शुक्रवारः ईज्यो गुरुवारः अर्को रविवारः आरो भौमवासरः षष्ठ्यादयः सर्वास्तिथयः ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, ३० तासु, श्राद्धाहः श्राद्धदिनं प्रतिपद्द्वयं प्रतिपद्द्वितीये तस्मिन् हेतुं कारणं विना अभ्यञ्जनमभ्यङ्गं परिहरेत्। कारणे सति अवश्यं चरेदित्यर्थात्सिद्धम्। तथा चोक्तम् "सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नवम्यां प्रतिपत्तिथौ। चतुर्दश्यामथाष्टम्यां षष्ठ्यां चैव विशेषतः" ॥ इति। ग्रन्थान्तरे "चतुर्दश्यष्टमी चैव पौर्णमास्यर्कसंक्रमः। तैलस्नानं न कुर्वीत सुतबन्धुधनक्षयात्" ॥ इति। तथा च वृद्धमनुः "दर्शे स्नानं न कुर्वीत माता-पित्रोस्तुजीविनोः। नवम्यां च न चेत्तत्र निमित्तान्तरसंभवः॥ प्रतिपद्यनपत्यः स्याद् द्वितीयायामपत्निकः। दशम्यामधनः स्नाने सर्वं हन्ति त्रयोदशी ॥" इति। रत्न-मालायाम् "रविस्तापं कान्ति वितरति शशिर्भूमितनयो मृतिं लक्ष्मीं चान्द्रिः सुरपति-गुर्वित्तहरणम्। विपत्तिं दैत्यानां गुरुरखिलभोगानुभवनं नृणां तैलाभ्यङ्गात्सपदि कुरुते सूर्यतनये ॥" इति। अथाभ्यङ्गहेतूनाह—माङ्गल्यं विवाहादि विजयोत्सव आश्विनशुक्लदशम्यां क्रियते अब्दवदनं संवत्सरप्रतिपत् दीपावलिः प्रसिद्धा एतेऽभ्य-ङ्गस्य हेतवः कारणानि एषु निषिद्धतिथ्यादावपि अभ्यङ्गः कर्तव्यः। तथा चोक्तं व्यवहारसारे "वत्सरादौ वसन्तादौ सूतकान्ते महोत्सवे। दीपोत्सवचतुर्दश्यामभ्यङ्ग-नियमो न च ॥" इति। तथा चोक्तं स्कान्दे विजयादशमीविषयम् "निषिद्धमपि कर्तव्यं तैलाभ्यञ्जनमादरात् ॥" इति। अथाभ्यङ्गनिषिद्धापवादमाह–क्वथितादिति। निन्द्येऽह्नि क्वथितादितैलमनसच्छुभं स्यात्। आदिग्रहणात् सार्षपसुगन्धपुष्पवासितादितैलं गृह्यते। एवं क्वथितादितैलं निन्द्यदिनेऽपि शुभमित्यर्थः। उक्तं च "सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम्। द्रव्यान्तरयुतं वापि न दुष्यति कदाचन ॥ सूर्यशुक्रारवारेषु निषिद्धासु तिथिष्वपि। कर्त्तव्ये यदि वा स्नाने पक्वतैलं न दुष्यति ॥ रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिका। भार्गवे गोमयं क्षिप्त्वा तैलस्नानं सुखावहम् ॥" इति। अथ नित्याभ्यङ्गे विशेषमाह—नित्येऽखिलमिति। नित्येऽभ्यङ्गे अखिलं तैलं पक्वादिकमनसत् शुभं स्यात्। उक्तं च "नित्यस्नाने च कर्तव्ये तिथिदोषो न विद्यते।" इति ॥ १० ॥

वागीश्वरी—तेल आदि मालिश में वर्ज्य समय—

भद्रा, संक्रान्ति, व्यतीपात, वैधृति, शुक्र-गुरु-रवि-मंगल को छोड़ कर शेष दिनों, ६-७, ८, ९-१०-११-१२-१३-१४-१५ तिथियों से रहित तिथियों, माता और पिता की श्राद्ध तिथियों से रहित तिथियों और प्रतिपद और द्वितीयादि तिथियों में उत्सव आदि में सकारण ही तेल लगाया जा सकता है (अकारण ये भी तेल में वर्ज्य हैं) तेल मर्दन आदि वर्ज्य कही गई हैं।

वैवाहिक मंगलोत्सव कार्यों में, विजयादशमी वर्षारम्भ और दीपावलि में तैलाभ्यङ्ग शुभ कहा गया है। पकाया हुआ सुगन्धित तेल निन्दित दिनों में भी लगाया जा सकता है। नित्य नैत्यिक नियमों में तेल लगाकर स्नान कर लें नित्य लगा सकते हैं ॥ १० ॥

दिग्विश्वाद्रिदृगङ्कदर्शतिथिषु स्नानं न धात्रीफलैः
श्रीकामोऽथ बुधाम्बुपर्क्षपितृभाभ्यङ्गात्पतिघ्न्यङ्गना ।
पुत्री सोमदिने प्रसूर्यमपितृत्वाष्ट्रेन्दुमिश्रांबुप-
क्रव्यादेश्वरभे कुपुत्रहरिजे स्नायान्निशास्येऽपि न ॥ ११ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ प्रसंगेन तिलामलकस्नाने निषिद्धतिथीनाह—**दिगिति** । दिक् दशमी विश्वे त्रयोदशी अद्रिः सप्तमी दृक् द्वितीया अङ्को नवमी दर्शो अमावास्या एतासु तिथिषु श्रीकामः धात्रीफलैः आमलकीफलैः स्नानं नाचरेत् । तथा चोक्तम् "यः करोति दशम्यां च स्नानमामलकैः सह । पुत्रहानिर्भवेत्तस्य त्रयोदश्यां धनक्षयः ॥ अर्थपुत्रक्षयस्तस्य द्वितीयायां न संशयः । अमायां च नवम्यां च सप्तम्यां च कुलक्षयः ॥" इति । अथ स्त्रीणां बुधादिषु अभ्यङ्गनिषेधमाह—बुधो बुधवारः अम्बुपर्क्षं शततारका पितृभं मघा तेषु अभ्यङ्गस्तस्मात् अङ्गना स्त्री पतिघ्नी स्यात् । उक्तं च "स्नानं कुर्वन्ति या नार्यश्चन्द्रे शतभिषग्गते । सप्तजन्म भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम् ॥" इति । त्रिविक्रमशते "स्नानं नारार्कशुक्रेज्यविष्टिसंक्रान्तिपर्वसु । द्व्यष्टषड्दिक्त्रयोदश्यां स्त्रियस्तु न मघाबुधैः ॥" इति । अथ पुत्रवतः सोमवारेभ्यङ्गनिषेधमाह—पुत्रीति । पुत्रवान् सोमवारे न स्नायात् । उक्तं च "पुत्रवान् स्वगृहे नित्यं न स्नायादुत्तरामुखः । सोमवारे तथाभ्यङ्गं वर्जयेत्सर्वथा बुधः ॥" इति । अथाप्रसंगेन प्रसूतिकास्नाने निषेधकालमाह—प्रसूरिति । यमो भरणी पितरो मघा त्वाष्ट्रं चित्रा इन्द्रो ज्येष्ठा मिश्रे कृत्तिकाविशाखे अम्बुपः शततारा क्रव्यादो मूलम् ईश्वरभमार्द्रा एषां समाहारस्तस्मिन् । कुपुत्रहरिजे कुत्सितः पुत्रः पुत्रभावो यस्य तत्कुपुत्रं तच्च तद्धरिजं च तस्मिन् यस्माल्लग्नात्पञ्चमस्थः पापग्रहो भवति तस्मिन्नित्यर्थः । निशास्यं रात्रिमुखं सायंकालस्तस्मिन् प्रसूता न स्नायात् । शेषं लग्नबल प्राग्वत् । उक्तं च "मघामूलविशाखार्द्राचित्रादितियमद्वये । ज्येष्ठासार्पजलेशर्क्षे नैव स्नायात्प्रसूतिका ॥ शुभग्रहयुते लग्ने पञ्चमे पापवर्जिते । परित्यज्य महादोषान् सूतिका स्नानमाचरेत्" ॥ ११ ॥

वागीश्वरी—अपने शुभ भविष्य की शुभ कामना की शुभेच्छु व्यक्ति ने दशमी, द्वितीया, त्रयोदशी, सप्तमी, नवमी और अमावास्या तिथियों में आँवला से स्नान नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार सौभाग्यवती स्त्री ने भी बुधवार तथा मघा, शतभिषा नक्षत्रों में तेल से उबटन नहीं लगाना चाहिए । तथा पुत्रजीवी पुत्रवान् पुरुष ने भी सोमवार के दिन तेल अभ्यंग स्नान नहीं करना चाहिए ।

भरणी, मघा, चित्रा, ज्ये, विषा, कृतिका, शत, मूल और आर्द्रादि नक्षत्रों, पञ्चमस्थानस्थ पापग्रह की ही स्थिति में लग्न राशि में और सन्ध्या समय प्रसूति स्त्री को स्नान नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

मन्दारान्यदिने मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्बलक्षे सुधा
योगे भेषजमाचरेत्सुमृतिकेन्द्रारिव्ययाङ्गे भिषक् ।
तद्द्यादिह विध्रुवेन्दुतनयप्रद्योतने रोगिणेऽ-
सृक्स्रावव्रणकर्मसूर्यकुजयोरह्नीह केन्द्रस्थयोः ॥ १२ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथौषधनिष्पादनमाह—मन्देति । मन्दः शनिः आरो भौमः ताभ्यामन्ये रविचन्द्रबुधगुरुशुक्रास्तेषां दिनं तस्मिन् मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्नक्षत्रैः वलक्षे शुक्लपक्षे सुधायोगे अमृतयोगे ग्रन्थान्तरप्रसिद्धे । सुमृतिकेन्द्रारिव्ययांगे शोभनानि पापग्रहरहितानि मृतिकेन्द्रारिव्ययानि यस्य तत् सुमृतिकेन्द्रारिव्ययं तच्च तत् अङ्गं च तस्मिन् भिषक् वैद्यः भेषजमाचरेत् कुर्यात् । शेषं लग्नबलं प्राग्वत् । अथौषधदानमाह—तदिति । तदौषधमिहानन्तरोक्तं भादौ दद्यात् । कथंभूते इह विध्रुवेन्दुतनयप्रद्योतने ध्रुवनक्षत्रबुधरविरहिते । अथ रक्तस्रावव्रणयोर्विशेषमाह—असृक्स्रावो रक्तस्रावः व्रणः क्षतम् अनयोः कर्म सूर्यकुजयोरह्नि दिवसे आचरेत् कयोः सतोः इहानयोः सूर्यकुजयोः केन्द्रस्थयोः सतोः । तथा चोक्तम् "मन्दारवर्जिते वारे चरक्षिप्रमृदुध्रुवैः । सूर्यसौम्यैः केन्द्रगतैर्भेषजोत्पादनं हितम् ॥ रक्तस्रावं कुजे कुर्यात्तद्धोरायामथापि वा । कुजकेन्द्रेऽथवा मन्दे रवौ वा विखलेऽष्टमे । व्रणक्रिया कुजे सूर्ये केन्द्रगे तद्दिनेऽष्टमे । शुद्धे षष्ठे च संक्रूरे चरलग्ने युतस्वरे ॥" इति ।। १२ ॥

वागीश्वरी--औषधि निर्माण मुहूर्त्त—

शनि-मंगल रहित दिनों में, मृदुध्रुव-चर और क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों में, शुक्लपक्ष, अमृत योग, जिस लग्न में ८।१।४।७।१०।६।१२ स्थान पाप रहित और शुभग्रह युत हों, ऐसे लग्न में वैद्य से औषधि निर्माण किया जाना शुभप्रद होता है।

ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र रहित और बुध-रविवार रहित वारों और उक्त कथित नक्षत्रों में वैद्य द्वारा रोगी को औषधि दी जानी चाहिए।

रवि और मंगल वारों में, तथा लग्न से भी सूर्य और मंगल केन्द्रस्थ हों तो नाड़ी से दूषित रक्त का स्राव (निकालना) और घाव को चिरवाना भी शुभ कहा गया है ॥ १२ ॥

याम्याहित्रयवायुमूलजलपोपान्त्येन्द्रहस्ताम्बुभे
शान्त्याजद्विपयोर्नृपैर्नवदिनैरन्यत्र रुग्णो विरुक् ।
आदित्याह्यनिलध्रुवान्त्यपितृभे शक्रेन्दुवारेगद-
त्यक्तस्नानमनिष्टमिष्टमशुभे भादौ खलास्तस्थिरे ॥ १३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ प्रसङ्गेन रोगमुक्तिदिवसानाह वृत्तार्द्धेन—**याम्यमिति ।** याम्यं भरणी अहित्रयम् आश्लेषात्रयं वायुः स्वाती मूलं प्रसिद्धम् जलपः शततारका

उपान्त्यमुत्तराभाद्रपदा इन्द्रो ज्येष्ठा हस्तः प्रसिद्धः अम्बुभं पूर्वाषाढा अस्मिन्नक्षत्रगणे रुग्णः रोगी शान्त्या यथोक्तशान्तिकेन विरुक् ज्वरमुक्तो भवति। अजद्विपयोः श्रवण-विशाखयोः रुग्णः नृपैः षोडशभिर्दिनैः विरुक् स्यात्। अन्यत्र अन्येषु नक्षत्रेषु रुग्णो नवदिनैर्विरुक् भवति। एतज्ज्योतिषार्काभिप्रायं किंचिद्रत्नकोशाभिप्रायमुक्तम्। तत्र येषु नक्षत्रेषु ज्वरितस्य मृत्युरुक्तः येषु च कृच्छ्रेण बहुभिर्दिनैर्ज्वरमुक्तिरुक्ता तत्फलमत्र शान्त्या विरुगित्युक्तम्। क्वचिदन्यथाफलदर्शनात्। तथा येषु येषु नक्षत्रेषु सप्तभिरेका-दशभिर्दिनैर्ज्वरनिर्मोचनमुक्तम्, तत्फलमत्र मध्यमत्वेन नवदिनैर्विरुगित्युक्तम्। ग्रन्थ-लाघवाय स्वल्पान्तरत्वात्। तथा च ज्योतिषार्के "सप्ताहमृतिनन्दाद्रिरुद्रमृत्युनगाद्रिभिः। कृच्छ्रे मृत्युर्मृतीशैश्च कृच्छ्रेशव्यसुना नृपैः॥" इत्यादि। अथोत्तरार्द्धेन रोगमुक्तिस्नान-माह—आदित्येति। आदित्यं पुनर्वसुः अहिराश्लेषा अनिलः स्वाती ध्रुवाणि पूर्वोक्तानि अन्त्यं रेवती पितृभं मघा अस्मिन्नक्षत्रगणे शुक्रेन्दुवारे शुक्रसोमवारे गदत्यक्तस्नानं रोगमुक्तस्नानमनिष्टं स्यात्। तर्हि कुत्र कर्तव्यमित्यत आह—अशुभे भादौ इष्टं शुभं स्यात्। कस्मिन् सति खलास्तस्थिरे सति खलः पापग्रहः आस्ते यस्य तत्तथा तच्च तत् स्थिरं च तस्मिन् स्थिरलग्ने पापे सप्तमे सतीत्यर्थः। तथाचोक्तम्—"वैधृतौ च व्यतीपाते भद्रायां धिष्ण्यसंक्रमे। रोगमुक्तो नरः स्नायात्कुवारर्क्षतिथिष्वपि॥ द्यूनं पापयुतं शस्तं दशमं च शुभान्वितम्। सौम्यं क्रूरयुतं रन्ध्रं रोगस्नानेरिभं तथा।" इति। चन्द्रबलं सर्वत्र योज्यम्। कुतिथिभादौ सदित्यनेन चन्द्रादिबलविषये मोहो मा भूदित्यतः चन्द्रबलं सूचितम्। यतः ग्रन्थादौ गर्भाधाने सदा इत्युक्तं तत्सर्वकर्मसु ज्ञेयमिति सर्वग्रन्थकारसंमतम्। तथा चोक्तं संहितायां स्पष्टम् "स्नायाद्रोगविमुक्तस्तु शुभयोश्चन्द्रतारयोः।" इति॥ १३॥

वागीश्वरी—कथित ग्यारह नक्षत्रों—भरणी, श्ले. मघा. पू. फा. स्वा. मू. श. उ. भा. ज्ये. ह. और पू. षा. में रोग की उत्पत्ति होने से शान्ति कर्म से रोग निवृत्ति हो जाती है। श्रवण, विषा. नक्षत्रों की रोगोत्पत्ति से १६ दिनों में रोग निवृत्ति होती है। शेष नक्षत्रों में उत्पन्न रोग की निवृत्ति ९ दिन में हो जाती है।

पुनर्व, श्लेषा, स्वा, ध्रुव संज्ञक, रेवती, मघा—इन ९ नक्षत्रों तथा शुक्र-सोमवार के दिन रोगमुक्ति स्नान शुभ नहीं होता है। अशुभ तिथिवारादि नक्षत्रों, सप्तमस्थानस्थ पाप ग्रह के स्थिर लग्न में रोगविमुक्त स्नान शुभाय होता है॥ १३॥

द्रव्यं संव्यवहारतो लघुचरैर्योज्यं चरांगे बुधै-
र्धर्माष्टात्मजगेऽथ तस्य हरणे हस्तो रविर्ज्ञः कुजः।
संक्रान्तिर्भरणी त्रिपुष्करयमौ कुम्भान्त्ययोश्चन्द्रमा
वृद्धिश्चेति शुभाविदून इह यत्कुर्यादृणं तत्स्थिरम्॥ १४॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ व्यवहारद्रव्यं वृत्तेनैकेनाह—**द्रव्यमिति**। सुवर्णादि संव्यवहारतः कुसीदव्यवहारेण लघुचरैर्नक्षत्रैर्योज्यं देयमित्यर्थः। क्व चराङ्गे चरलग्ने। कस्मिन् सति बुधे धर्माष्टात्मजगे सति धर्मो नवमम् अष्टमं प्र० आत्मजः पञ्चमम् एष्वन्यतमस्थानगते सतीत्यर्थः। अन्यत्पूर्वोक्तं ज्ञेयम्, अथानन्तरं तस्य प्रयुक्तस्य हरणं पुनर्ग्रहणं तस्मिन्विषये। हस्तो नक्षत्रं रविः रविवारः ज्ञो बुधवारः कुजो भौमवारः संक्रान्तिः सूर्यसंक्रमणदिनं भरणी प्रसिद्धा त्रिपुष्करो योगः यमो यमलयोगः त्रिपुष्करयमलयोगौ ग्रन्थान्तरे प्रसिद्धौ। रत्नमालायाम् "विषमचरणं धिष्ण्यं भद्रातिथिर्यदिसंस्पृशेत्सुरगुरुशनिक्षमापुत्राणां कथंचन वासरे। मुनिभिरुदितः सोऽयं योगस्त्रिपुष्करसंज्ञकः" इत्यादि॥ कुम्भान्त्ययोश्चन्द्रमाः धनिष्ठापञ्चकम् वृद्धिर्वृद्धियोगोऽपि शुभः हस्तादयोऽत्र स्वकीयद्रव्यग्रहणे शुभाः विदूने बुधदिनं विना इह हस्तादौ यदृणं कुर्यात् तत्स्थिर स्यात्। तथा चोक्तम्। "चरैः क्षिप्रैश्चरे लग्ने बुधे धर्मसुताष्टमे। व्यवहार विना द्रव्यप्रयोगो मुनिभिः स्मृतः॥ भरण्यां संग्रहं कुर्यात् पञ्चके ज्ञे त्रिपुष्करे। ऋणकर्म चरैः क्षिप्रैर्ऋणच्छेदः कुजे हितः॥ पञ्चके पञ्चगुणितं त्रिगुणं च त्रिपुष्करे। यमले द्विगुणं प्रोक्तं हानिवृद्ध्यादिकं बुधैः॥ ऋणं भौमे न कुर्वीत न देयं बुधवासरे। ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात् संचयं सोमनन्दने॥ हस्तार्कवारे संक्रान्तौ यदृणं स्यात्कुलेषु तत्। वृद्धियोगे तथा ज्ञेयमृणच्छेदं तु कारयेत्॥" इति॥ १४॥

वागीश्वरी—द्रव्य प्रयोग (ऋण लेना देना) बताया जा रहा है—

लघु, चर संज्ञक नक्षत्रों, चर लग्नों, लग्न से बुध ग्रह ९।८।५ स्थानों में स्थित हो द्रव्य वृद्धि की इच्छा (व्याज = सूद) से द्रव्य का प्रयोग करना चाहिए।

ऋण दिये हुये द्रव्य के वापसी (वसूली) में हस्तनक्षत्र, रवि-बुध-मंगल वारों, संक्रान्ति का दिन भरणी नक्षत्र द्विपुष्कर और त्रिपुष्कर योग, कुम्भ और मीन राशि का होना शुभ कहा गया है। बुधवार को छोड़कर उक्त तिथि नक्षत्रादि में लिया गया ऋण से छुटकारा नहीं मिलता।

"न च बुधे देयं कदाचिद्धनम्" बुधवार को ऋण भूल के भी न दिया जाय॥ १४॥

तीक्ष्णोग्रध्रुवमिश्रवायुषु धनं नष्टादिकं नैति काद्
भेऽब्ध्याप्ते त्रिखशेषयोर्न नतमेत्यन्त्याम्बुशुद्धौ क्षिपेत्।
विद्यां प्रोक्तवदिष्टदेवतिथिभेऽथ द्वीशमूलध्रुवै-
र्मृद्वश्वीज्यकराम्बुपैः सुजखाब्जाङ्गे तरून् रोपयेत्॥ १५॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ तीक्ष्णादिषु नष्टादिद्रव्यस्य प्राप्तिं तथा द्रव्यनिक्षेपं वृत्तार्द्धेनाह—**तीक्ष्णेति**। तीक्ष्णोग्रध्रुवमिश्राणि पूर्वोक्तानि वायुः स्वाती एषु नष्टादिकं धनं नष्टप्रयुक्तविनिक्षिप्तादिकं सुवर्णादिकं द्रव्यं नैति। तथार्कात् रोहिणीनक्षत्रात् भे इष्टनक्षत्रेऽब्ध्याप्ते चतुर्भक्ते सति त्रिखशेषयोः गतं न एति। अथ द्रव्यनिक्षेपमाह—

अन्त्याम्बुशुद्धौ क्षिपेत् धनमित्यनुषङ्गः अन्त्यं द्वादशम् अम्बु चतुर्थम् अनयोः शुद्धिः पापराहित्यम् तस्यां सत्यां क्षिपेत् निक्षिपेदित्यर्थः। तथा चोक्तम् 'साधारणोग्रतीक्ष्णेषु स्वात्यां द्रव्यं न लभ्यते। दत्तं प्रयुक्तं निक्षिप्तं नष्टमित्याह नारदः॥'' अथ नृसिंहादि-मन्त्रविद्यासाधनमुहूर्त्तं तथा वृक्षारोपणमुहूर्त्तमुत्तरार्द्धेनाह—विद्यामिति। विद्यां मन्त्र-विद्यां प्रोक्तवत् वेदविद्योक्तभादौ विद्यां मौञ्ज्यक्तभादौ इत्याद्युक्तेः। तथा स्वदेवतिथिभे स्वेष्टदेवतिथिनक्षत्रे साधयेत्, गुरुमुखात् गृह्णीयादित्यर्थः। तत्र आगमोक्तमन्त्रग्रहणे अनध्यायदोषो नास्ति। तत्तु स्वदेवतिथिभे इत्यनेनैव पदेन परिहृतम्। तथा चोक्तम् ''मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्वारार्कौ धर्मसत्क्रिया। कार्या विद्योक्तभैर्दीक्षा स्वदेवतिथिभेषु च॥'' इति। अथ वृक्षारोपणमाह—द्वीशं विशाखा मूलं प्रसिद्धम् ध्रुवमृदूनि पूर्वोक्तानि अश्विनी प्रसिद्धा ईज्यः पुष्यः करो हस्तः अम्बुपः शततारा एभिर्नक्षत्रैः तरून् पादपान् रोपयेत्। कस्मिन् सुजलखाब्जांगे अङ्गेऽब्जः अब्जाङ्गम् अङ्गं लग्नं तस्मिन्नब्जः जल-चरराशिश्चन्द्रो वा तदब्जाङ्गमुच्यते। जलं च खं च जलखे शोभने जलखे यस्य तत् सुजलखं तच्च तत् अब्जाङ्गं च सुजलखाब्जांगं तस्मिन् शोभने पापग्रहरहिते जलखे चतुर्थदशमे यस्याब्जाङ्गस्य तस्मिन्नित्यर्थः। शेषं पूर्ववत्॥ १५॥

वागीश्वरी—वृक्षारोपणादि मुहूर्त्त बताया जा रहा है—

तीक्ष्ण-मिश्र-ध्रुव उग्र संज्ञक नक्षत्रों और स्वाति में नष्ट या चोरी गया या किसी को दिया गया धन फिर वापस नहीं मिलता। रोहिणो नक्षत्र से आरम्भ कर इष्ट दिन की नक्षत्र संख्या में ४ से भाग देने पर यदि ३ या ० शून्य हो तो बुध द्रव्य की प्राप्ति नहीं होती है।

लग्न से ४।१२ स्थान शुभ युक्त पाप रहित होने से द्रव्य को सुरक्षित स्थान पर रखना शुभावह कहा गया है।

अभीष्ट देवी देवों की मन्त्र दीक्षा में उसी देवी देव के तिथिवार नक्षत्रों के विद्या-रम्भोक्त मुहूर्त्त में गुरुमुख से उस देवता का मन्त्र ग्रहण दीक्षा शुभावह होता है।

ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों के साथ विषाखा-मूल, मृदु संज्ञक नक्षत्र, अश्वि पुष्य हस्त और शतभिषक जलचर राशि लग्न में चतुर्थ दशम स्थान शुभग्रह युत दृष्ट होते समय आमादि अनेक अभीष्ट वृक्षों का लगाना रोपण मुहूर्त्त उत्तम कहा गया है॥ १५॥

उद्वाहर्क्षहरित्रयादितिहयेज्यर्क्षैस्तडागादयो
ज्ञेज्याब्जैस्तनुगैः सिते दशमगे सिद्ध्यन्ति सद्वासरे।
राजेक्षाश्रवणत्रयध्रुवमृदुक्षिप्रैः स्वकेन्द्रायगैः
सौम्यैः शान्तिकपौष्टिके सचरभैरेतैः सुधर्मोदये॥ १६॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वापीकूपादीन् वृत्तार्द्धेनाह—उद्वाहेति। उद्वाहर्क्षाण्ये-कादशसंख्यानि पूर्वोक्तानि हरित्रयं श्रवणत्रयं अदितिः पुनर्वसुः हयोऽश्विनी ईज्यः

पुष्यः एभिस्तडागादयो जलाशयाः सिद्धयन्ति। कैः ज्ञेज्याब्जैस्तनुगैः ज्ञो बुधः ईज्यो गुरुः अब्जश्चन्द्रः जलचरराशिश्च एतैस्तनुगैः लग्नगतैः। कस्मिन् सति सिते दशमगे सति शुक्रे दशमगे सति। क्व सद्वासरे सद्ग्रहवासरे इत्यर्थः। तथा चोक्तम्॥ "चित्रा-स्वातिपुनर्वसूमृगशिरोमूलाश्विनीरोहिणीहस्तः पुष्यधनिष्ठक शतभिषग् मित्रोत्तरा-रेवती। एतेषु श्रवणान्वितेषु मकरे लग्ने च कुम्भे झषे वापीकूपजलाशयादिखननं शस्तं प्रशस्ते दिने"॥ अन्यच्चोक्तम् "सर्वतोयाशयारम्भः कर्तव्यो विबलैः खगैः। लग्नस्थे ज्ञेऽथवा जीवे लग्नभेऽब्दे स्थिते खगे॥" इति। अथोत्तरार्द्धेन राजदर्शन-शान्तिकपौष्टिकं चाह—राजेक्षेति। श्रवणत्रयध्रुवमृदुक्षिप्रैर्नक्षत्रैः राजेक्षा राजदर्शनं कार्यम्। सुगमम्। पुनः कैः सौम्यग्रहैर्द्विकेन्द्रायगैः २, १, ४, ७, १०, ११, लग्नात् द्वि २ केन्द्र १, ४, ७, १० आय ११ गैः शुभग्रहैरित्यर्थः। शेषं प्राग्वत्। शान्तिकपौष्टिके एतैरेव नक्षत्रैः श्रवणत्रयादिभिर्विधेये। कथंभूतैरेभिः सचरभैः चरनक्षत्रसहितैः। कस्मिन् सति सुधर्मोदये शोभनः पापरहितः धर्मो नवमं यस्य स सुधर्मः स चासावुदयश्च स तथा उदयो लग्नं तस्मिन्नित्यर्थः। शेषं पूर्ववत्॥ १६॥

वागीश्वरी—जलाशय दिशा आरम्भ बताया जा रहा है—

विवाह योग्य नक्षत्रों के साथ श्रवण-धनि-शत पुन अश्वि और पुष्य नक्षत्रों में बु-बृ-च की लग्नगत स्थिति में, चं बु-बृ और शुक्र ग्रहों के वारों (दिनों) में पोखरा तालावादि जलाशयादि आरम्भ शुभ होता है।

ध्रुव-मृदु-क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों के साथ श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में, लग्न से शुभग्रह द्वितीय और केन्द्रगत और एकादशस्थ होने से राजदर्शन मुहूर्त्त उत्तम कहा गया है।

इसी श्लोक में उक्त नक्षत्रों के साथ चर संज्ञक नक्षत्रों में लग्न से नवम भवन की शुद्धि में ग्रहशान्ति और विघ्नेशादि (गणेश शान्वि) शुभ कही गई है॥ १६॥

दिव्यं नैव मलिम्लुचे विधुसितेज्यास्ते रवावष्टमे
मन्दाराह्नि खलोदये स्थिरतनौ कुर्यात्कृतेऽदोऽन्यथा।
श्रीशैलग्रहणायनेषु विषुवे संकीर्णजातावुपा-
त्कृत्युत्सर्गवधूप्रवेशनगयागोदासु नित्याब्दिके॥ १७॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ वृत्तार्द्धेन दिव्यमाह—**दिव्यमिति**। मलिम्लुचे मासे विधुसितेज्यास्ते विधुश्चन्द्रः सितः शुक्रः ईज्यो गुरुस्तेषामस्ते विधोरस्तः कृष्णपक्षे भवति। रवावष्टमे गोचरेण सूर्येऽष्टमे मन्दाराह्नि शनिभौमदिने खलोदये पापराश्युदये यद्वा उदये खलः खलोदयस्तस्मिन् स्थिरलग्ने दिव्यं नैव कुर्यात्। अत्र दिव्ये कृते सति अदो दिव्यमन्यथा विपरीतं स्यात् असत्यवादिनो जयकरी भवतीत्यर्थः। अर्थादन्यत्र कर्तव्यमिति सिद्धम्। लग्नबलं प्राग्वत्। अथ गुरुशुक्रयोर्मौढ्यदोषः कुत्र कुत्र नास्तीति

वृत्तार्द्धेनाह—श्रीशैलः प्रसिद्धः यत्र मल्लिकार्जुनाभिधानं लिङ्गमस्ति। ग्रहणं सूर्यचन्द्रयोः अयने दक्षिणोत्तरे विषुवं मेषतुलासंक्रमः संकीर्णजातिर्हीनजातिः उपाकृतिरुपाकर्म उत्सर्गश्छन्दसामुत्सर्गः वधूप्रवेशनं प्रसिद्धम् गया प्रसिद्धा गोदा गोदावरी नित्याब्दिकं प्रतिवर्षं यत् क्रियते यथा नवरात्रम् ॥ १७ ॥

वागीश्वरी—दिव्य (शपथ ग्रहण) का शुभ समय बताया जा रहा है—

अधिक मास में, गुरु-चन्द्र और शुक्र के अस्त होने पर, जन्म राशि से सूर्य की आठवीं स्थान स्थिति पर, शनि और मंगल ग्रहों के दिनों (वारों) में, पापग्रह की राशि के लग्नों में, और लग्न में पाप ग्रह की स्थिति के साथ स्थिर लग्न में शपथ नहीं लेनी चाहिए। द्यूतादि कर्म में भी उक्त समयों का उपयोग पराजय (हार = हानिप्रद) प्रद होता है। अर्थात् जिस कार्य की शपथ ली जाती है वह प्रतिकूल होती है।

गुरु-शुक्र के अस्त दोष का अपवाद बताते हैं—

प्रसिद्ध मल्लिकार्जुन शिवलिङ्ग जहाँ है उस शैल पर्वत पर, सूर्य चन्द्र ग्रहण में, दक्षिणोत्तर अयन समयों में, मेष तुला संक्रान्ति समय में, सङ्कीर्ण जातियाँ, उपाकर्म और उत्सर्ग (छन्दों का), वधू प्रवेश, गोदावरी और गया श्राद्ध, नित्यादिक प्रतिदिन मास वर्ष में किया जाने वाले कृत्य जैसे नवरात्र (नित्य कर्म) शेष अग्रिम (श्लोक से सम्बन्ध है) ॥ १७ ॥

ईशानाहिबलौ हरेः शयनपर्यावर्तने नैत्यके
याने जीर्णगृहेऽवरोहमदनारोपे पवित्रार्पणे।
चातुर्मास्यविधौ न जीवसितयोर्मूढत्वदोषोऽष्टका-
सूत्साहाम्बरधारणेषु गदितो गर्भादिसप्तस्वपि ॥ १८ ॥

मार्तण्डवल्लभा—ईशानेति। ईशानाहिबलिः प्रसिद्धः अहिबलिः सर्पबलिः हरेः शयनपर्यावर्तने विष्णोः शयनमाषाढशुक्लद्वादश्यां भवति। पर्यावर्तनं भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां भवति। नैत्यकं यानं नित्यगमनं जीर्णगृहं प्रसिद्धम् अवरोहः देवानां दोलारोहः पूजाविशेषः दमनारोपश्चैत्र्यां पवित्रार्पणं श्रावण्यां चातुर्मास्यव्रते अष्टकापर्वणि या ऋक्षनाम्नां मासानां कृष्णाष्टम्योऽष्टकाः मार्गपौषमाघफाल्गुनानां कृष्णाष्टम्य इत्यर्थः। उत्साहाः पुत्रोत्पत्त्यादयः अंशुकधारणं वस्त्रधारणम् एषु जीवसितयोर्गुरुशुक्रयोर्मूढत्वदोषो नास्तीत्यर्थः। केवलमेषु गर्भादिसप्तस्वपि गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तेषु सप्तसु संस्कारेषु मूढत्वदोषो न गदितः गर्भाद्यन्नाशनान्तेष्वित्यत्र श्लोके यद्यप्युक्तं तथाप्यत्र प्रसङ्गादुक्तम्। तथा च गर्गः "नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिजीर्णके ॥ वधूप्रवेशमाङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः" ॥ भृगुः "उपाकर्मोपसर्जनं पवित्रदमनार्पणम्। अवरोहः सहेमन्तः सर्पाणां बलिरष्टकाः ॥ ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम्। कुर्याच्छुक्रगुरोर्मौढ्येऽपीतीतिसुविनिश्चयात्" ॥ धर्मप्रदीपे—"गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये। अयने विषुवे चैव चातुर्मास्यव्रतेषु च ॥ उत्सवेषु च सर्वेषु सीमन्त ऋतुकर्मणि। सुरासुरेज्ययोश्चैव मौढ्यदोषो न विद्यते" ॥ कालनिर्णये

"नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ। कार्या चैवं स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः" ॥ मत्स्यपुराणे "मौढ्येऽपि च प्रकर्तव्या मिश्रजातिक्रियाः शुभाः। सुरेज्यशुक्रयोर्वर्णी क्रियाश्चौलादिका न च" इति ॥ १८ ॥

वागीश्वरी--ईशान वलि कर्म, सर्प वलि, विष्णु शयन, पार्श्व परिवर्तन (भाद्र शुक्ल एकादशी), नित्य यात्रा, पुराना घर, देवी देवों का दोलारोहण, चैत्रपूर्णिमा का दमनरोपण, पवित्रार्पण (श्रावणी पूर्णिमा में), चातुर्मास्य व्रत, मार्ग-पौष-माघ-फाल्गुन अष्टका कृत्य, पुत्र पौत्रादि के जन्मोत्सवादि, वस्त्र धारण, गर्भाधान से अन्न प्राशन तक के संस्कार··· आदिकों में गुरु और शुक्र के अस्त होने का दोष नहीं होता फलतः उक्त कर्म गुरु और शुक्र के अस्त होने पर भी किये जाते हैं ॥ १८ ॥

शुक्रेज्यास्तमयेऽधिकक्षयजनुर्मासेषु जन्मर्क्षके
नापूर्वामरतीर्थदर्शनमियाद् गोदागयाभ्यामृते ।
एष्वाषाढसहस्यविष्णुशयनेष्वप्यन्तकर्म त्यजेद्
यद्वर्षाधिकलम्बितं भवति तद् गोदागयातोऽन्यतः ॥ १९ ॥

मार्तण्डवल्लभा--अथ तीर्थयात्रानिषेधं च सापवादं वृत्तैकेनाह--**शुक्रेति**। शुक्रेज्ययोः अस्तसमये अधिकः अधिमासः क्षयः क्षयमासः जनुर्मासो जन्ममासः तेषु जन्मर्क्षके जन्मनक्षत्रे अपूर्वं प्रथमं तीर्थामरदर्शनं तन्निमित्तं न इयान्न गच्छेत्। काभ्यामृते गोदागयाभ्यामृते गोदागययोर्दर्शनं सदैव कुर्यादित्यर्थः। प्रेतकर्मनिषेधमाह--एष्विति। एषु गुरुशुक्रास्तादिषु आषाढः प्र० सहस्यः पौषः विष्णुशयनेष्वपि यद्वर्षाधिकलम्बितं प्रेतकर्म भवति तत्त्यजेत्। गोदागयातोऽन्यतः गोदागययोः सदैव कार्यम्। आषाढशुक्लद्वादश्यादि कार्तिकशुक्लद्वादशीपर्यन्तं विष्णुशयनम्। तथा चोक्तम् "बाल्ये वा यदि वा वृद्धे शुक्रे चास्तमुपागते। मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम्" ॥ व्यासः "अधिमासे च जन्मर्क्षे नष्टयोर्गुरुशुक्रयोः। तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥ मलमासेष्वनावृत्तं तीर्थस्नानं विवर्जयेत्। अनादिदेवतां द्रष्टुं शुचिः स्यान्नष्टभार्गवे" ॥ तीर्थखण्डे "गुरुशुक्रास्तादिदोषः प्रोक्तो यस्तीर्थयायिनाम्। अपूर्वयायिनामेष न त्वसौ पूर्वगामिनाम्" ॥ पितृखण्डे "शुक्रस्यास्तमने चैव देवेज्यस्य तथैव च। प्रेतकार्यं प्रदुष्येत प्रथमं वत्सरं विना" ॥ माण्डव्यः "मलिने जन्ममासे वा मौढ्ये वा गुरुशुक्रयोः। तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥" गरुडपुराणे "न कुर्याद्गुरुशुक्रास्ते पुष्ये स्वापे मलिम्लुचे। विलम्बितं प्रेतकार्यं गयां गोदावरीं विना" ॥ मेधातिथिः "अस्तङ्गते गुरौ शुक्रे पुष्याषाढाधिमासके। प्रेतकार्यं न कुर्वीत गयां गोदावरीं विना" ॥ प्रेतमञ्जर्यां "प्रेतकार्याणि सर्वाणि व्रतस्नानजपादिकम्। वर्ज्यं शुक्रेज्ययोरस्ते गयां गोदावरीं विना" इति ॥ १९ ॥

वागीश्वरी--गुरु और शुक्र के अस्त होने पर वर्ज्य कृत्य बताये जा रहे हैं--

गुरु और शुक्र ये दोनों प्रधान ग्रह (विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ) ब्राह्मणों के अधिपति ग्रह हैं अतः इन दोनों प्रधान ग्रहों के अस्त होने से, तथा अधिक मासों, क्षय मासों और अपने जन्म मास जन्म नक्षत्र में, गया-गोदावरी तीर्थ से अन्यत्र तीर्थ यात्रा तीर्थ श्राद्धादि, प्रथम देव दर्शनादि के लिये यात्रा शुभ नहीं कही गई है। फलतः गया-गोदावरी की यात्रा सदा शुभ हो सकती है। तथा गुरु शुक्र के अस्तादि, आषाढ़-पौष मासों में, विष्णु शयन समय तक में आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक भगवान् विष्णु के सुसुप्त रहने से इस अवधि के चन्द्र काल का नाम विष्णु शयन कहा गया है। गया-गोदावरी से अन्यत्र तीर्थों में एक १ वर्ष से अधिक काल तक जिन मृतकों की प्रेत क्रिया हुई है उनके प्रेत कर्म (श्राद्धादि = पिण्डदान) नहीं किये जाने चाहिए।

गया-गोदावरी में उक्त प्रेतादि कर्म श्रुति अनुसार सुविधा से यदा-कदा-सदा किये जा सकते हैं॥ १९॥

मुहूर्त्त मार्तण्ड ग्रन्थ के मूल और मार्तण्डवल्लभा संस्कृत व्याख्या के साथ
श्री केदार दत्त जोशी कृत वागीश्वरी व्याख्या सुसम्पन्न॥

अनध्यायप्रकरणम्

पर्वाग्रादियुगष्टमीतितिथयो मध्वादिपक्षद्वयेऽ-
नध्यायाश्चरसंक्रमा अथ मधौ वह्निश्च शुक्रे यमः।
राधेग्निस्त्वसितो यमः शुचिदृगाशार्कास्त्रयोदश्यथो
मार्गे कृष्णनगग्रहाविषदृगङ्काशाग्नयः कीर्तिताः॥ १॥

मार्तण्डवल्लभा—अथानन्तरं शान्तिप्रकरणमारभ्यते। छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्तिताः॥ छिद्रेभ्यः स्रवति ब्रह्म ब्राह्मणेन तदर्जितम्। तत्काले तस्य रक्षांसि श्रियं ब्रह्म यशो बलम्॥ सर्वमादाय गच्छन्ति वर्जयन्तीप्सितं फलम्। इत्यनध्याये पठनादौ प्रसङ्गात् मौञ्ज्यादिनिषेधाच्च वृत्तद्वयेनानध्यायानाह—**पर्वेति**। पर्व अमा-पूर्णिमा। किंलक्षणं पर्व अग्रादियुक् अग्रं प्रतिपत् आदिश्चतुर्दशी ताभ्यां युक् युक्तम् अष्टमी प्रसिद्धा इति तिथयश्चतस्रस्तिथयः। मध्वादिपक्षद्वये मधुश्चैत्रः तदादिषु मासेषु पक्षद्वयं शुक्लकृष्णाख्यं तस्मिन् अनध्यायाः स्युः कीर्तिताः कथिताः बुधैरित्यध्याहारः। अथान्यानाह—चरसंक्रमाः चरराशिसंक्रान्तयः मेषकर्कतुलामकरसंक्रान्तय इत्यर्थः। मधुश्चैत्रस्तस्मिन्वह्निः वह्निसंख्याकस्तिथिस्तृतीयेत्यर्थः। शुक्रे मासे ज्येष्ठे मासे यमः द्वितीया। यत्र प्रकरणे शुक्लकृष्णपक्षनिर्देशो न दृश्यते तत्र शुक्लपक्षगतिथिर्ज्ञेयः।

राधे वैशाखे अग्निस्तृतीया शुक्ले तु पुनः असितः कृष्णो यमः द्वितीया शुचिदृगाशार्काः शुचिराषाढः तस्य दृक् द्वितीया आशा दशमी अर्को द्वादशी त्रयोदश्यपि आषाढशुक्लद्वितीयादशमीद्वादशीत्रयोदशीत्यर्थः। अथ मार्गे मार्गशीर्षे कृष्णनगग्रहौ कृष्णसप्तमीनवम्यौ इषदृगङ्काशाग्नयः इषः आश्विनः तस्य दृक् द्वितोया अङ्को नवमी आशा दशमी अग्निस्तृतीया आश्विनशुक्लद्वितीयानवमीदशमीतृतीयेत्यर्थः ॥ १ ॥

पौषेशस्त्वसितादृगङ्कमुनयोऽन्त्ये कृष्णखेटाद्रिदृङ्-
माघेऽर्काब्धिदृगद्रयस्त्वसितजा बाह्वङ्कपृथ्वीधराः ।
ऊर्जे द्व्यङ्करवीश्वरा असितजा दृग्विश्वसूर्यानभ-
स्येऽग्निः कृष्णदृगद्रिविश्वनवमी पैत्रं यमोऽन्यः श्रवाः ॥ २ ॥

मार्त्तण्डवल्लभा--पौषेति। पौषेशः पौषस्य ईशः एकादशी शुक्ला तु पुनः असिता कृष्णा दृगङ्कमुनयः द्वितीयानवमीसप्तम्यः अन्त्ये फाल्गुने कृष्णखेटाद्रिदक् खेटो नवमी अद्रिः सप्तमी दृक् द्वितीया एषां समाहारो खेटाद्रिदक् कृष्णं च तत् खेटाद्रिदृक् च तथा कृष्णनवमीसप्तमीद्वितीया इत्यर्थः। माघेऽर्काब्धिदृगद्रयः अर्को द्वादशी अब्धिश्चतुर्थी दृक् द्वितीया अद्रिः सप्तमी एते शुक्लाः। तु पुनः असितजा बाह्वङ्कपृथ्वीधराः असितजाः कृष्णपक्षजाः बाह्वङ्कपृथ्वीधराः बाहुर्द्वितीया अङ्को नवमी पृथ्वीधरः सप्तमी ऊर्जे कार्तिके द्व्यङ्करवीश्वराः द्वि द्वितीया अङ्को नवमी रविर्द्वादशी ईश्वर एकादशी एते शुक्लाः तु पुनः असितजाः कृष्णपक्षजाः दृग्विश्वसूर्याः दृक् द्वितीया विश्वे त्रयोदशी सूर्यो द्वादशी नभस्ये भाद्रपदे अग्निस्तृतीया शुक्ला कृष्णदृगद्रिविश्वनवमी दृक् द्वितीया अद्रिः सप्तमी विश्वे त्रयोदशी नवमी पैत्रं मघा यमो भरणी अन्यः शुक्लः श्रवाः श्रवणः भाद्रपदशुक्लश्रवणइत्यर्थः ॥ २ ॥

वागीश्वरी--अनध्याम तिथियाँ बताई जा रही हैं—

"ब्राह्मणेन षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" वेद वेदांग शास्त्रों के अध्ययन और अध्यापन का नाम ही अध्याय कहा जाता है। अतः वेद वेदांग शास्त्र पुराणादि श्रुति स्मृति के अध्ययन के लिये जो अशुभ हैं उन्हें अनध्याय कहा जा सकता है—कथित अनध्याय समयों में "वेद" आदि शास्त्रों का अध्ययन नहीं करना चाहिए, चूंकि नित्य कर्म में कहीं भी किसी प्रकार का अनध्याय नहीं होता है यह भी ध्यान में रखना चाहिए।

प्रथम संवत् जो चैत्रादि शुक्ल प्रतिपद से अगले चैत्रकृष्ण अमावस्या तक चलता है, उन १२ बारह मासों के शुक्ल और कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी-पूर्णिमा और अमावास्या, प्रतिपद और अष्टमी तिथियों के साथ, सौर मास सम्बन्धी मेष-कर्क तुला और मकर राशि की गोलायन संक्रान्तियाँ भी अनध्याय तिथियाँ कही गई हैं।

तथा चैत्र शुक्ल पक्ष की तृतीया, ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया, वैशाख शुक्ल तृतीया, कृष्ण द्वितीया, आषाढ़ शुक्ल की द्वितीया दशमी द्वादशी और त्रयोदशी, मार्गशीर्ष कृष्ण की

सप्तमी नवमी आश्विन शुक्ल पक्ष की द्वितीया-तृतीया-नवमी दशमी पौष शुक्ल की एकादशी कृष्ण की द्वितीया-नवमी-सप्तमी फाल्गुन कृष्ण द्वितीया-सप्तमी-नवमी माघ शुक्ल की द्वितीया चतुर्थी-सप्तमी-द्वादशी, कृष्ण की द्वितीया सप्तमी नवमी कार्तिक शुक्ल की द्वितीया-नवमी-एकादशी-द्वादशी कृष्ण की द्वितीया-द्वादशी-त्रयोदशी भाद्र शुक्ल तृतीया और कृष्ण की द्वितीया-सप्तमी-नवमी और त्रयोदशी तिथियों के साथ भाद्र कृष्ण पक्ष का मघा नक्षत्र और शुक्ल पक्ष का श्रवण नक्षत्र—ये सब पूरे वर्ष में अनध्याय तिथि कही जाती हैं, जिनमें वेदाध्ययनाध्यापन का निषेध कहा गया है ॥ १, २ ॥

योऽनध्यायतिथिः स पूर्वदिवसेऽस्तात्प्राङ् मुहूर्तोन्मितोऽ-
न्यस्मिन्वोदयसक्षणत्रयगतो ब्रह्मेह नैवाभ्यसेत् ।
पर्वाग्रादियुगष्टमीति च तिथींस्त्यक्त्वेषुशास्त्रस्मृती
वेदाङ्गानि समभ्यसेच्च निखिलेषूक्तं पठेन्नैत्यकम् ॥ ३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथैषां निर्णयं वृत्तेनैकेनाह—**य इति** । यः कश्चिदनध्यायतिथिः स पूर्वदिवसेऽस्तात्सूर्यास्तात्प्राक् मुहूर्त्तोन्मितः स्यात् । अत्र पूर्वदिवसे ब्रह्म वेदं नो पठेत् । वा इत्यथवा अन्यस्मिन् दिवसे परदिवसे क्षणत्रयगतो भवति । अत्रास्मिन् दिवसे ब्रह्म नो संपठेत्, पर्वाग्रादियुगष्टमी पूर्ववत् पदविभागः इति च तिथींस्त्यक्त्वा एषु अनन्तरोक्तेषु अनध्यायेषु शास्त्रस्मृती वेदाङ्गानि समभ्यसेत् । सुगमम् । निखिलेषु सर्वेष्वनध्यायेषु उक्तं पठेत् । नैत्यक च पठेत् । उक्तमिति । यथा—अमावास्यायामश्नंस्तु जपेद्व्याहृतिपूर्विकां गायत्रीं सप्रणवां सकृत्त्रिर्वा रक्षोघ्नीः पित्र्यमन्त्रान् पुरुषसूक्तमप्रतिरथमन्यानि च पवित्राणि नैत्यकं सन्ध्याहोमब्रह्मयज्ञादि । तथा च मनुः "वेदोपाकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके । न निरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रजपेषु च ॥" इति ॥ वेदोपाकरणानि अङ्गानि । स्मृतिरत्नावल्यां "नित्ये जपे च नाङ्गे च क्रतौ पारायणेऽपि च । नानध्यायोऽस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः ॥ देवतार्चनमन्त्राणां नानध्यायः स्मृतः सदा । नानध्याये जपेद्वेदान् रुद्रांश्चैव विशेषतः ॥ पौरुषं पावमानं च गृहीतनियमादृतः ॥" इति ॥ स्मृत्यर्थसारे "चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपद्वर्जितेषु च । वेदाङ्गन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ॥" इति ॥ कूर्मपुराणे "इन्दौ वृद्धिं क्षयं प्राप्ते ब्रह्मयज्ञं न कारयेत् । न जपेद्वैदिकं मन्त्रं गायत्र्यष्टोत्तरं शतम् ॥" इति ॥ स्मृतिरत्नावल्याम् "अल्पं जपेदनध्याये पर्वण्यल्पतरं जपेत् ।" इति ॥ ३ ॥

वागीश्वरी—अनध्याय तिथियों का पूर्वापर दिन सम्बन्धी निर्णय—

अनध्याय की तिथि पहिले दिन सूर्यास्त से पहिले १ मुहूर्त्त द्वितीय दिन सूर्योदय से ३ मुहूर्त्त तक है तो पूर्व और पर दोनों दिन अनध्याय होता है अर्थात् दोनों दिन वेदाध्ययन नहीं हो सकता ।

पूर्णिमा-अमावास्या-चतुर्दशी-प्रतिपद और अष्टमी उक्त इन अनध्याय तिथियों में वेदाध्ययन तो नहीं कर सकते, किन्तु षडंग शास्त्र, ज्यौतिष-व्याकरण निरुक्त-कला-शिक्षा-च्छन्द-न्याय और मीमांसा···आदि शास्त्रों का अध्ययनाध्यापन किया जा सकने के बावजूद "वेद" के अध्ययनाध्यापन का निषेध ही कहा गया है। तथा उक्त अनध्याय समयों में यज्ञोपवीत संस्कार में (उपनयन में) "वेद" ज्ञान दीक्षा ग्रहण का भी निषेध हो जाता है। तथा १।८।१४।१५ और ३० प्रति चान्द्र मास की तिथियों में अध्ययन भी त्याज्य है। नित्यकर्म-ब्रह्मयज्ञ-सन्ध्या पूजा पाठ सदा होते हैं ये नित्य कर्म हैं अतः उक्त सभी अनध्यायों में भी ये कर्म-नित्य होने से सतत किये जाने चाहिए ॥ ३ ॥

बभ्र्वोत्वेणखराग्न्यजाम्ब्वहिगजाश्वोष्ट्रान्त्यमूकोन्नता
नो यानान्तरिते त्र्यहं प्लवखगाद्यैर्ना च सज्योतिषम् ।
स्त्रीगोस्थ्यन्तरितेहरुत्सवनिशीथाशौ च मार्गेषु च
च्छायायां न कपित्थशाल्मलिमधुश्लेष्मातकादेः पठेत् ॥ ४ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ नैमित्तिकाननध्यायान्वृत्तद्वयेनाह—**बभ्रिवति**। बभ्रुर्नकुलः ओतुर्मार्जारः एणो हरिणः खरः प्रसिद्धः अग्निः प्रसिद्धः अजो मेषः अम्बु उदकं अहिः सर्पः गजः प्रसिद्धः अश्वः प्र० उष्ट्रः प्र० अन्त्योऽन्त्यजातिः रजकचर्मकारादयः मूकः प्र० उन्नतो मत्तः अनः शकटः यानं शिबिकादि एभिरन्तरिते गुरौ सति त्र्यहं त्रिरात्रमनध्यायः। प्लवो मण्डूकः खगः पक्षी आदिशब्दाद्गोधादि एभिरन्तरिते सज्योतिषमनध्यायः। अयमर्थः दिवा अन्तरिते सति सूर्यास्तमानपर्यन्तमनध्यायः। रात्रावन्तरिते रात्रिशेषपर्यन्तमनध्याय इत्यर्थः। स्त्रीगोऽस्थ्यन्तरितेऽहः स्त्री प्र० गौः प्र० अस्थि प्राण्यङ्गं एभिरन्तरिते अहर्दिनमहोरात्रमनध्यायः। उत्सवो महोत्सवो विवाहादिकः निशीथं मध्यरात्रम् आशौचं सूतकम् मार्गोऽध्वा एषु न पठेत्। च पएं कपित्थशाल्मलिमधुश्लेष्मातकादेश्छायायां न पठेत्। सुगमम्। आदिशब्दात्कोविदारबिभीतकैरण्डादीनां ग्रहणम् ॥ ४ ॥

वागीश्वरी—अनध्याय के आकस्मिक कारण—

अध्यापक और अध्येता (गुरु शिष्य) के बीच में अकस्मात् नेवला, विडाल, हरिण, गधा, आग, भेड़, बकरी, जल, साँप, हाथी, घोड़ा, ऊँट, नीच (धोबी-चमार आदि) गूंगा, पागल, सवारी (आजकल जैसे साइकिल मोटर साइकिल आदि) पालकी आदि जीव या वस्तु या उक्त जीव आ जाय तो भी ३ दिन तक अनध्याय अर्थात् अध्ययनाध्यापन बन्द कर देना चाहिए।

दिन या रात्रि में यदि गुरु शिष्य के बीच में मेढक या पक्षी या कोई अन्य जलचर जीव या किसी मनुष्य विशेष का व्यवधान पड़ जाय तो दिन में दिन पर्यन्त रात्रि में

रात्रि पर्यन्त अनध्याय होता है। तथा गुरु शिष्य के बीच में स्त्री गौ या किसी प्राणी का हाड़ पड़ जाय तो उस पूरे दिन भी अनध्याय समझना चाहिए।

अनध्याय के और भी समय—विवाहादिक उत्सव कर्म, मध्य दिन और मध्यरात्रि, जन वृद्धि जननाशौच, में अनध्याय तथा मार्ग में, कैथ सेमर महुआ बहेड़ा हर्रे आदि वृक्षों की छाया में भी अध्ययनाध्यापन का निषेध कहा गया है ।। ४ ।।

ग्रामान्तः कुणपे श्वशूद्रनिकटे श्राद्धाशने वक्त्रगे
ताम्बूले ग्रहणाद्गुरुक्षितिपतिप्रान्तादुपोत्सर्गतः ।
भूकम्पाशनिपाततः पुरदहेरिष्टावलोकात्त्र्यहं
गर्जेनार्तवके त्र्यहं समयजे सज्योतिरन्ते सतः ।। ५ ।।

मार्तण्डवल्लभा—ग्रामान्तरिति। ग्रामान्तः कुणपे ग्राममध्यं कुणपे प्रेते सति न पठेत्। श्वशूद्रनिकटे श्वानशूद्रसन्निधौ न पठेत्। श्राद्धाशने श्राद्धभोजने कृते सति जीर्णावधि न पठेत्। वक्त्रगे मुखगते ताम्बूले सति न पठेत्। ग्रहणात्सकाशात् त्र्यहं न पठेत्। तथा गुरुक्षितिपतिप्रान्तान्मरणात्त्र्यहम् उपोत्सर्गतस्त्र्यहम् उप उपाकर्म उत्सर्गश्छन्दसामुत्सर्गः तथा उपोत्सर्गतः सकाशात्त्र्यहम्। भूकम्पाशनिपाततस्त्र्यहं भूकम्पः प्रसिद्धः अशनिपातो विद्युत्पातः ताभ्यां त्र्यहं पुरदहे पुरदाहात् स्ववसतिग्रामदाहादित्यर्थः। त्र्यहं रिष्टावलोकात् गन्धर्वनगरभूतादिदर्शनात् त्र्यहं न पठेत्। गर्जनार्तवके त्र्यहं ऋतौ भवः आर्तवः न आर्तवः अनार्तवः अनार्तव एव अनार्तवकस्तस्मिन् अकालगर्जने जाते सति त्र्यहं न पठेत्। समयजे ऋतुजे गर्जे सति सज्योतिर्यथास्यात्तथा न पठेत्। दिवागर्जे सति सूर्यास्तपर्यन्तं रात्रौ गर्जे सति सूर्योदयपर्यन्तं न पठेदित्यर्थः। सतः अन्ते स्वशाखिसत्पुरुषस्य मृतौ जाते सति सज्योतिर्न पठेत् ।। ५ ।।

वागीश्वरी--अपने ग्राम में किसी की मृत्यु पर भी अनध्याय होता है, शूद्र और कुत्ते के समीप भी अध्ययन का निषेध कहा गया है। श्रद्धान्न ग्रहण कर, मुख में पान रख कर भी अध्ययन निषेध है। ग्रहण समय, राजा की मृत्यु, उपाकर्म उत्सर्ग में, भूमिकम्प में वज्रपात, ग्राम के दहन दाह, केतु आदि उत्पात दर्शन से, अकाल में मेघ की गर्जना सुनने से तीन दिन तक अध्ययन निषेध कहा गया है। सामयिक मेघ गर्जन, सुजन व्यक्ति की मृत्यु, दिनान्त अर्थात्—सूर्यास्त समय में रात्रि में आरम्भ रात्रि से सूर्योदय तक भी अनध्याय कहे गये हैं या समझे जाते हैं ।। ५ ।।

वाद्योलूकखरार्तजम्बुकरवे साम्नां च वाते जले
नीहारे पतिताभिशस्तनिकटे धावज्जनालोकने ।
ग्रामान्ते पितृकाननेऽप्यथ सतानूनण्त्रिणीते दिवं
तद्वत्सद्व्रतिनि त्र्यहं न च पठेद्भुक्त्वार्द्रपाणिर्न च ।। ६ ।।

मार्तण्डवल्लभा—अनध्यायान्तरमाह—**वाद्येति**। वाद्यादीनां रवे शब्दे श्रूयमाणे साम्नां च रवे श्रूयमाणे वाते वातस्य सर्वदा विद्यमानत्वादतिवाते जले जलमध्ये नीहारधूमरूपोत्पाते पतितो जातिभ्रष्टः अभिशस्तो मिथ्याभिशापी तत्समीपे धावज्जनालोकने धावन्मनुष्यालोकने ग्रामान्ते ग्रामसीमासमीपे पितृकानने श्मशाने न पठेत्। सतानूनप्त्रिणीते दिवं स्वर्गं प्रति इते गते मृते सति त्र्यहं न पठेत्। तानूनप्त्रं नाम घृतम् यागे येन येन ऋत्विजा सह स्पृष्टं स स तानूनप्त्री तस्मिन्मृते सति त्र्यहं न पठेत्। तद्वत्सद्व्रतिनि मृते सद्व्रतं वेदव्रतं चरितं येन स सद्व्रती तस्मिन्मृते त्र्यहं न पठेत्। भुक्त्वा यावदार्द्रपाणिस्तावन्न पठेत्। अन्येऽनध्याया मूलग्रन्थतोऽत्रगन्तव्याः ॥ ६ ॥

वागीश्वरी—अध्ययनाध्यायन में अन्य अवरोधक—

ढोल नगाड़ा आदि बाजे आदि के श्रवण, उलूक पक्षी, गर्दभ, पीड़ित प्राणी तथा शृगाल (सियार) के शब्द श्रवण, सामवेद के गान सुनने पर, वायु मण्डल में अधिक वायु के प्रचलन पर, जल में, कुहरे में, पतित अपवादी मनुष्य के समीप, दौड़ लगाते हुए मनुष्य की दृष्टि पड़ने पर, ग्राम नगर की सीमा के अन्त में, श्मशान भूमि में, यज्ञ में जिसके साथ घृत स्पर्श किया हो उस तानूनप्त्री की मृत्यु पर, वेद व्रती की मृत्यु पर भी ३ दिन तक का अनध्याय होना चाहिए। भोजन के अनन्तर जब तक हाथ गीला है तब तक भी अध्ययन निषेध कहा गया गया है ॥ ६ ॥ विशेष—सतानूनप्त्री = यज्ञ में जिसके साथ घी स्पर्श किया है।

रात्र्यर्द्धे मदनो मुनिर्दलयुते यामे चतुर्थ्याद्यके
प्राग्रात्रौ पठनं ह्युपाकरणतो मासं निशाप्राग्दले।
श्वोऽनध्याय इतीह रात्रिपठनं वर्ज्यं सदा संध्ययो-
श्चौरोपद्रवयामके त्रिदिवसं दुर्भुक्प्रतिग्राहयोः ॥ ७ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ प्रदोषानध्यायानाह—रात्र्यर्द्धे मदनस्त्रयोदशी यस्मिन्दिने स्यात् मुनिः सप्तमी रात्रेर्दलयुते यामे सार्द्धप्रहरे यद्दिने स्यात् अत्र दिने प्राग्रात्रौ पठनं वर्ज्यम्। हि निश्चयेन। उपाकर्मतः सकाशात् मासमात्रं रात्रे प्राग्दले पठनं वर्ज्यम् श्वोऽनध्याय इतीह इत्यत्र रात्रिपठनं वर्ज्यम्। सदा संध्ययोरुभयोः पठनं वर्ज्यम्। चौरोपद्रवेण उपलक्षितो यामः प्रहरः तस्मिन् पठनं वर्ज्यम्। त्रिदिवसं दुर्भुक्प्रतिग्राहयोः दुष्टभुक्प्रतिग्राहौ दुर्भुक्प्रतिग्राहौ तयोः दुष्टभोजनदुष्टप्रतिग्राहयोः त्रिदिवसं पठनं वर्ज्यम्। तथा च श्रीधरी स्मृतिवचनानि—"अष्टम्योश्च चतुर्दश्योः पञ्चदश्योश्च सूतके। शावे प्रदिपदोर्यत्र भये चैव महोत्सवे ॥ रोषे युद्धे विवादे च द्यूते पथि निशीथके। नाधीयीताशुचिश्चापि नाम्नातश्च न तन्द्रितः ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। त्रिरात्रं स्यादनध्यायो मृते नृपे गुरावपि ॥ फाल्गुन्यां

पौर्णमास्यां तु चैत्र्यां तु त्र्यहमिष्यते । अनध्यायस्तथाषाढ्यां श्रावण्यां कार्तिके तथा ॥ तथैव मार्गशीर्षस्य पूर्णमास्यां न संचरेत् । अशन्याः पतने कम्पे भूमेर्दाहे पुरस्य च ॥ मृगस्य सर्पमार्जारनकुलाद्यश्वदन्तिनाम् । अन्तरा गमनेऽजोष्ट्रखराणां च त्र्यहं स्मृतम् ॥ पताकातोरणादर्शरथयानजलाग्निनाम् । मूकोन्मत्तादिशूद्राणामन्तरा गमने त्र्यहम् ॥ नारीणामपि सर्वासां गवां चैवान्तरागमे । अहोरात्रमनध्यायो गर्जने रात्रिसंभवे ॥ द्युगर्जने च रात्रौ चापररात्रे दिनं स्मृतम् । दिनं तूभयसंध्यायामथास्थ्नां चान्तरागमे ॥ पक्षिमण्डूकगोधासु नराणां चान्तरागमे । दिने दिवसशेषः स्याद्रात्र्यां रात्र्याश्च तद्भवेत् ॥ श्वसृगालरवे नॄणां श्रोत्रियागमनेऽध्वनि । तत्कालिकोऽप्यनध्यायस्ताम्बूलस्य च भक्षणे ॥ श्राद्धे निमन्त्रितो यस्तु भुक्त्वा नाध्ययनं चरेत् । करिष्यंश्च तथा विप्रः प्राग्विप्राणां विसर्जनात् ॥ एते प्रोक्ता ह्यनध्याया वैदिकास्तान्त्रिकास्ततः । प्रवक्ष्यन्तेऽष्टमीद्वन्द्वे चतुर्दश्यां च केवलैः ॥ विषुवद्वितये चैवमयनद्वितये तथा । न पठेत्पाठयेद्धीमान्पुराणमपि सत्तमः ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां यावदस्तमिते रवौ । दिनशेषमनध्यायं वैदिकं परिकीर्तितम् ॥ तथोदिते दिवारात्रं तत्कालमुदिते तयोः । प्रतिपद्यां च संक्रान्तौ तत्कालमखिलासु च ॥ नभोनभस्ययोः कृष्णे मासयोस्त्रिदिनं द्विजः । न सप्तम्यामधीयीत त्रयोदश्यां च पैत्र्ययोः ॥ सदा त्रयोदशी या वत्प्राङ्निशि या तिथिर्भवेत् । प्राह्लादथापराह्णान्तादधीयीत न च द्विजः ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां प्रतिपद्यां च वर्जयेत् । धर्मशास्त्रपुराणानि शास्त्रं तात्कालिकं बुधः ॥ विमिश्रितासु कर्तव्यं सप्तम्यादिषु विद्यते । न शस्यते च तत्काले घृतं संप्राश्य वा बुधः ॥ नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमः । अकालगर्जितादौ च पर्वस्वाशौचकादिषु ॥ अनध्याया बुधैः कार्या उपरागादिकेषु च । श्वोऽनध्याये च शर्वर्यां नाधीयीत कदाचन" इति ॥ स्मृत्यन्तरे ॥ "प्रदोषे च त्रयोदश्यां नाध्येयं प्रतिपत्स्वपि" ॥ प्रदोषलक्षणम् ॥ "षष्ठी च द्वादशी चैव अर्द्धरात्रोननाडिका । प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिका ॥" अर्द्धरात्रोननाडिका अर्द्धरात्रात् घटिकया एकयोनेत्यर्थः । अत्र नैमित्तिकप्रदोषमाह आपस्तम्बः "श्रावण्यां पौर्णमास्यामध्ययनमुपाकृत्य मासं प्रदोषे नाधीयीत" इति । प्रदोषः पूर्वरात्रः । तथा च गर्गः "अध्यायानामुपाकृत्य मासं प्रदोषे नाधीयीत" इति । "श्रावण्यां श्रवणेन वा । यावन्मासं पूर्वरात्रे नाधीयीत कदाचन" इति ॥ नारदः "अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायं प्रकुर्वीत मन्वादिषु युगादिषु" ॥ मन्वादयो मत्स्यपुराणेऽभिहिताः "अश्वयुक्छुक्लनवमी कार्तिकी द्वादशी सिता । तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमी कृष्णा आषाढस्यापि पौर्णिमा ॥ कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता । मन्वन्तरादयश्चैते दत्तस्याक्षयकारकाः" ॥ युगादयो विष्णुपुराणे दर्शिताः "वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे । नभस्यमासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रं

मृत्यतासु च रात्रिषु ॥ मार्गशीर्षे तथा पौषे माघे मासे तथैव च। तिस्रोऽष्टकाः समाख्याता कृष्णपक्षे तु सूरिभिः" ॥ स्मृतिरत्नावल्याम् "चातुर्दश्यां यदा पर्व प्रागस्तादृश्यते रवेः। अनध्यायं प्रकुर्वीत त्रयोदश्यां तु धर्मवित् ॥ विद्युत्स्तनितवर्षे तु महोल्कानां तु संभवे। अकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥ स्तनितं मेघगर्जितम्। अनुराधर्क्षमारभ्य षोडशर्क्षे तु भास्करः। यावच्चरति वै तावदकालं मुनयो विदुः ॥ काले वृष्टौ च तत्कालमकाले च त्रिरात्रकम्। अतिमात्राथवा वृष्टिर्नाधीयीत दिनत्रयम् ॥ अकालवर्षणे जाते जलौकाश्च प्रवर्तते। एकरात्रमनध्यायमिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ मेषे च वृषभे चैव तृणाग्रान्स्रवते जलम्। भूमिद्रावमनध्यायं कुर्वन्ति वृषकुम्भयोः ॥ अत ऊर्ध्वं द्विपादेषु तृणप्रच्यवनं जलम्। तृणप्रच्यवनं तृणप्रवाहः। चौरैरुपद्रुते यावत्संग्रामे चाग्निकारिते ॥ अकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च। प्रादुष्कृतेष्वग्नीषु विद्युत्स्तनितनिःस्वने ॥ सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषरात्रौ तथा दिवा" ॥ इति। मनुः "निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने। एतानकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि" ॥ निर्घात आन्तरालिको ध्वनिविशेषः। ज्योतिषां चोपसर्जनं चन्द्रसूर्ययोः परिवेषः। आपस्तम्बः 'प्रतिगृह्य द्विजो वेदानेकोद्दिष्टस्य केतनम्। त्र्यहान्ते कीर्तयेद्ब्रह्म राहोरन्यत्र सूतके" ।केतनं निमन्त्रणम्। कूर्मपुराणे "समानविद्ये तु मृते तथा च ब्रह्मचारिणि। आचार्ये संस्थिते चापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्" ॥ याज्ञवल्क्यः "त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु। उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये मृते ॥ संध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने। समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥ पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः। कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये" ॥ इति। पराशरः "सर्पस्य नकुलस्याथ अजमार्जारयोस्तथा। मूषकस्य तथोष्ट्रस्य मण्डूकस्य च योषितः ॥ पुरुषस्यैलकस्यापि शुनोऽश्वस्य खरस्य च। एषां यो विततश्चैव अन्तरागमने कृते ॥ त्रिरात्रमुपवासश्च त्रिरात्रमभिषेऽचनम्" ॥ अथ तात्कालिकाः। "खरोष्ट्रगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने। अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥ देशेऽशुचौ वर्त्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे। भुक्तार्द्रपाणिरम्भोऽन्तरर्द्धरात्रेऽतिमारुते ॥ पांसुवर्षे दिशां दाहे संध्यानीहारभीतिषु। धावन्तः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥ खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षे रथरोहणे। सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः" इति ॥ अथानध्यायापवादः। मनुः "वेदोपाकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥ न निरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रजपेषु च" इति ॥ ७ ॥

इति मुहूर्तमार्त्तण्डटीकायां मार्त्तण्डवल्लभायामनध्यायप्रकरणं समाप्तम् ॥

वागीश्वरी—प्रदोष तिथि बताई जा रही है—

मध्य रात्रि में यदि द्वादशी के पश्चात् त्रयोदशी तिथि का प्रवेश हो रहा हो, रात्रि के डेढ़ प्रहर के पश्चात् षष्ठी के बाद सप्तमी, एक प्रहर रात्रि बीते यदि तृतीयोपरि

चतुर्थी प्रवेश हो तो यह समय या इन तिथियों को प्रदोष तिथि कहा जाता है। इन तीनों प्रदोष शक्तियों की पूर्व रात्रियाँ प्रदोष होने से अनध्याय की कही गई हैं।

उपाकर्म श्रावणी कर्म से एक महीने तक की पूर्व रात्रियाँ भी प्रदोष अर्थात् अनध्याय की कही गई हैं। कल अनध्याय तिथि है ऐसा समझ कर पूर्व रात्रि में भी अध्ययन निषेध कहा गया है। प्रातः सायं सन्ध्या काल भी अध्ययन के लिये वर्जित (अनध्याय समय) हैं। श्राद्धादि के अन्न भोजन और प्रतिग्रह (दान ग्रहण) अर्थात् निम्नजाति के दान लेने पर भी ३ दिन का अनध्याय होना चाहिए ॥ ७ ॥

पल्लीसरठप्रकरणम्

दक्षाङ्गोदरनाभिहृत्सुपतिता पल्ली वराङ्गे हनुं
मुक्त्वा नुः शुभदा स्त्रियाः फलमिदं वामेतरव्यत्ययात्।
इत्याहुः सरठप्ररोहणफलं पातेऽन्यथैके वृथा
पल्ल्यारोहणकेऽपि वस्त्रसहितं स्नात्वा चरेच्छान्तिकम् ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ पल्लीसरठयोः प्रकरणम् ॥ अथ पल्लीसरठयोः फलं वृत्तेनैकेनाह—दक्षाङ्गोदरनाभिहृत्सु पतिता पल्ली तथा हनुं त्यक्त्वा वराङ्गे उत्तमाङ्गे पतिता पल्ली नुः नरस्य शुभदा स्यात्। उत्तमाङ्गे हनुं विना सर्वत्र शुभेत्यर्थः। अर्थादन्यत्र न शुभा अन्याङ्गेषु पुरः पार्श्वपृष्ठेषु न शुभा स्यात्। अथ स्त्रियाः विशेषमाह–स्त्रियाः इदं पुरुषोक्तं फलं वामेतरव्यत्ययात् ज्ञेयम्। वामं वामाङ्गम्। तयोर्व्यत्ययो वैपरीत्यम् तस्मात्पुरुषस्य दक्षाङ्गे यत्फलमुक्तं तत्स्त्रियाः वामाङ्गे ज्ञेयम्। पुरुषस्य वामाङ्गे यदुक्तं तत्स्त्रिया दक्षाङ्गे ज्ञेयमित्यर्थः। अर्थाद्यत्राङ्गे वामेतरविभागाभावस्तत्र पुरुषतुल्यं फलं ज्ञेयम्। वराङ्गे तूभयोः समानमेव फलं वामदक्षिणफलाविशेषात्। सरठफलमाह—इत्याहुः सरठप्ररोहरणफलमिति। एवमेवाहुर्मुनय इत्यध्याहारः। सरठस्य प्ररोहणे पल्लीवत्फलमित्यर्थः। पाते सरठस्य पाते अन्यथा विपरीतं फलमाहुः। सरठस्य प्ररोहणे यत्फलं तत्तस्य पाते विपरीतफलमाहुरित्यर्थः। एके वृथा एके आचार्याः वृथा फलमाहुः। सरठस्य प्ररोहणे एव फलं पाते वृथाफलं न शुभं न चाप्यशुभमित्याहुः इत्यर्थः। पल्ल्यारोहणकेऽपि अन्यथा फलमाहुः। पल्लीपतने यत्फलं तत्तस्यारोहणे अन्यथा विपरीतफलमाहुः। एके वृथाफलमाहुः पल्ल्याः पतने एव फलं प्ररोहणे वृथेत्येके आहुरित्यर्थः। अथात्र विधिमाह—वस्त्रसहितं स्नात्वा चरेच्छान्तिकमिति। सचैलस्नानं कृत्वा शान्तिकं शास्त्रोक्तमाचरेत्। तथा च ज्योतिर्निबन्धे "पल्लीस्पर्शफलं वक्ष्ये यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा। ब्राह्मस्थाने भवेद्राज्यं स्थानलाभो ललाटके॥ कर्णयोर्भू-

षणावाप्तिर्नेत्रयोः प्रियदर्शनम्। नासिकायां सुगन्धानि मुखे मिष्टान्नभोजनम्॥ कपोलयोर्भवेत्सौख्यं हनुदेशे महद्भयम्। भ्रुकुट्यां विग्रहश्चैव कण्ठे वा व्यसनागमः॥ कलिवंशे सुखं पृष्ठ्यां दक्षे वामे गदादयः। दक्षांसे विजयो नित्यं वा मांसे शत्रुजं भयम्॥ इष्टलाभो भुजे सव्ये कूर्परे मणिबन्धके। दक्षे करतले द्रव्यं तत्पृष्ठे सद्व्ययो भवेत्। वामे भुजे कूर्परे च मणिबन्धे धनक्षयः। वामे करतले हानिस्तत्पृष्ठेचार्थनाशनम्॥ हृदये राजसंमानं सौभाग्यं दक्षिणे स्तने। दक्षपार्श्वे च भोगाप्तिः स्तने वामे यशो धनम्॥ वामपार्श्वे भवेत्पीडा वामकुक्षौ शिशोस्तथा। दक्षकुक्षौ सुतावाप्तिरुदरे च विशेषतः॥ वस्त्राप्तिर्दक्षकट्यां च वामकट्यां सुखक्षयः। नाभ्यां मनोरथावाप्तिर्बस्तौ गर्भच्युतिर्भवेत्॥ गुह्ये मृत्युर्गुदे रोगो दक्षोरौ प्रीतिवर्द्धनम्। वामोरौ मृत्युतो दुःखं दक्षजानौ सुवाहनम्॥ पशुहानिर्वामजानौ दक्षिणे जघने सुखम्। क्लेशः स्याद्वामजंघायां स्फिचि दक्षेऽर्थवृद्धिकृत्॥ स्फिचि वामे स्त्रीवियोगो दक्षे गुल्फे प्रियागमः। उपप्लवो वामगुल्फे पादयोर्गमनं भवेत्॥" अत्र यद्यपि सामान्येनोभयोर्गमनफलमुक्तं तथापि दक्षिणपादे गमनाल्लाभो वक्तव्यः। वामपादे गमने हानिर्वक्तव्या "पुरोभागे च दुर्वार्त्ता नष्टवार्त्ता च पृष्ठतः। वामे हानिर्धनं दक्षे परितो भ्रमणेक्षितः॥ वामदक्षिणभागेन यत्फलं कथितं नृणाम्। विपर्ययेण तत्स्त्रीणां ज्ञेयं शेषं द्वयोः समम्॥ इत्थं पल्ल्याः प्रपतने फलं ज्ञेयं विचक्षणैः। एतदेव फलं विद्यात्सरठस्य प्ररोहणे॥ पल्ल्याः प्ररोहणे चैव पतने सरठस्य च। तयोः फलस्य व्यत्यासात्तद्वदेव हि जायते॥ पल्ल्याः प्ररोहणं रात्रौ सरठस्य प्रपातनम्। नातिदुष्टफलं विद्यात् व्याधिमुग्रं विपर्यये॥ पतनानन्तरं यस्य रोहणं यदि जायते। पतने फलमुत्कृष्टं रोहणेऽल्पफलं भवेत्॥ मृत्युयोगे च जन्मर्क्षे विष्ठ्यां पाते च वैधृतौ। चन्द्रेऽष्टमे च सक्रूरे लग्ने विघ्नं प्रजायते॥ अङ्गं दक्षिणमारुह्य वामेनोत्तरते स्फुटम्। तदा हानिकरी ज्ञेया व्यत्ययेन तु हानिदा॥ चरणादूर्ध्वगा भूयः सद्यो रोहति शीर्षणम्। प्राज्यराज्यं तदा दत्ते पल्ली श्वेता विशेषतः॥ चिन्तिताभ्यधिकं लाभं स्थिता भोजनभोजने। पादाङ्गुलीषु संपादाद्धानिश्च महती भवेत्॥ पल्ल्योः सरठयोर्वापि युग्ममंगे शुभे पतेत्। दम्पत्योर्जायते प्रीतिर्निन्द्यभागे वियोगता॥ शीर्षस्योपरि पतिता शुभाय पल्लीसितानान्या। सितगृहगोधास्पर्शे सर्वेष्वगेषु शोभना ज्ञेया॥ कृकलासः पतेद्यस्य मूर्ध्नि तद्विघ्नशान्तये। मृतसंजीविनीं विद्यां जपेन्मुण्डितमस्तकः॥" अथ पल्लीसरठयोः शान्तिः॥ "पल्लीसरठयोः स्पर्शे सचैलं स्नानमाचरेत्। पञ्चगव्यं प्राशयित्वा कुर्यादाज्यावलोकनम्॥ शस्ते वाप्यथवाऽशस्ते यदीच्छेदात्मनः सुखम्। पुण्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समाचरेत्॥ प्रतिरूपं सुवर्णेन कुर्याद्वित्तानुसारतः। रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत्॥ तदग्रे मृण्मयं रम्यं कलशं जलपूरितम्। वस्त्रमाल्यैरलंकृत्य स्थापयेत्तण्डुलोपरि॥ पञ्चामृतं पञ्चगव्यं पञ्चरत्नानि शक्तितः। पञ्चवृक्षकषायांश्च निक्षिप्यावाहयेत्ततः॥ पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्लोकपालान् क्रमेण च। अग्निसंस्थापनं कृत्वा होमकर्म समाचरेत्॥ मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण

समिद्भिः खादिरैः शुभै। तिलैर्व्याहृतिभिर्होममष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ अष्टोत्तरशतं वापि कुर्याद्वित्तानुसारतः। अभिषेकं ततः कृत्वा पावमान्यस्य च द्विजैः ॥ पुण्यवारुण-सूक्तैश्च दोषशान्त्यै द्विजोत्तमः। धौताम्बराणि धृत्वाथ स्वर्णवस्त्रतिलान् ददेत् ॥ ब्राह्मणान् भोजयेदित्थं शान्तिकर्म करोति यः। तस्यायुर्विजयो लक्ष्मीः कीर्तिर्बुद्धिः शुभं भवेत् ॥ पल्लीसरठयोः शान्तिः कथिता भृगुणा पुरा। शौनकाय मुनीन्द्राय लोकानुग्रहकारिणे" ॥ इति ॥ १ ॥

इतिमार्त्तण्डवल्लभायां पल्लीसरठयोः शान्तिप्रकरणम् ॥

वागीश्वरी--आवास के कमरों की दीवाल या छत पर प्रायः पल्ली सरठ आदि जीव रहते हैं या दीख जाते हैं—

पुरुष के दाहिने अंगों में दाढ़ी को छोड़कर हाथ-पैर-नाभि-पेट-छाती शिर आदि में किसी भी अंग पर यदि पल्ली पतन (पल्ली का अकस्मात् गिर जाना) हो तो उस मनुष्य का भविष्य शुभ सूचक कहा गया है। ठीक यही शुभ फल स्त्री के बांये अंग में पल्ली पतन का होता है। इसी प्रकार पुरुष के वाम अंग में तथा स्त्री के दक्षिण अंग में पल्ली पतन का भविष्य फल अशुभ कहा गया है।

सरठ (गिरगिट) का आरोहण—गिरगिट भी कभी कभी शरीर में चढ़ जाता है, पल्ली के शरीर पर गिरने के शुभाशुभ फल की तरह ही शरठ (गिरगिट) का शरीर पर चढ़ने से पुरुष के दक्षिण अंग स्त्री के वाम अंग में चढ़ने से शुभ फल, एवं पुरुष के बाँये अंग और स्त्री के दाहिने अंग पर गिरगिट आदि के चढ़ने का अशुभ फल अर्थात् अशुभ भविष्य समझना चाहिए।

"पल्ली पतन, और गिरगिट के चढ़ने का भविष्य कोई भी शुभाशुभ फल नहीं होता" ऐसा कुछ आचार्यों का मत है। जन समाज या लोक में पल्ली पतन व शरठारोहण के शुभाशुभ भविष्य सूचना की परम्परा में पूर्ण विश्वास है अत एव पल्लीपतनादि का शुभाशुभ विचार आचार्यों के मत से समीचीन ही प्रतीत होता है। शरीर में पल्ली पतन या शरठारोहण के अशुभ फल के निरसनाय सचैल स्नान से नया वस्त्र धारण करते हुये, घृतच्छाया आदि शान्ति करा देने से मानस शान्त और भविष्य शुभ हो जाता है ॥ १ ॥

पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशी कृत मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ के मूल टीका के साथ "वागीश्वरी" व्याख्या सुसम्पन्न।

गोचरप्रकरणम्

स्वर्क्षचिचन्द्रखलास्त्रिखारिषु शुभाः सप्ताद्यगोऽब्जः पुन-
श्चापुत्राद्व्ययधर्ममृत्युषु कविः स्वास्तत्रिकोणे गुरुः।

सौम्यो व्यन्त्यसमेऽखिला भवगताः शुक्ले नवेषुद्विग-
श्चन्द्रोथो निजभाद् द्युभं नवहृतं त्र्यद्रीषु शेषं न सत् ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ गोचरप्रकरणं विवक्षुस्तावज्जन्मराशेः सकाशात् को ग्रहः कस्मिन् स्थाने शुभः कस्मिन्नशुभ इति चन्द्रशुक्लपक्षे विशेषं ताराबलं च वृत्तेनैकेनाह—**स्वर्क्षाच्चन्द्रखला इति**। स्वर्क्षात् स्वजन्मराशेः सकाशात् चन्द्रखलास्त्रिखारिषु शुभाः स्युः। त्रिः तृतीयं खं दशमं अरिः षष्ठं तेषु चन्द्रखलाः चन्द्रः प्र० खलाः पापग्रहाः रविभौमशनिराहुकेतवः शुभाः शुभफलाः भवन्ति। पुनः सप्ताद्यगः अब्जश्चन्द्रः शुभः स्यात् सुगमम्। आपुत्राद्व्ययधर्ममृत्युषु कविः शुभः स्यात्। आपुत्राज्जन्मराशितः क्रमेण पञ्चपर्यन्तं १, २, ३, ४, ५ व्ययो द्वादशं धर्मं नवमं मृत्युरष्टमम् एषु कविः शुक्रः शुभः स्यात्। स्वास्तत्रिकोणे गुरुः शुभः स्यात्। स्वं द्वितीयम् अस्तं सप्तमं त्रिकोणं नवमं पञ्चमं तत्र गुरुः बृहस्पतिः शुभः स्यात्। सौम्यो व्यन्त्यसमे शुभः स्यात्। सौम्यो बुधः विगतमन्त्यं यस्मात्तद्व्यन्त्यं तच्च तत् समं च तथा तस्मिन् द्वादशस्थानवर्जं समस्थो द्वितीयचतुर्थादिके शुभः स्यादित्यर्थः। अखिला भवगताः शुभाः स्युः सर्वे ग्रहाः एकादशस्थाने शुभाः स्युरिति। शुक्ले नवेषुद्विगः चन्द्रः शुभः स्यान्न कृष्णपक्ष इति। अथ ताराबलमाह—निजभात् द्युभं नवहृतं त्र्यद्रीषु शेषं न सत्। निजभं स्वजन्मनक्षत्रम् तस्मात् द्युभं दिननक्षत्रपर्यन्तं संगण्य नवहृतं सत्। त्र्यद्रीषुशेषं त्रिसप्तपञ्चशेषं न सत् न शुभम्। अन्यच्छुभमित्यर्थात्सिद्धम्। तथा च विशेषसंग्रहः व्यवहारसारे—"पन्था हानिः प्रियं व्याधिर्दैन्यं स्वास्थ्यं गतिं गदम्। पापं सुखं धनं हानिं करोत्यर्कः स्वजन्मभात् ॥ वस्त्रं हानिर्धनं रोगं पीडां वित्तं प्रियं वसु। भयं सुखं धनं रोगं करोतीन्दुः स्वजन्मभात् ॥ भयं हानिर्धनं वैरं दुःखं लाभं भयं क्षयम्। पापं लाभं सुखं हानिं जनेर्भौमफलं क्रमात् ॥ बन्धं लाभं भयं वित्तं शोकं लक्ष्मी क्षयं धनम्। रोगं भोगं सुखं हानिं करोति ज्ञः स्वजन्मभात् ॥ भयं वित्तं रुजं हानिं लाभं शोकं सुखं रुजः। मानं दैन्यं धनं पीडां करोति जन्मभाद्गुरुः ॥ जयं वित्तं धनं सौख्यं पुत्रान्वैरं शुभं सुखम्। धर्मं दुःखं धनं लाभं जनेः शुक्रो ददाति वै ॥ भयं शोकं धनं दुःखं हानिं सुहृत्क्षयं मृतिम्। पापं श्रमं धनं हानिं जनेः पङ्गुफलं क्रमात् ॥ राहुकेत्वोः फलं शनिकुजवत् ॥ १ ॥

वागीश्वरी—जन्मराशि व शुभाशुभ फल बताया जा रहा है—

अपनी जन्मराशि से ३।६।१० स्थानों में स्थित चन्द्रमा और कोई भी पापग्रह शुभ फल देते हैं, तथा जन्म राशि से चन्द्रमा ७।१ स्थानों में भी शुभफल देता है। इससे अतिरिक्त स्थानों में उक्त ग्रह अशुभ फल देते हैं।

शुक्र ग्रह अपनी जन्म राशि से १।२।३।४।५।८।९।१२ स्थानों में शुभ तदरिक्त स्थानों में अशुभ फलद होता है। गुरु ग्रह २।५।७।९ स्थानों में शुभ अन्यथा अशुभ फलद, बुधग्रह २।४।६।८।१० स्थानों में शुभ तथा शेष स्थानों में अशुभ होता है। जन्म-

राशि से ११वें स्थान में कोई भी ग्रह शुभ फलद होता है। शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा २।५।९ स्थानों में शुभ होता है किन्तु कृष्णपक्ष में नहीं।

तारा बल विचार—जन्म नक्षत्र से दिन के नक्षत्र तक की गणना संख्या में ९ से भाग देने से यदि ३।५।७ शेष रहै तो (३) विपत्, (५) प्रत्यरि और (७) वध नाम की तारा होती हैं जो उस दिन के लिये अशुभ फल सूचक कही गई हैं। मुहूर्त्त चिन्तामणि ग्रन्थ में एतद्विषयक ताराओं के नामों का उल्लेख हुआ है जैसे (१) जन्म। (२) सम्पत्। (३) विपत्। (४) श्रेय। (५) प्रत्यरि। (६) साधक। (७) वध। (८) मैत्र और (९) नवमी तारा का नाम "अतिमैत्र" है॥ १॥

षष्ठान्त्ये खजले सुतायभवने त्र्यङ्के रवेः स्यान्मिथ-
स्त्र्यङ्के जन्मसुते खके मृतिभवेद्व्यस्ते षडन्त्ये विधोः।
त्र्यर्के लाभसुते सपत्नतपसोर्व्यर्काशुभानां व्यधोऽ-
ष्टाद्ये पुत्रधनेष्टखेकसहजेयंकेभवान्त्ये विदः॥ २॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ सर्वेषां ग्रहाणां वेधं वृत्तद्वयेनाह—**षष्ठान्त्ये इति**। षष्ठं प्रसिद्धम् अन्त्यं द्वादशं तस्मिन् मिथः परस्परं वेधः तद्वत् खजले सुतायभवने त्र्यंके अयं रवेर्वेधः स्यात्। अत्राङ्कन्यास एव व्याख्यानम्। सप्तम्युपलक्षितैः पदैः वेधा ज्ञेयाः। तद्यथा षष्ठ ६ अन्त्ये १२ ख १० जले ४ सुत ५ आय ११ भवने त्रि ३ अङ्क ९ रवेः सूर्यस्यायं वेधः। त्रि ३ अङ्के ९ जन्म १ सुते ५ ख १० के ४ मृति ८ भवे ११ द्वि २ अस्ते ७ षड् ६ अन्त्ये १२ विधोरयं वेधः। त्रि ३ अर्के १२ लाभ ११ सुते ५ सपत्न ६ तपसो ९ व्यर्काशुभानां व्यधोऽयम्। विगतोऽर्को येभ्यस्ते व्यर्काः ते च ते अशुभाश्च व्यर्काशुभाः रविरहितपापग्रहाः तेषामयं वेध इत्यर्थः। अष्ट ८ आद्ये १ पुत्र ५ धने २ अष्ट ८ खे १० क ४ सहजे ३ अरि ६ अङ्के ९ भव ११ अन्त्ये १२ विदः बुधस्यायं वेधः॥२॥

द्व्यस्तेऽष्टादिमयोः खके नव सुते त्रीशेऽष्टपुत्रे त्रिक-
ल्पेऽर्यन्त्येऽङ्कभवे भृगोर्ज्ञशशिनोः शन्यर्कयोर्नो व्यधः॥
विद्धो व्यस्तफलो भवेद्द्विचरो हेमाद्रिविन्ध्यान्तरे
खेटर्क्षाद्व्यधखेचरं विगणयान्यत्रोभयं जन्मभात्॥ ३॥

मार्तण्डवल्लभा—द्व्यस्तेति। द्वि २ अस्ते ७ अष्ट ८ आदिमयोः १ ख १० के ४ नव ९ सुते ५ त्रि ३ ईशे ११ अष्ट ८ पुत्रे ५ त्रि ३ कल्पे १ अरि ६ अन्त्ये १२ अङ्क ९ भवे ११ भृगोः शुक्रस्यायं वेधः। गुरोर्वेधः संस्कारप्रकरणे कथितः। सोऽत्र सिद्धो ज्ञेयः। अत्र वेधविधाने ज्ञशशिनोः बुधचन्द्रयोः शन्यर्कयोश्च परस्परं नो व्यधः स्यात्। परस्परं वेधो नास्ति। एतदुक्तं भवति। विन्ध्यहिमालययोर्मध्ये जन्मराशेः सकाशात् अन्यतमग्रहाधिष्ठितराशिपर्यन्तं गणयित्वा तद्राशेः सकाशात् यथोक्तवेध-

स्थानपर्यन्तं गणयेत्। तत्र यदि कश्चिद् ग्रहो भवति तदा गणितो ग्रहो विद्धो भवति। अन्यदेशेषु जन्मराशेः सकाशात् उभयग्रहं तद्वेधनस्थानं च गणयेत्। यदा वेध स्थाने कश्चिद्ग्रहो भवति तदान्यो ग्रहो बिद्धो भवति। तत्र सूर्यस्य शनिवेधो नास्ति शनेः सूर्यस्य वेधो नास्ति। एवं चन्द्रबुधयोः परस्परं ज्ञेयम्। अथ वेधनप्रयोजनमाह—विद्धो व्यस्तफलो भवेद्विचर इति। विद्धो ग्रस्तो व्यस्तफलः स्यात् प्रथमश्लोकोदितं फलं व्यस्तं विपरीतं भवतीत्यर्थः। रत्नमालायामपि "वामवेधविधिना त्वशोभना अप्यमी शुभफलं दिशन्त्यलम्। ते मृषावचनभाषिणो जना यान्ति हास्यमपि कीर्तिलाञ्छनम्॥" इति। अथ देशविशेषेण वेधगणनाविशेषमाह—हेमाद्रिविन्ध्यान्तर इति। अस्यार्थः पूर्वमेव व्याख्यातः॥ ३॥

इति मुहूर्त्तमार्त्तण्डेमार्तण्डवल्लभायां गोचरप्रकरणं समाप्तम्।

वागीश्वरी—ग्रहों का वेध विचार बताया जा रहा है—

सूर्यग्रह का ६।१२, १०।४, ५।११ परस्पर वेध होता है तात्पर्य छठे स्थान स्थित सूर्य पर वेध होता है यदि १२वें स्थान में कोई अन्य ग्रह हो तो और १२वें सूर्य पर वेध, होगा यदि छठे स्थान में कोई ग्रह हो तो।

चन्द्र ग्रह का ३।९, १।५, १०।४, ८।११, २।७ और ६।१२ स्थानों में, बुध ग्रह के ८।१, ५।२, ८।१०, ४।३, ६।९ और ११।१२ स्थानों में, सूर्य रहित शेष अशुभ पापग्रहों का ३।१२, ११।५, ६।९ स्थानों में परस्पर में वेध होता है। शुक्र का २।७, ८।१, १०।४, ९।५, ३।११, ८।५, ३।१, ६।१२, ४।११ स्थानों में परस्पर वेध होता है।

पिता-पुत्र ग्रहों में बुध, चन्द्रमा तथा सूर्य, शनि में परस्पर वेध नहीं होता है। परस्पर में ग्रह वेध की विद्यमान स्थिति के बावजूद पिता-पुत्र सम्बन्ध होने से आपस में वेध नहीं होता। पितुः सुतस्यात्र न वेधमाहुः (अनन्त दैवज्ञ सुत श्रीराम)।

वेध करने वाला ग्रह गोचर फल के विपरीत फल देता है अर्थात् गोचर से शुभ स्थानगत होने पर भी यदि उक्त ग्रह पर किसी ग्रह का वेध होता है तो वह अशुभ ही फल देता है।

देश भेद से वेध का फल—हिमालय और विन्ध्य प्रदेश के मध्यस्थित देश में वेध राशि की गणना ग्रहाश्रित राशि से ही करनी चाहिए। जैसे यदि सूर्य जन्म समय में जिस राशि में हो उससे छठी राशि में गोचर से हो और सूर्य से १२वें कोई दूसरा ग्रह हो तो वेध होगा। इसी प्रकार सर्वत्र समझा जाना चाहिए।

अन्य देशों में जन्म राशि से ही वेध विचार करना चाहिए।

संस्कार प्रकरण में ही गुरु ग्रह का वेध कहा जाने से यहाँ पर गुरु ग्रह के वेध का उल्लेख नहीं किया गया है॥ २॥ ३॥

इति मुहूर्त्त मार्तण्ड ग्रन्थ के मूल और मार्तण्डवल्लभा व्याख्या के साथ
पर्वतीय श्रीकेदारदत्त जोशी कृत वागीश्वरी व्याख्या सुसम्पन्न।

संक्रान्तिप्रकरणम्

ऊर्ध्वं द्व्यात्ममृगेऽर्कसंक्रमणतः पूर्वं स्थिरे कर्कटे
जूकाजोभयतः खरामघटिकाः पुण्या मृगे दिग्युताः ।
कर्काजान्त्यवृषैणसूर्यचलनं निश्यन्नभं सद्दिवा
सूर्यारार्किदिने तृतीयकरणे प्रान्त्येऽष्टमे दुःखदम् ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ संक्रान्तिफलं विवक्षुस्तावद्राशिपरत्वेन पुण्यकालं वृत्तार्द्धेनाह—द्व्यात्मनो द्विःस्वभावा राशयः मिथुनकन्याधनुर्मीनाः मृगो मकरः एषां समाहारस्तस्मिन्नर्कसंक्रमणतः सूर्यसंक्रमणकालात्सकाशात् ऊर्ध्वमुपरि खराम ३० घटिकाः पुण्याः स्युः। स्थिरे वृषसिंहवृश्चिककुम्भानामन्यतमे राशौ कर्कटः प्रसिद्धः अर्कसंक्रमणतः पूर्वं प्रथमं खराम ३० घटिकाः पुण्याः स्युः। जूकाजोभयतः जूकस्तुला अजो मेषः अनयोरर्कसंक्रमणतः सकाशादुभयतः खराम ३० घटिकाः पुण्याः स्युः। पूर्वं पञ्चदश ऊर्ध्वं पञ्चदशेति त्रिंशत् घटिका इत्यर्थः। एवं सर्वराशिसंक्रमणपुण्यकालमुक्त्वेदानीं मकरे पुण्यकालविशेषमाह—मृगे दिग्युता इति। मृगे मकरे ताः खराम ३० घटिका दिग्युताः दशयुताः चत्वारिंशत् घटिकाः पुण्या इत्यर्थः। तथाचोक्तं ज्योतिर्निबन्धे "संक्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्लभः पिशितेक्षणैः। तस्य योगादधश्चोर्ध्वं त्रिंशन्नाड्यः प्रकीर्तिताः॥ अर्वाक् षोडशनाड्यस्तु परतश्चैव षोडश। पुण्यकालोऽर्कसंक्रान्तेः स्नानदानादिकर्मसु॥ त्रिंशत्कर्कटसंक्रान्तौ पूर्वतः पुण्यनाडिकाः। मकरे तूत्तराः पुण्याश्चत्वारिंशति नाडिकाः॥ स्थिरे विष्णुपदे कर्कदक्षिणायनमादितः। मृगे सौम्यायनं द्व्यंगे षडशीतिमुखं पुरः॥ घटजे विषुवे मध्ये पुण्यं दानाद्यनन्तकम्। प्रागर्द्धरात्रात्पूर्वेद्युः पुण्यं पश्चात्परं दिनम्॥ प्रागर्द्धरात्रादित्येतद्विषुवविषयम्। "कार्मुकं तु परित्यज्य मृगं संक्रमते रविः। प्रदोषे वार्द्धरात्रे वा तदा भोगः परेऽहनि॥ रविसंक्रमणे पुण्ये यो न स्नातीह मानवः। सप्तजन्मान्तरे रोगी दुःखभाग् निर्धनो भवेत्"। आदित्यपुराणे। "शतमिन्दुक्षये दानमुपरागे त्वनन्तकम्। षडशीत्यां सहस्रं तु विष्णुपद्यां तथैव च॥ विषुवे शतसाहस्रं कोटिघ्नं दक्षिणायने। शतकोटिगुणं पुण्यं जायते उत्तरायणे॥" इति॥ अथोत्तरार्द्धेन संक्रान्तेः सदसत्फलमाह—कर्केति। कर्कः प्रसिद्धः अजो मेषः अन्त्यो मीनः वृषः प्रसिद्धः एणो मकरः एतान् सूर्यचलनं निशि रात्रौ सत्स्यात्। अन्यभं प्रति सूर्यचलनं सूर्यसंक्रमणं दिवा असत्स्यात्। अर्थाद्विपरीतं न शोभनम्। सूर्यारार्किदिने रविभौमशनिदिने तृतीयकरणे कौलवे प्रान्त्ये किंस्तुघ्ने अष्टमे शकुनौ सर्वराशिसंक्रमणं दुःखदं स्यात्। तथा चोक्तम्—"मृगकर्काजगोमीनसंक्रान्तिर्निशि सौख्यदा। शेषेषु सप्तसु दिवा व्यत्ययादशुभं भवेत्॥ संक्रान्तिर्जायते यत्र भास्करे भूसुते शनौ। तत्र मासि भवेद्घोरं दुर्भिक्षं वृष्टिचोरजम्॥ स्यादुत्थितस्य किंस्तुघ्ने शकुने कौलवे रवेः। संक्रान्तिस्तैतिले नागे प्रसुप्तस्य चतुष्पदे॥ निविष्टस्य

गरे विष्टौ वणिजे बालवे बवे। दुर्भिक्षं रोगबाहुल्यमूर्ध्वं संक्रमते रविः॥ सुप्तः करोति कल्याणमुपविष्टः समं फलम्।" इति॥ १॥

वागीश्वरी—संक्रान्ति विचार—

"संक्रमणं संक्रान्तिः" मेषादि द्वादश राशियों में ग्रहों की गति सञ्चार से एक राशि की अन्तिम सीमा और उसी बिन्दु पर अग्रिम राशि का प्रारम्भ होना यही संक्रमण काल है। क्रान्ति वृत्त के समान द्वादश विभागों में प्रत्येक विभाग का नाम राशि शब्द से व्यवहृत होता है। ये मेषादि से मीन पर्यन्त १२ राशियाँ प्रत्येक राशि में ३० अंश होने से भवृत्त (क्रान्ति) बारह भागों में $\frac{३६०}{१२}$ = ३० अंश = १ राशि। इस प्रकार शीघ्र मन्द गतियों से गतिशील ग्रहों में प्रत्येक ग्रह की संक्रान्तियाँ होती रहती हैं किन्तु यहाँ पर भारतीय ज्योतिष और धर्मशास्त्र में प्रधान सूर्य ग्रह की १२ संक्रान्तियों का ही विचार किया गया है।

द्विस्वभाव राशियाँ ३।६।९।१२ (मिथुन-कन्या-धनु-मीन) और मकर राशि में संक्रमण काल से पीछे ३० घटी = १२ घण्टा पुण्यकाल कहा गया है। स्थिर राशियों २।५।८।११ की और कर्क संक्रान्तियों में संक्रान्ति के पूर्व की ३० घटी = पुण्यकाल होता है। मेष और तुला संक्रान्तियों में संक्रमण काल से पूर्व में १५ घटी = ६ घण्टा एवं संक्रमण के बाद की १५ घटी = ६ घण्टा पुण्यकाल होता है। उत्तरायण की संक्रान्ति मकर राशि में संक्रमण के बाद पुण्यकाल ४० = १६ घण्टा होता है।

यदि ४।१।१२।२।१० राशियों की संक्रान्तियाँ रात्रि में हों, तो शुभ फलद, दिन में हों तो अशुभफलद होती हैं। ३-५-६-७-८-९ की संक्रान्तियाँ दिन में होने से शुभ और रात्रि में होने से अशुभ फल देती हैं।

कौलव-शकुनि-किस्तुघ्न करणों और रवि-मंगल-शनि वारों में होने वाली किसी भी संक्रान्ति का संसार के लिये दुखद अशुभ फल शेष वार करणों में होने से शुभ फल होता है॥ १॥

ब्रह्माद्यैरिनमण्डलान्त उदितश्चान्द्रस्त्वमान्तः परै-
र्मासो संक्रमणो द्विसंक्रमणको ज्ञेयोऽधिकोऽथो क्षयः।
कर्माण्यन्यगतीनि नात्र तनुयाद्यज्जन्ममृत्यू क्षये
तन्मासौ तिथिखण्डयोश्चयमुखे भृत्येऽधिको गण्यते॥ २॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ संक्रान्तिप्रसंगेन अधिमासक्षयमासयोर्लक्षणं तत्र कर्तव्याकर्तव्यं क्षयमासे जन्ममरणादौ मासज्ञानं वृत्तेकेनाह—**ब्रह्माद्यैरिति**। ब्रह्माद्यैः सिद्धान्तकर्तृभिः इनमण्डलान्तः सूर्यमण्डलान्तः चान्द्रो मास उदितः। परैराचार्यैः अमान्तश्चान्द्रो मास उदितः। एतदुक्तं भवति अमावस्यान्तादपरो अमावस्यान्तो

मासः। अमावस्यान्ते सूर्यचन्द्रमण्डलयोर्योगो भवति परतः षड्भिर्घटिकादिभिर्वियोगो भवति। तस्माद्वियोगादपरो वियोगो यावत्तावद्रविमण्डलान्तो मासः। स ब्रह्माद्यैः क्षयमासाधिमासनिर्णयविषये अङ्गीकृतः। अपरैरमान्तो मासोऽङ्गीकृत इत्यर्थः। अत्र यद्यपि सूर्यग्रहणे मध्यग्रहणकालानन्तरं मोक्षस्थितिकालः षड्घटिकाभ्यो न्यूनो दृश्यते तथापि सूक्ष्मदर्शिभिः पूर्वाचार्यैः रसनाड्योऽर्कं मण्डलमित्युक्तम्। तत्रागम एव प्रमाणम्। तत्र उक्तलक्षणो मासः असंक्रमणः संक्रान्तिरहित अधिको ज्ञेयः। द्विसंक्रमणकः संक्रान्तिद्वययुक्तः क्षयो ज्ञेयः। अस्योदाहरणम् ब्रह्ममतानुसारिणा श्रीभास्कराचार्येण सिद्धान्तशिरोमणौ दर्शितम्॥ "असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्। क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यथा स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च॥ गतोऽब्ध्यद्रिनन्दै १७४ र्मिते शाककाले तिथीशैर्भविष्य १११५ त्यथाङ्गाक्ष सूर्यैः १२५६। गजाद्रयग्निभूमि १३७८ स्तथाप्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः १४१ क्वचिद्गो कुभि १९ श्च"॥ श्रीभास्कराचार्येणाब्ध्यद्रिनन्दै ९७४ मितशाककालादुपरि तिथीशै १११५ मितशाककालात् पूर्वं सिद्धान्तशिरोमणिर्विरचितः। अतएवोक्तम् "गतोऽब्ध्य द्रिनन्दैर्मिते शाककाले तिथीशैर्भविष्यति" इति॥ तत्र गजाद्रयग्निभूमितुल्ये शाककाले रविमण्डलान्तमासप्रमाणेन क्षयमासाधिमासौ प्रदृश्येते। आश्विनी अमावास्या बुधे चतुश्चत्वारिंशत् घटिका ४४ तस्मिन्नेव दिने सप्तत्रिंशत् ३७ घटिकास्वतीतासु तुला-संक्रमणमभूत्। आश्विनस्तुलासंक्रान्तियुक्तत्वाच्छुद्धः। कार्तिकी अमावास्या शुक्रे सप्तदशघटिका १७ तस्मिन्नेव दिने त्रिंशत्घटिकास्वतीतासु वृश्चिकसंक्रान्तिरभूत्। अयनसंक्रान्तित्वादधिकः कार्तिकः अपरो मासो वृश्चिकसंक्रान्तियुक्तः तस्माच्छुद्धोऽयं कार्तिकः तस्याममावास्या शनौ सप्तचत्वारिंशत् ४७ घटिकास्तस्मिन्नेव दिने एकोन-षष्टिघटिका ५९ स्वतीतासु धनुः संक्रमणमभूत्। धनुः संक्रमणं मार्गशीर्षे जातं तस्याममावास्या सोमे पादोनपञ्चदशघटिकाः तस्मिन्नेव दिने एकोनविंशतिघटिका-स्वतीतासु मकरसंक्रान्तिरभूत्। इयं मकरसंक्रान्तिर्यद्यपि अमान्तमतिक्रम्य जाता तथापि रविमण्डलान्तमासप्रमाणेन पूर्वमास एव पतिता तस्मात्संक्रान्तिद्वययुक्तत्वात् मार्गपौषयुगलं क्षयाह्वयं जातम्। माघी अमा भौमे एकचत्वारिंशत् ४१ घटिका तस्मिन्नेव दिने षट्चत्वारिंशत् ४६ घटिकास्वतीतासु कुम्भसंक्रान्तिरभूत्। इयमपि संक्रान्तिर्यद्यपि मासमतिक्रम्य जाता तथापि मण्डलान्तमासप्रमाणेन पूर्वमासस्यैव तस्मान्माघः शुद्धः। अन्यथा मण्डलान्तमासानङ्गीकारे "न क्षयो वाधिमासः स्यान्माघो वै परिकीर्तितः" इत्येतच्छास्त्रमनर्थकं स्यात्। आर्यपक्षे तु सन्देहो नास्ति यतो ब्रह्म-पक्षतिथितः आर्यपक्षतिथिश्चतुर्घटिका ब्राह्मपक्षसंक्रान्तिस्त्रिघटिकोना तस्मादार्यपक्षे सन्देहाभावः। तथा च फाल्गुनी अमा गुरौ षड्घटिका तस्मिन्नेव दिने पञ्चत्रिंशद्घटिका ३५ स्वतीतासु मीनसंक्रान्तिर्जाता तस्मादयं फाल्गुनः असंक्रान्तित्वादधिकः। "क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यथा स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च" इति तस्योदाहरणं दर्शितम्। यत्तु ब्रह्मपक्षे क्षयमासाधिमासनिर्णये अमान्तं मासं गणयन्ति तैर्ब्रह्ममतं

न विदितम्। पौलस्त्यसिद्धान्ते "स्फुटगत्या यदा चन्द्रो रविमण्डलमध्यगः। तदूर्ध्वं संक्रमो भानोर्मासः स स्यान्मलिम्लुचः॥" कालनिर्णये "संक्रमो यदि भवेद्रवेस्ततो मण्डलाद्बहिरनिर्गते विधौ। उच्यतेऽथ स हि संक्रमो बुधैः शुद्धमास इतरो मलिम्लुचः"॥ लल्लः "यदा शशी याति गभस्तिमण्डलं दिवाकरः संक्रमणं करोत्यनु। विवाहयज्ञोत्सवनाशहेतुकस्तदाधिमासः कथितः स्वयंभुवा"॥ रत्नमालायाम् "सवितृमण्डलमेति यदा शशी तदनु संक्रमणं कुरुते रविः। मखमहोत्सवनाशकरस्तदा मुनिवरैर्गदितोऽधिकमासकः"॥ शार्ङ्गधरफलग्रन्थे "चन्द्रार्कयोस्तु बिम्बैक्यं प्रतिपद्दर्शसन्धिषु। तिथ्यन्तात्तदुभयतो रसनाड्योर्कमण्डलम्। तन्मण्डलाच्छशी गच्छेत्ततः सूर्यस्य संक्रमः। मासोऽसौ मलिनः प्रोक्तो न तद्धीनोऽधिकः स्मृतः"॥ पितामहः "प्रतिपद्दर्शसन्धौ तु बिम्बैक्यं चन्द्रसूर्ययोः। जवान्तराप्तं षष्टिघ्नं नाडिका अर्कमण्डलम्"॥ अत्र कालात्मकबिम्बग्रहणं ज्योतिःप्रकाशे "दर्शान्त एकैः कथितोऽत्र मासः परैः प्रदिष्टो रविमण्डलान्तः। मतद्वये चेद्रविसंक्रमः स्यात्स एव पूर्वस्य न चापरस्य"॥ पितामहः "अष्टाधिमासाः स्युर्नित्यं प्रोच्यन्ते फाल्गुनादयः। सौम्यपौषौ क्षयौ नित्यं भवेतामिति निश्चितम्॥ क्षयो वाप्यधिमासो वा स्यादूर्जं इति निश्चितम्। न क्षयो नाधिमासः स्यान्माघो वै परिकीर्तितः॥ पञ्चमासास्तु वैशाखादधिमासे व्यवस्थिताः। भवन्ति चार्ष्टभिवर्षैर्भवे ११ र्वार्कनिशाकरैः १९॥ तथैव फाल्गुनश्चैत्र आश्विनः कार्तिकोऽधिकः। एते किन्द्रैः १४१ शराङ्गै ६५ र्वा कदाचिद्गोकुवत्सरैः १९॥ मार्गपौषौ क्षयौ स्यातां कदाचित्कार्तिको भवेत्। अधिमासस्तदा ज्येष्ठो भवेन्नित्यं क्षयो यदा॥ क्षयात्प्रागधिमासः स्यान्नित्यं भाद्रपदत्रये। आश्विनोर्जौ सदा स्यातामादौ भाद्रपदः सकृत्"॥ यस्मिन्वर्षे कार्तिकक्षयो भवति तस्मिन्वर्षे ज्येष्ठाधिमासो भवेत्। अत्र ज्येष्ठशब्देन भाद्रपदो ज्ञेयः। यतः 'क्षयात्प्रागधिमासः स्यान्नित्यं भाद्रपदत्रये' इति नियमात्। भाद्रपदादीनां त्रयाणां मध्ये भाद्रपदो ज्येष्ठो जानीयादित्यर्थः। अथाधिमासक्षयमासयोः कार्याकार्यण्याह—कर्माण्यन्यगतीनि नात्र तनुयादिति। अन्या गतिर्येषां तानि अन्यगतीनि तानि। अत्राधिमासक्षयमासयोर्न तनुयान्न विस्तारयेत् न कुर्यात्। अर्थादनन्यगतीनि कर्माण्यत्रापि कर्तव्यानीति सिद्धम्। अन्यगतीनामनन्यगतीनामित्थं विचारः यानि कालनिरोधेन प्रोक्तानि तान्यनन्यगतीनि यथा ऋतौ जायामुपेयात् तत्र "ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।" इति मनुना ऋतुप्रमाणमुक्तम्। अथ षोडशरात्रीणां मध्ये निन्द्यदिनान्यपहाय गच्छेत्। स ऋतुर्यदि मलमासशुद्धमासांशौव्याप्नोति तदा शुद्धमासांशे दोषरहिते गर्भाधानं कुर्यात्। असंभवे मलमास एव कुर्यात्। तथा चोक्तम् "अनन्यगतिकं कुर्यान्नित्यं नैमित्तिकं तथा"॥ एवमन्यान्यपि विचार्य कुर्यात्। गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तकर्मसु मलमासादीनां निषेधो नास्तीति संस्कारेण उक्तमस्ति। "गर्भाद्यन्नाशनान्तेषु न गुरुसितमौढ्यम्" इत्यादि। तथा च गर्गः "अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च। वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरण-

मेखलाः ॥ गमनं देवतीर्थानां विवाहमभिषेचनम्। यानं च गृहकर्माणि मलमासे विवर्जयेत्।" इति ॥ तथा च सूर्योदये "अवश्यकर्ममासाख्यं मलमासमृताब्दिकम्। तीर्थेभच्छाययोः श्राद्धं मघानङ्गपितृक्रियाम् ॥ कुर्यान्मलिम्लुचे वर्षे मध्ये चेत्सर्वदाधिकम्। तत्र स्यान्मासिकं मृत्युं मासात्सद्वादशो यदि ॥ प्रेतक्रियां समाप्यात्र कुर्वीताभ्युदयं तथा। श्यामाकाग्रयणं कृच्छ्रे न स्याद्वर्ज्यमतोऽन्यथा" ॥ अन्यच्च ॥ "काम्यारम्भं वृषोत्सर्गं पर्वोत्सवमुपाकृतिम्। मेखलाचौलमाङ्गल्याग्न्याधानोद्यापनक्रिया ॥ वेदव्रतमहादानाभिषेकान्वर्द्धमानकम्। इष्टापूर्तं तथा यस्य विध्यलोपोऽन्यदा कृतौ ॥ तत्सर्वमष्टकादन्यदधिमासे विवर्जयेत्। सूतकेऽपि च कर्तव्यं स्नानाद्यं राहुदर्शने ॥" इति ॥ स्मृतिरत्नावल्याम् "प्रवृत्तं मलमासात्प्राग्यत्कार्यमसमापितम्। आगते मलमासेऽपि तत्समाप्यमसंशयम् ॥" इति। अथ क्षयमासे जन्मादौ मासज्ञानमाह—यज्जन्मेति। जन्म च मृत्युश्च जन्ममृत्यू यस्य जन्ममृत्यू यज्जन्ममृत्यू क्षये क्षयमासि भवतस्तस्य मासौ तिथिखण्डौ ज्ञातव्यौ तिथेः प्रथमेऽर्धे जन्म वा मृत्युर्वा भवति तदा प्रथममासः ॥ द्वितीयेऽर्द्धे द्वितीयो मासो ज्ञेयः। तथा च बृहत्कालनिर्णये ॥ "तिथ्यर्द्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्द्धे तथोत्तरः। मासाविति बुधैर्ज्ञेयौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥" इति। अथ मलमासः कुत्र कुत्र गण्यत इत्याह—चयमुख इति। चयो गर्भाधानादेर्वृद्धिः गर्भस्य कलिल घनांकुरास्थिचर्मादिचयः प्रतिमासे भवति घनादीनां दिनकलान्तराचयस्तदादिके प्रेष्ये भृत्ये वेतनदानार्थमधिको मासो गण्यते। तथा च यमः "गर्भे वार्धुषिके भृत्ये श्राद्धकर्मणि मासिके। सपिण्डीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत् ॥" इति। पाठान्तरव्याख्यानम्—अधियुगे पूर्वोऽधिमासः प्राकृत इति एकस्मिन् वर्षे अधियुगे अधिकद्वये सति पूर्वोऽधिमासः प्रथमोऽधिमासः प्राकृतः प्राकृतमासवज्ज्ञेयः अधिकवन्न त्याज्यः। अर्थादुत्तरोऽधिकमासो मलमासः। तदुक्तम् "मासद्वयेऽब्दमध्ये च संक्रमो न भवेद्यदा। प्राकृतस्तत्र पूर्वं स्यादुत्तरस्तु मलिम्लुचः ॥" इति ॥ २ ॥

इतिमुहूर्तमार्त्तण्डटीकायां मार्त्तण्डवल्लभायां संक्रान्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥

वागीश्वरी—विकल्प से चान्द्रमास की अवधि बताई जा रही है—

गणकचक्रचूडामणि श्री ब्रह्मगुप्ताचार्य ने सूर्य और चन्द्रमा के प्रथम बिम्ब वियोग समय से द्वितीय बिम्बवियोग तक एक चान्द्रमास की कालावधि कही है। अन्य आचार्य अमान्तादमान्तं यावत् प्रथम अमान्त से द्वितीय अमान्त तक के समय की अवधि को एक चान्द्रमास मानते हैं। अतः प्रत्येक चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्तियाँ होती रहती हुई भी ग्रहगणित से कभी-कभी सूर्य की संक्रान्ति द्वय के मध्य में चान्द्र मास की उपलब्धि न होने से उस सूर्य संक्रान्ति समय रहित चान्द्रमास का नाम अधिक मास कहा जाता है। तथा इस ग्रहजनित परम्परा से कभी-कभी किसी चान्द्रमास में सूर्य की दो संक्रान्तियाँ हो जाती है अतः ऐसे चान्द्रमास का नाम क्षय मास कहा जाता है। इस प्रकार अधिक और क्षय मास की (ग्रहगणित-

खगोलीय विद्या से) स्थिति समझ कर, मुण्डन-उपनयन आदि संस्कारों में अधिक पक्ष व मासों में वर्जित किया जाना चाहिए। कुछ संस्कार ऐसे हैं जिन्हें नियत समय में ही करना चाहिए जैसे गर्भाधान-नामकरण-अन्नप्राशन इत्यादि तो ऐसी परिस्थितियों में ये नित्य कर्म अधिक और क्षयमासों में भी किये जाने चाहिए।

क्षय मास में जन्म और मृत्यु होने से तो उसके लिये तिथ्युत्सव एवं एकोदिष्टक्षय श्राद्ध में किस मास की तिथि में उक्त वार्षिक संस्कार किये जाँय इस शंका के निराकरण में आचार्य ने क्षयमास में जन्म की तिथि का पूर्वार्द्ध हो तो क्षय मास के पूर्व के चान्द्रमासीय तिथि में और तिथि के उत्तरार्द्ध में जन्म मृत्यु हो तो क्षयमासोत्तर मास की तिथि में वर्धापन जन्मोत्सवादि संस्कार किये जाने चाहिए।

गर्भाधान से जन्म तक के मासों में, तथा ऋण दिये हुये धन के कलान्तर (सूद-व्याज) गणना में श्राद्धादि तथा सेवा नौकरी (वेतन-भुगतान) आदि में भी चान्द्र वर्ष त्रयोदश-मासात्मक वर्ष होने से उक्त कार्यों में अधिकमास की भी गणना की जानी चाहिए।

इति श्रीमुहूर्त्तमार्तण्ड ग्रन्थ की मुहूर्त्तमार्तण्डवल्लभा संस्कृत व्याख्या के साथ
पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशी कृत वागीश्वरी व्याख्या सुसम्पन्न ॥

श्रीमत्कौशिकपावनो हरिपदद्वन्द्वार्पितात्माहरि-
स्तज्जोऽनन्त इलासुरार्चितगुणो नारायणस्तत्सुतः।
ख्यातं देवगिरेः शिवालयमुदक् तस्मादुदक् टापर-
ग्रामस्तद्वसतिर्मुहूर्त्तभवनं मार्तण्डमत्राकरोत् ॥ १ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथालङ्कारमाह—**श्रीमत्कौशिकेति**। कुशिकस्य गोत्रापत्यानि **कौशिकाः** श्रीमन्तश्च ते कौशिकाश्च ते तथा तान्पावयतीति तथा हरिपदद्वन्द्वार्पितात्मा हरिर्वासुदेवः तस्य पदद्वन्द्वं चरणयुगं तस्मिन्नर्पितः आत्मा अन्तःकरणं येन स तथा "आत्मा देहे धृतौ जीवे" इत्यभिधानात्। एवंविधो यो हरिस्तज्जस्तस्माज्जातो योऽनन्तनामा। किं लक्षणः इलासुरार्चितगुणः इला पृथ्वी तस्यां सुरा देवा ब्राह्मणाः तैरर्चिताः पूजिता गुणाः शमदमतपोदानाध्ययनादिगुणा यस्य स तथा जितेन्द्रियो वेदनिधिः स्मृतिज्ञो दृढव्रतो यज्ञकृदन्नदातेत्यादिगुणसंपन्न इत्यर्थः। तत्सुतो नारायणः मुहूर्त्तभवनं मुहूर्त्तानां भवनं सद्म मार्तण्डनामग्रन्थमकरोत्। अत्र कुत्र देवगिरेः सकाशात् उदक् उत्तरस्यां दिशि यत् ख्यातं पुराणप्रसिद्धं शिवालयं घृष्णेशशिवालयमिति प्रसिद्धम्। ज्योतिर्लिङ्गस्थानमस्ति तस्माच्छिवालयादुदगुत्तरस्यां दिशि यः टापरग्रामोऽस्ति तत्र टापरग्रामे अकरोदित्यर्थः। किंलक्षणो नारायणः तद्वसतिः तस्मिन् टापरग्रामे वसतिर्वासो यस्य स तथेति ॥ १ ॥

वागीश्वरी—ग्रन्थकर्त्ता आचार्य नारायण के ग्राम गोत्र आदि परिचय—
(विशेष इस प्रकाशन की भूमिका देखिये)

श्री देवगिरि पर्वत के उत्तर दिशा में श्री घृष्णेश ज्योतिर्लिङ्ग की पवित्र भूमि के उत्तर में "टापर" नामक शुभ ग्राम में निवास करते हुये कौशिक गोत्रीय ब्राह्मणवर्य श्री "हरि" के पौत्र श्री अनन्त दैवज्ञ के पुत्ररत्न श्री नारायण नाम के दैवज्ञवर्य ने इस मुहूर्त्तमार्तण्ड ग्रन्थ को मार्त्तण्डवल्लभा नाम की सुन्दर व्याख्या से भी ग्रन्थ को विशेष विभूषित किया है ॥ १ ॥

यः षष्टया युतशत १६० वृत्तबद्धमेनं
मार्त्तण्डं पठति नरः स विश्वपूज्यः ।
बह्वायुः सुखधनपुत्रमित्रभृत्यान्
संप्राप्नोत्यविकलधीश्च तीर्थसिद्धिम् ॥ २ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथास्य पठने फलश्रुतिं तथा ग्रन्थे वृत्तसंख्यां प्रहर्षिण्याह—षष्ठ्या युतं शतं १६० तन्मितानि वृत्तानि तैर्निबद्धः कृतः योऽयं मार्तण्डः तमेनं मार्तण्डं यो नरः पठति स विश्वपूज्यो भवति। न केवल विश्वपूज्यो भवति अपि तु बह्वायुः सुखधनमित्रपुत्रभृत्यान् संप्राप्नोति। मुहूर्त्तदानात्साधितकार्यस्य विश्वस्य पूज्यो भवतीति युक्तम्। जनानां यथार्थमुहूर्त्तदानात् कार्यसिद्धिजनितपुण्येन बह्वायुरारोग्यादीनि संप्राप्नोतीति युक्तम्। च परम् अविकलधीर्भवति न विकला धीर्बुद्धिर्यस्येति तथा। अत्र मुहूर्त्तमार्तण्डे यद्‌गर्भाधानादिकमुक्तं तत्रान्यबहुसंहिताग्रन्थानपेक्षत्वादविकलधीत्वमुक्तम्। अत एव तीर्थसिद्धिं प्राप्नोति। तीर्थं शास्त्रं तस्य सिद्धिस्ताम्। अल्पग्रन्थेन बह्वर्थसिद्धेः। यद्वा तीर्थं गुरुस्तस्य सिद्धिः शास्त्रोपदेशलक्षणा ताम्। यद्वा तीर्थं यागस्तेन कृत्वा यागसुखादिलक्षणा सिद्धिस्तां प्राप्नोति। "तीर्थं शास्त्राध्वरे क्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु" इतिविश्वः॥ २॥

वागीश्वरी—ग्रन्थ अध्ययन का सुन्दरतम शुभ फल—

एक सौ साठ १६० श्लोकात्मक इस मुहूर्त्तमार्तण्ड ग्रन्थ का अध्येता विद्यार्थी विश्ववन्द्य होते हुये नाना प्रकार की सुखसम्पत्ति का उपभोग करते हुये यशोलाभ करेगा। आचार्य ने बारह प्रकरणों में प्रकरणानुसार ९ + १९ + ५५ + १ + ५ + १ + २१ + १९ + ८ + ३ + ४ सबका योग १६० श्लोकात्मक इस उत्तम ग्रन्थ की रचना की है। अतः सद्‌गुरु मुख से दत्त शुद्ध बुद्धि से इस ग्रन्थ का अध्ययनाध्यापन मनन-चिन्तन-स्मरण करने से अध्येता विद्वान् छात्र लोक में प्रतिष्ठित होते हुये लोक वन्द्य होकर सदा सुखी रहेगा ॥ २ ॥

त्र्यंकेन्द्र १४९३ प्रमिते वर्षे शालिवाहनजन्मतः ।
कृतस्तपसि मार्त्तण्डोऽयमलं जयतूद्‌गतः ॥ ३ ॥

मार्तण्डवल्लभा—अथ ग्रन्थस्याशिषमनुष्टुभाह—त्र्यंकेति। शालिवाहनजन्मतः त्र्यङ्केन्द्रप्रमिते वर्षे १४९३ तपसि माघे मार्त्तण्डो मुहूर्त्तमार्त्तण्डः कृतः। नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणम्। अयं मुहूर्तमार्त्तण्डः अलं अतिशयेन जयतु। यद्वाऽयमलं मार्त्तण्डगुल्ममुद्गतमुदयं प्राप्तं जयतु सर्वोत्कर्षेणास्तु॥ ३॥

वागीश्वरी—शकाब्द १४९३ के माघ मास में रचित यह मुहूर्त्तमार्तण्ड ग्रन्थ सर्वतोभावेन समुदित होकर पृथ्वी में श्रेष्ठता प्राप्त करे॥ ३॥

पूर्वं वाक्यार्थमादाय ग्रन्थोऽयं रचितो लघुः।
पठनार्थमशक्तानामङ्गीकार्यो बुधैर्मुदा॥ ४॥

श्रीनारायणदैवज्ञविरचितो मुहूर्त्तमार्त्तण्डः समाप्तः

मार्तण्डवल्लभा—अथैतद्ग्रन्थाङ्गीकारार्थं बुधप्रार्थना—सुगमम्।

आसीत्सासमणूरनामनगरे श्रीकौशिकस्यान्वयेऽ-
नन्तो वाजसनेयिपूज्यचरणो माध्यन्दिनीयाग्रणीः॥
कृष्णस्तत्तनयः श्रुतिस्मृतिविदामग्रेसरेज्योहरि-
स्तत्पुत्रः श्रुतिवित्तदात्मजवरोऽनन्तोऽग्निहोत्री गुरुः॥ १॥

तत्पुत्रस्तदनुग्रहात्तधिषणो नारायणष्टापर-
ग्रामे शिष्यगणेच्छया निजकृतग्रन्थस्य टीकां स्फुटम्॥
चक्रेऽस्यां कृपया परोपकृतये शोध्यं दुरुक्तं बुधै-
र्मादृक्षस्य विलोक्य धार्ष्ट्यमपि ते कुप्यन्ति नो सज्जनाः॥ २॥

सुखनिधिपुरुषार्थक्ष्मा १४९४ समाभिः समाभिः
परिमितशककाले जातमार्त्तण्डटीकाम्॥
लिखति पठति विप्रः सोऽत्र भूयाद्धरित्र्यां
सुखनिधिपुरुषार्थक्ष्मासमो वा क्षमावान्॥ ४॥

इतिस्वोपज्ञमुहूर्त्तमार्त्तण्डटीका मार्त्तण्डवल्लभाख्या समाप्ता॥ शुभं भवतु॥

वागीश्वरी—अध्ययनादि में गुरुकुल आदि में जाकर साधन हीनता से पठन-पाठन की असमर्थता से अशक्त विद्यार्थियों के पठन पाठन के लिये, पूर्वाचार्यों से कथित विषयों के सार को लेकर इस छोटे से ग्रन्थ की रचना मैंने की है पण्डित समाज इसे स्वीकार करेगा। शुभम्॥

मुहूर्त्तमार्तण्ड ग्रन्थ की मार्तण्डवल्लभा व्याख्या के साथ पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशी कृत श्री वागीश्वरी व्याख्या सुसम्पन्न।

उत्तराषाढ़ा सं० २०४७ कार्तिक शुक्ल सप्तमी शुक्रवार ता० २६-१०-९०

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना बैंगलोर मद्रास

मूल्यः रू० ११० (सजिल्द); रू० ६५ (अजिल्द)